प्राक्कथन।

हमारे " निबंधमालादर्शकी " आलोचना लिखती बार बाबू बालमुकुंदजी गुप्त सम्पादक "भारतमित्र " ने बहुत ही ठीक कहा था कि " अबतक हिंदीमे चिपलूणकरकी भाँति विचारशील निबंधलेखक नहीं हुए हैं। इसीसे इस प्रकारकी कोई पुस्तकभी हिंदीमे नही थी। " * जिन चिपलूणकर शास्त्रीकी निबंधमालाके कतिपय लेखोंका हमने हिंदीमें अनुवाद करके उन लेखोंका नाम " निबंधमालादर्श " रक्खा है, उन्हींके लिखे हुए " संस्कृतकविपंचक " नामक लेखोंके हिंदी अनुवादको आज हम अपने नानाभाषावीराविशारद पाठकोंकी सेवामे सादर समर्पित करते हैं। हमें भरोसा है कि हमारे पठित समाजमे " निबंधमालादर्श " जिस आदरकी दृष्टिसे देखा गया है उसी आदरकी दृष्टिसे उक्त चिपलूणकरजीकि कृतिका हमारा वर्त्तमान उद्योगभी देखा जायगा।

चिपलूणकर महाशयको पंचत्वको प्राप्त हुए आज २२ वर्ष हुए। तबसे अब विद्याकी उन्नति कही अधिक हो गई है। अतः संभव है कि चिपलूणकरजीने अपने निबंधोमे जो बातें लिखी हैं उनसे अधिक बातें हमारे आधुनिक कृतविद्य लोगोंको ज्ञात हो चुकी होगी। पर तिस परभी हमें भरोसा है कि हमारे जिज्ञासान्वित पाठकगण चिपलूणकरजीके भावोको पढ प्रसन्न होंगे। आजसे बाईस वर्षके पूर्व्व, बत्तीस वर्षकी अवस्थामें स्वर्गकी यात्रा करनेवाले भद्र पुरुषने हमारे विश्वविख्यात कवियोंके अलौकिक गुणोको किस प्रकार सर्व्वसाधारणपर प्रकाशित किया, और उनके गुणोको हम लोगोके हृदयप्रदेशमे एक बार पुनः उसने किस प्रकार जागृत कर दिया, उसी प्रकार अन्यान्य लोगोने हमारे कवियोंके समु-

---

* भारतमित्रकी १८ जून १९०० की संख्या देखिये।

ज्वल यशको जिन थोथे आक्षेपोसे कलंकित किया था, उन्हें उसने किस प्रमाणपूर्ण चतुराईसे दूर कर दिया, आदि बातोको हमारे रसभावज्ञ पाठकगण यदि अपने विचारक्षेत्रमे लेगे तो वह लोग अपने अधिक ज्ञानके कारण, उक्त शास्त्रीजीकी उपेक्षा कदापि नही करेंगे; प्रत्युत उनके उपकारका स्मरण कर सहसा उनके चिरकृतज्ञ होंगे। शास्त्रीजीके विचार और भावोका हमारे पाठकोको यथार्थ ज्ञान हो सके। इसी अभिप्रायसे हमने उनके लेखोमें कुछ न्यूनाधिक्य नही किया है। यदि कही कुछ किया ही है तो एक दो स्थान पर टिप्पणीके स्वरूपमे ही किया है, मुख्य लेखमें अणुमात्र भी परिवर्त्तन हमने नहीं किया है।

इस ग्रंथके अंगरेजी, संस्कृत तथा हिंदी जाननेवाले विद्वच्चक्रचूडामणिगण यदि हमारे इस ग्रंथको केवल संस्कृतके यत्परोनास्ति पंडित प्रकांडोंके समाजमें प्रविष्ट करनेका प्रयत्न करेगे तो हमें भरोसा है कि वह लोगभी इस प्रकारके उत्तमोत्तम निबंध लिखनेकेलिये उत्साहित होगे।

इस ग्रंथके प्रकाशककी इच्छा थी कि इस ग्रंथके साथ शास्त्रीजीकी संक्षिप्त जीवनी भी छाप दी जाय; पर हमारा बिचार शास्त्रीजीका जीवनचरित स्वतंत्र रूपसे लिखनेका होनेके कारण हमने वैसा नहीं किया। संस्कृत कविपंचकको पढ यदि हमारे जिज्ञासाप्रिय पाठकगण शास्त्रीजीके जीवनचरितकेलिये
होगे तो हम उनकी मनस्तुष्टिकेलिये अवश्यमेव प्रयत्न करेगे।

हम नागरीके प्रसिद्ध सुलेखक "सरस्वती" के सम्पादक श्रीयुत
द्विवेदीको अनेकानेक साधुवाद देते है कि जिनने
इस अनुवादकी बारबार चर्चा की, जिसे पढ जयपुरके
तैषी "समालोचक" के स्वामी मिस्टर जैन
निज व्ययसे प्रकाशित करनेकी इच्छा हमपर प्रकाशित

की, और तदनुसार आपने इन्हें आज प्रकाशित भी कर दिया। एतदर्थ हम उक्त महानुभाव को हार्दिक धन्यवाद देकर इस प्राक्कथनको समाप्त करते है। भवभूतिको आत्मरचित निम्नलिखित श्लोकका अनुभव हुआ हो वा न भी हुआ हो, पर हमे तौ उसका अनुभव पूर्ण रूपसे प्राप्त हो चुका।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयंत्यवज्ञां
जानंतु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्म्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

सन १८९८ मे हम इस अनुवादको परिपूर्ण कर चुके थे। हमारे बहुत कुछ लिखा पढ़ी करनेपर बाबू ध्यानसिह साहिबके सत्परामर्शसे नवलकिशोर मुद्रणालयके स्वामी बाबू प्रयागनारायण साहिबने इन लेखोमेसे "कालिदास" और "भवभूतिको" सन १९०० मे निज व्ययसे प्रकाशित किया। और न जाने क्यो, अवशिष्ट तीन लेखोको छापनेसे मुहँमोड कर उन्हे आपने हमारे पास लौटा दिया। तबसे यह लेख योही हमारे पास पडे रहे। अतमे उक्त महाशयने अपनी ओरसे हमे चिट्ठी लिखकर इन्हें हमसे जिस प्रकार मंगाकर छपवाया और इन्हे प्रकाशित किया वह सब अभी ऊपर उल्लिखित होही चुका है।

टिमुरनी
ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया
सं० १९६१.

विनीत
गंगाप्रसाद अग्निहोत्री,
अनुवादकर्त्ता १८–६–१९०४.

सूचना-इस संस्करणके छापनेमें हमलोगोंसे अक्षरसंकलनविधिमें जो प्रमाद हो गये हैं तदर्थ हम अपने उदार पाठकोंसे क्षमा मांगते हैं। कार्य्यबाहुल्यात् ऐसा होगया है। भविष्यत्मे हमलोग ऐसी असावधानी नही होने देंगे।

मुद्रणालयाधीश.

हिंदीके कार्य्यदक्ष हितैषी श्रीयुत सेठ खेमराजजीने हमारे इस ग्रंथको जिस उदारताके साथ छापा है तदर्थ हम सेठजीके चिरकृतज्ञ हैं।

प्रकाशक.

काव्यरत्नोंको बड़े परिश्रमसे एकत्रित कर, उस संग्रहका नाम हमने "काव्यमंजूषा" रक्खा है। इस संग्रहकी प्रशंसामें हम इतनाही लिखना अलं समझते हैं कि इसमें जो कुछ है वह सब स्वनामधन्य उक्त द्विवेदीजीकी असामान्य प्रतिभाका विजृंभण है। शीघ्र मँगाइये। यह मंजूषा हाथो हाथ बिकगई, और बिकी जाती है।

मि० जैन वैद्य ग्रंथ प्रकाशक,
जोहरी बाजार
जयपुर.

संस्कृतकविपञ्चक।

भूमिका।

अयि दलदरविंदस्यंदमानं मरंदं
तव किमपि लिहंतो मंजु गुंजंतु भृंगाः।
दिशि दिशि निरपेक्षस्तावकीनं विवृण्वन्
परिमलमयमन्यो बांधवो गंधवाहः॥ *

पंडितराज जगन्नाथ।

आज दिन इस बातकी कोई विशेष आवश्यकता नही है कि वर्त्तमान विषयकी उपयुक्तता तथा उपयोगिता प्रदर्शित करनेकेलिये एक लंबी चौडी भूमिका लिखी जाय। क्योंकि हमारे देशके सौभाग्यवश अपरलोगोंकी अपेक्षा अंगरेज पंडितलोगोका चित्त इस विषयकी ओर प्रथम आकृष्ट होने, तथा उनके द्वारा यूरोपीय अन्यान्य जातियोंको उसका शिघ्रही परिचय होजानेके कारण, उसकी जगन्मान्यता कभीकी निश्चित हो चुकी है। हमारी गीर्वाण भाषाके काव्यामृतसागरका केवल एक बिन्दु पान करतेही द्वीपान्तरनिवासी विद्यापारदर्शी पंडितगण अत्यत विस्मित हो तन्मय हो गये,- किसीने अपने कवित्वदर्पको तिलांजलि दे दी। कोई स्वयं समस्त जगकी प्रशंसाके पात्र होनेपर भी विनीतभावपूर्वक हमारे भाट बन गये, और कोई कोई तो आनदातिशयमे मग्न हो विदेहही हो गये। यह सब घटनाए अभी सौ वर्षके भीतरकी ही हे। इतने थोडे कालहीमे हमारी प्राचीन आर्य्य भाषाने समूचे जगपर अपना अधिकार जमा लिया और अब अनेक प्रकारसे वह जहांतहां अग्रगण्य मानी जाती है, ससारभरकी महान् २ पाठशाला तथा विद्यालयोंमे वह बडे चाव और उत्साहके साथ पढ़ाई

* "हे विकसितकमल! तुझसे गिरेहुए अत्यत मधुर परागका सेवन कर, तेरे निकटही भ्रमरगण मजु गुंजारव करते रहें, परतु तेरे परिमलको स्वार्थ रहित बुद्धिद्वारा चारों ओर विस्तृतकरनेवाला यह पवन तेरे विषयमें अपनी बधुता एक निरालेही प्रकारसे प्रदर्शित करता है।"

जाती है; और उत्तरोत्तर हमारे पुराने बड़े बड़े ग्रंथकारोंको पुस्तकालयोंमें प्रधान २ स्थान प्राप्त होते जाते हैं; और जो वेदादि ग्रंथ, हमारी अज्ञानताके कारण यहां हमें मिट्टीमोल जान पड़ रहे है वेही यूरोपीय पंडितगणोंको बहुमूल्य बोध हो रहे हैं, और टेम्स, न्हाइन्, मिसिसिपी, आदि सरिताओंके तीरपर उनकी घोषणा जहां तहां प्रारंभ हो रही है! ऐसे समयपर हमारे देशमे वर्त्तमान विषयकी जो विलक्षण उपेक्षा तथा उदासीनता देख पडती है उससे अत्यंत आश्चर्य्यित होना पडता है। जिनलोगोको पाणिन्यादि शास्त्रप्रणेताओं तथा कालिदासादि कवियोंकेलिये अत्यंत अभिमानी होना चाहिये, और जिन्हें उनकी बुद्धिमानीका ज्ञान प्राप्त करनेकेलिये उत्कट इच्छा होनी चाहिये, अज वही लोग धरतीभरके लोगोमें उनके विषयमे निश्चित हो रहे हैं; और हमारे घरका परिचय हमें यह विदेशी लोग करा रहे हैं, इस बातको देख हम लोग तनिक भी लज्जित नही होते; हमारे देशकी यथार्थ अवस्थाका जिसे पूर्ण ज्ञान नही है क्या वह इसे क्षण भरभी सच मान सकता है?

सारांश, हमारे वर्त्तमान उद्योगका अभिप्राय यही है कि हमारी प्राचीन विद्याके अत्यंत हृदयग्राही भाग कवितारूप वर्त्तमानविषय द्वारा तौभी उक्त अज्ञताजन्य उक्त अवस्थामे कुछ सुधार हो। अब यह बात सच है कि यह विषय परम गंभीर है और साथही उसकी यथावत् विवेचना करना सामान्य बुद्धिवाले मनुष्यका काम नही है। यथार्थ कवित्व जैसे सुदुष्प्राप्य वस्तु है वैसेही यथार्थ रसिकताभी सुदुष्प्राप्य वस्तु है, रत्नपरीक्षकलोग जैसे टकासेर नही पाये जाते, और न कभी पाये जायेंगे, वही बात कवितामर्मज्ञोंके विषयमें भी चारितार्थ होतीहै। संस्कृतके किसी कविने लिखा हैः–

मार्मिकः को मरंदानामंतरेण मधुव्रतम् ।

"मधुव्रत अर्थात् भ्रमरोके सिवाय मकरंदका रसज्ञ दूसरा और कौन है? तात्पर्य्य इसी न्यायानुसार कालिदास भवभूति प्रभृति कविवरोंकी वाणीके नाना विध गुण–कलाप प्रकटित करनेकेलिये आरिस्टॉटल्, आडिसन् तथा पंडितराज जगन्नाथकैसेही किसी 'मधुव्रत' को जन्मग्रहण करना चाहिये।

तभी संस्कृत कवितास्वरूप विशाल कमलकाननसे मधुबिंदु निकाला जाकर उसका लाभ सर्व साधारणको प्राप्त हो सकेगा। पर यद्यपि यह सब बाते आजादिन हमें अनुकूल नहीं हैं, और उनका योग कब प्राप्त होगा उसका ठीक २ अनुमानभी नहीं किया जा सकता, ऐसी अवस्थामे हम समझते है कि यह वर्त्तमान यत्न हमारे विद्याप्रिय देशभाईयोको बहुत कुछ उपयोगी होगा।

ऊपर अभी उल्लिखित हो ही चुका है कि संस्कृत कविताका विस्तार कुछ कम नहीं है। केवल 'रामायण' 'महाभारत' 'भागवत' 'बृहत्कथा' * 'राजतरगिणी' आदि ग्रंथ ही लीजिये तौ जान पडेगा कि इनका पूर्णावलोकन कोई ऐसा वैसा काम नहीं है। फिर इसके सिवाय रघुवंशादि पचमहाकाव्य, 'शकुंतला' 'उत्तररामचरित' प्रभृति नाटक, नाटकोंके पुनः चपू भाणादि अपर भेद और सामान्यतः काव्यके नामसे पुकारे जानेवाले नाना विषयक छोटे बडे सैकडो प्रबधोपर जब हम दृष्टिपात करते है तब एक महान् विस्तार दृष्टिगत होता है। और इनमे यदि चारो वेद और अठारहो पुराण मिला दिये जाँय, तौ फिर कोई कैसा ही प्रचंड पाठक क्यो न हो पर वह इस पर्वतोपम ग्रंथसमूहको देखतेही

---

*सप्रति यह ग्रथ समूचा उपलब्ध नहीं होता। कुछ भाग अवश्य पाये जाते है, उन्हें एकत्रितकर उनका नाम 'कथासरित्सागर, रक्खा गया है। 'बृहत्कथाके कर्त्ता गुणाढ्य है। इन्हें सबोधन दे गोवर्द्धनाचार्यने दो स्थानपर लिखा है—

श्रीरामायणभारतबृहत्कथाना कवीन्नमस्कुर्म्मः।
त्रिस्रोता इव सरसा सरस्वती स्फुरति यैर्भिन्ना ॥

औरभी

पूर्वैर्विभिन्नवृत्ता गुणाढ्यभवभूतिबाणरघुकारैः।
वाग्देवी भजतो मम सन्तः पश्यन्तु को दोषः ॥

एक श्लोकमें उक्त कविकी व्यासजीके साथ समता बडी चतुराईसे प्रदर्शित की गयी है।

अतिदीर्घजीवदोषाद्व्यासेन यशोऽपहारित हंत।
कैर्नोच्येत गुणाढ्य' स एव जन्मान्तरापन्नः ॥

उक्त सग्रह इस बातको स्पष्ट रूपसे प्रमाणित करते हैं कि जिस समय 'सप्तशती' लिपिबद्ध की गई उस समय 'बृहत्कथा' भलीभांति प्रचलित थी।

हतधैर्य्य हुए बिना न रह सकेगा । * साराश वर्त्तमान विषयकी सीमा महासागरकी सीमाकी नाई सर्वथा दुर्लंघ्य है । वहां लो यौंही पहुंचनेतकके- लिये मनुष्यका संपूर्ण आयुष्यभी अलम् न होगा । तो फिर इतने प्रचंड विस्तारको पूर्णतया ढूंढकर उसका यथावत् विवरण चित्रपटबनाना कैसा दुर्घट काम है सो सहजहीमे ज्ञात हो सकता है । तात्पर्य्य वर्त्तमान विषय ऐसा नही है कि एक मनुष्य परिश्रम कर उसमे सफलता प्राप्त कर सके, किंतु उसमे सफलता प्राप्तकरनेके हेतु प्रत्येक मनुष्यको अपनी २ रुचिके अनुसार विषय चुनकर परिश्रम करना समुचितहै, जब ऐसा कियाजायगा तभी सफलता प्राप्त होगी अन्यथा न होसकेगी सो स्पष्टही है । उपरितन कथित विषयोमेसे अत्यन्त रमणीक तथा रोचक जान पडनेवाला अत्यन्त सुगम भाग वह है जिसके ज्ञानको अब इधर 'काव्यव्युत्पत्ति' कहते हैं । अंगरेजीमे इसे 'classic literature' के नामसे पुकारते हैं । इस भागको सुगम कहने का कारण यह है कि रामायण, भारत और भाग- वतादि ऐतिहासिक ग्रंथ, मत्स्यकूर्म्मादि पुराण ग्रंथ अत्यंत महाकाय होनेके कारण परम दुर्गमहै, उनमे वेद तो सुविस्तृत होनेके अतिरिक्त प्रायः दुर्बोध एवं जटिलभी हैं । + सारांश जिस विषयकी हम आगे विवेचना करनेवाले हैं वह विषय काव्यका है । यहांके विश्वविद्यालयोंमे जबसे संस्कृत भाषाका प्रचार प्रारंभ किया गया है तबसे विद्यालयस्थ लोग प्रायः उसके लिये बहुत परिश्रम करते हैं, और यही कारण है कि हमलोगोंको उसका उत्तरोत्तर अधिकाधिक परिचय प्राप्त होते जाता है । प्राचीन काल-

---

* सरविलियम् जोन्स साहिबने एक स्थानपर लिखाहै ।

"Whenever we direct our attention to Hindu liter- ature, the notion of infinity presents itself; and sure the longest life would not suffice for a single perusal of works that rise and swell protuberant,' like the Hima- layas, above the bulkiest compositions of every land beyond the confines of India !"

+ संस्कृतके यूरोपीय परम विख्यात विद्वान् मोक्षमूलर साहबका प्रचंड उद्योगकांड वेदोंकी विस्तीर्णता तथा जटिलताका प्रत्यक्ष प्रमाण है । अकेले ऋग्वेदको भली भांति अधीतकर सटीक प्रकाशित करनेकेलिये उक्त विद्वान् को तीस वर्ष लगे । उक्त ग्रंथ सन १८४५ में हाथमें लिया गया था और १८७५ में शेष हुआ ।

के पंडित कहानेवाले लोगभी इसीका परिशीलन किया करते थे, पौराणिक लोग इतिहास और पुराणोंको विचारा करते थे और वैदिक लोग वेदोंको अधीत किया करते थे । तो यही सब कारण है कि जिनके योगसे सम्प्रति हमने वर्त्तमान विषयके उक्त भागकाही निरूपण करना निश्चित किया है । अब इसमें कोई संदेह नही है कि आजदिन हमारे यहाँ यह प्रश्नकरनेवाले लोगभी विद्यमान हैं कि, इस निरूपणसे क्या लाभ है ? हां इतना अवश्य है कि, ऐसा प्रश्न यथार्थ रसिक तथा देशाभिमानी पुरुषोंद्वारा उपस्थित नही किया जायगा । क्योंकि, जिस प्रकारसे एक सामान्य मनुष्यके मुंहसेभी यह प्रश्न प्रायः न निकलेगा कि सुगंधित पुष्पकी सुगंध लेकर मुझे क्या करना है ? वा ललनाललामको लीलावलोकनसे मुझे क्या लाभ है? और यदि ऐसे प्रश्न उस धन्य व्यक्तिके मुंहसे विनिसृत हुए ही तो उसके विषयमे यह कल्पना करनेके लिये बाध्य होना पडता है कि, इस महात्माके विषयमे विधिका विधान कुछ विशेष प्रकारका है । ठीक वही बात उक्त रसिकचूडामणिके विषयमे संघटित हो सकती है । जिस कविताका लालित्य अनुवादव्यवधानावगुंठित होनेपरभी इतना रोचक और रमणीक हुआ है कि, उसने अपनी मंदतर प्रभाके योगसेही यूरोपनिवासी रसिकतापटु श्रेष्ठजनोंके चित्तको मुग्ध कर लिया है, उसी कविताके स्वरूपके पूर्णतया हमारे आलोकपथमें आनेपरभी यदि हमारी चित्तवृत्तियां ज्योकी त्यों निष्कंप बनी रहें तो अतमें हमे यही कहना पडेगा कि अगरेजोंके नये सुधारसपन्न हो हमने गुरुजनोपरभी अपनी पराकाष्ठा प्रदर्शित करनेमे कोई बात उठा नही रक्खी । सारांश वर्त्तमान विषयके निरूपणका प्रथम एव प्रधान कारण उसकी रमणीयता है । इस लाभको जो लोग विशेष उपयोगी नही विचारते, और जो लोग समझते है कि, काव्याध्ययन करना केवल व्यर्थमें कालातिपात करनेका एक साधनमात्र हैं,उनसे विवादकर हम नही समझते कि,हम अपने अभिप्रेतार्थ को उनके गले उतार देगे, एतावता उसके विषयमें अधिक चर्चा न कर, यहां केवल इतनाही सूचित करते है कि वर्त्तमान विषयसे हमारे पाठकों

को उक्त प्रधान उपयोगिताके अतिरिक्त और भी दो महान् लाभ होसकते हैं। उनमेंसे एक तो राष्ट्र (जाति) से संबंध रखनेवाला है, और दूसरा देशभाषासे संबंध रखता है। जातिके संबंधसे यह लाभ होगा कि, संप्रति हम जिस आत्मविषयक लज्जादायक अज्ञानांधकारमें पड़े हुए हैं, उसका तमःपटल दूर हो हमें हमारी यथार्थ योग्यता भलीभाँति विदित हो जायगी। और भाषाके सबंधसे यह लाभ होगा कि, पुरानी संस्कृत भाषा संप्रति प्रचलित प्रादेशिक भाषाओंकी आदिजननी होने तथा अत्यंत परिणतदशाको प्राप्त होनेके अनंतर अवनत होनेके कारण उसका ज्ञान वर्त्तमान भाषाओंकी व्युत्पत्ति तथा उन्नति होनेकेलिये परमोपयोगी होगा।

यहांलो वर्त्तमानविषयके स्वरूप तथा उसकी उपयुक्तताके विषयमे आलोचना कीगई। अब अगले निरूपणके संबंधसे कुछ थोड़ासा लिखकर इस भूमिकाको हम शेष करते हैं। अगले लेखोंके पढजानेपर हमारे पाठकोंको ज्ञात होगा कि, वे सब स्वतंत्ररूपसे लिखे गये हैं अर्थात् उनके विषय प्रतिपादनमें अंगरेज ग्रंथकर्त्ता वा एतद्देशीय पंडितोंके मत मतांतरोंका बुद्धिपुरःसर अनुकरण नहीं किया गया है। प्रसंगवशात् स्थान स्थानपर उनका उल्लेख कर कहीं कहीं उनसे विरोधही नहीं दिखलाया गया है किंतु कहीं कहीं उनका खंडन भी किया गया है। यहांपर हम अपने पाठकोंको यह बात सूचित कर देना अपना कर्त्तव्य समझते है कि, उक्त खंडन मंडन दुष्टबुद्धि वा अभिमानके कारण नहीं किया गया है। संप्रति हम अपने देशकी जिस बातकी वर्त्तमान अवस्थाको विचारक्षेत्रमे लेते हैं उसमें पिछले पांच पचीस वर्षोंकी अपेक्षा आज दिन आकाश पातालका अंतर लक्षित होता है। पहिले हम अंग्रेजलोगोंकी विद्या तथा विभवको देख जिस प्रकार आश्चर्य्यचकित हो जाते थे, और चित्तमे यही भाव उत्पन्न होता था कि, हमलोग उनके सामने केवल पामर हैं, उन लोगोंकी योग्यताको हमलोग कदापि प्राप्त न कर सकेंगे; सो सब बातें अब धीरे २ परिवर्त्तन ग्रहण करने लगी हैं। अंगरेजी

विद्याके प्रसादसे हमलोगोंके मन जिस नूतन संस्कारसे संस्कृत हो आ-जदिन चारों ओर उनके जो फल दृष्टि पथमे आने लगे है उनसे प्रत्यक्ष होता है कि, उक्त समस्त विचारकलाप केवल भ्रमजन्य थे। यह कथन आत्मजन्य श्लाघासे नही किया गया है किंतु इसका अब इधर लोगोको पदपदपर अनुभव मिलते जाता है। तात्पर्य्य आगामि लेखोंमें जो बातें दृष्टिगत होंगी उन्हे उक्त अवस्थांतरका फल समझना चाहिये। क्योकि वर्त्त-मान विषयही ऐसा है कि, उसके विषयमे सम्मति प्रदर्शित करनेके लिये हमलोग जैसे अधिकृत है, वैसे द्वीपांतरनिवासी चतुरचुडामणि होनेपर भी नही हो सकते। इसका प्रथम कारण तो यह कहा जा सकता है कि, वे परस्थ होनेके कारण संस्कृत भाषाका उन्हे पूर्ण ज्ञान होना कठिन कार्य्य है तिसपर भी जाति (राष्ट्र) भेदके कारण हमारे सहस्रावधि विचार तथा रीति भांतिका उन लोगोको यथावत् ज्ञान होना तो प्रायः असंभवही है। एतावता अगरेज नाटकाचार्य्य शेक्सपियरके विषयमें व्हॉल्टेर* साहबने जो सम्मति प्रदर्शित की है उसे अगरेजलोग जिस प्रकार अणुमात्र भी नही मानते, उसी प्रकारसे इन लोगोके जिन बहुतेरे पंडितोने हमारे प्राचीन कविवरोंको जिन दोषोसे दूषित किया है उन्हें तिरस्कृत करने तथा उनकी समालोचना करनेकेलिये हमलोग भी पूर्ण रूपसे अधिकृत है। अतः उनका प्रदर्शित करना द्वेष–बुद्धिजन्य तथा अभिमानजात कार्य्य कदापि नही समझाजा सकता।

यह बात भलेही यथार्थ हो कि उक्त अधिकारको हमलोग पूर्ण-तया व्यवहृत कर सकते है पर उसका विशेष तीव्रताके साथ व्यव-हारमे लाना हमारे लिये उचित नही है। क्योकि, हमारी प्राचीन भाषाको यह पाश्चात्य पंडितगण यदि पुरस्कृत न करते तो

* गत शताब्दीमें फरासीस लोगोंमें व्हॉल्टेर नामका एक परम विख्यात मनुष्य था, उसकी कीर्त्ति कई प्रकारसे श्रवणगत होती है अर्थात् उसका नाम सुविख्यात कवि, नाटकप्रणेता तथा इतिहास लेखकादिकोंकी श्रेणीमें पाया जाता है। उसने अगरेजी भाषाको भलीभांति अधीतकर अपने लोगोंको उसके ग्रंथोंका विशेष प्रेमी बना दिया था। अगरेजलोगोंकी इससे मतभिन्नता केवल एक इसी बातमें पायी जाती है कि, अगरेज लोग शेक्सपियरको देवतामूर्त्ति मानते हैं और इस पंडितकी सम्मति है कि, उसकी योग्यता इतनी प्रशंसाके योग्य नहीं है।

आजदिन वह किस दुर्दशाको प्राप्त हो जाती सो कहते नहीं बनता। जंगलीलोगोंके आक्रमण तथा दीर्घ कालपर्य्यंत संचलित अमलदारीके कारण रोमन और ग्रीकके ग्रंथ जैसे मटियामेट होगये*। अथवा इतने दूर हम क्यो जॉय यवनलोगोंकी अमलदारीमे हमारे संस्कृतके ग्रंथोकी जो दुर्दशा हुई, उसे जब हम विचारते हैं और साथही जब उन रसिक तथा उदारचेता लोगोंके अनुकरणीय तथा प्रशंसार्ह कार्य्योंको मनन करते हैं कि, जिन्होने प्राचीन विद्याकी जिज्ञासासे प्रेरित हो सोत्कंठ उसे केवल संपादितही नही किया, किंतु उसकी रक्षा कर उसके सर्वव्यापी प्रचारार्थ शतशः प्रयत्न किये, तब हमारे मनमे सहसा उनके उपकारोकी परंपरा प्रादुर्भूत हो, हम उन्हें साधुवाद दे अघाते नही। पर यह तो कुछ बातही नही है। उक्त महानुभावोंने यदि इतनाही किया होता कि, हमारे प्राचीन ज्ञानभंडारको समादृत कर हमलोगोके नामकी संसारभरमें घोषणा की होती तो वे हमारी इतनी कृतज्ञताके पात्र कदाचित् न हो सकते। पर एतदतिरिक्त उन लोगोने हमपर एक महान् उपकार कियाहै जिसके लिये हम उनके चिरकृतज्ञ बने रहेंगे। वह उपकार यह है कि, इन लोगोने हमे हमारीही पुरानी विद्याकी यथार्थ परीक्षा और आलोचना करना सिखाया है। अर्थात् विद्या हमारीही है पर उसकी यथार्थ योग्यता इन लोगोके सिवाय भलीभांति हमे ज्ञात न हुई होती। इस कथनका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि हमारे पुराने पडितगण विद्यामें कुछ न्यून थे और पाश्चात्य पंडितोंका ज्ञान उनकी अपेक्षा अधिक है। बरन् हमतो यह समझते हैं, और प्रायः सभी

* एशिया महा देशमें, अरब अफगान तथा मुगलादिलोग जैसे हिंदू तथा पारसीक लोगोंके बाधक हुए, उसी प्रकारसे यूरोपमें गॉल, सेल्ट प्रभृति लोगोंने चारोओर अपना विस्तार बढा रोमकी बादशाहीका विध्वसकर दिया। इस अचित्य आपत्तिचक्रमें प्राचीन ग्रीक और रोमनलोगोंके सैकडों ग्रथ नष्ट हो गये। उनके यहांपर केवल दोही उदाहरण दिये जाते है। अथेन्समें तीन महान् सुविख्यात नाटककर्त्ता थे, उनके दो तीन सौ नाटकों मेंसे आजदिन केवल दस बीस ही उपलब्ध हो सकते है। वैसेही सिसरोने जितने ग्रथ लिखेहैं उनका आजादिन केवल $\frac{1}{20}$ वा भाग शेष रहगया है। सन १४५२ के सालमे तुर्क लोगोंने कस्तुन्तुनिया राजधानीको जब अपने अधिकारमें कर लिया उस समय केवल उस नगरकेही नहीं किंतु समस्त देशके पडितलोग ग्रंथोंको पेटसे लगा जो भागे सो सब यूरोपभरमें फैलगये और जहा जिसके सीग समाये वहां वह जा बसे। इस आपत्ति परपराद्वारा यूरोपको जो लाभहुआ सो इतिहासज्ञोंसे छिपा नहीं है. वह सोलहवी शताब्दीकी धर्मक्रांति है

भूमिका ।

लोग ऐसा समझते होंगे कि, अंगरेजलोग इधरकी विद्या तथा ज्ञानके अभिमानी भलेही बनें, और इस अभिमानका अनुकरण करनेवाले हम लोगोंमें जो बहुतेरे बन बैठे है वे भलेही व्यर्थकी बकवाद किया करें, पर वे लोग हमारे भूतपूर्व विद्वानोंकी अणुमात्रभी समता न कर सकेंगे । कहांतो गुरुके आश्रमपर रह शास्त्राध्ययनमे युगके युग व्यतीत करनेवालोकी कथा और कहां अब इधरके तीन चार वर्षमें रूपावलीसे ले ठेट वेदांतशास्त्रपर्य्यंत बाष्पीययानके वेगद्वारा विद्याका मार्गक्रमण करनेवाले हमारे नव युवक आंग्लविद्याविशारदोकी बात! कहनेका अभिप्राय यह है कि, आधुनिकलोग भूतपूर्वलोगोकी विद्यामे स्वप्नावस्थामेभी समानता न कर सकेंगे । पर उनमे एक महान् प्रशंसनीय गुण यह पाया जाता है कि, वे लोग अत्यत अनुसंधानप्रिय होते है ॥ यहांपर इसबातको स्वीकृत करते हम तनिकभी नही हिचकते कि हमारे पुराने पंडितोंमें अनुसंधानशीलताका पूर्णरूपसे अभावही था । यह बात अवश्य सत्य है कि, जिस प्रकार हम अपने पूर्व पुरुषोपार्जित अलंकारोंको अपने शरीरपर धारणकर उनकी रक्षा करतेथे उसी प्रकार हम अपनी प्राचीन विद्याका अध्ययनकर उन कीभी रक्षा किया करते थे, पर हमारी अवस्था ठीक वहीथी जो कि प्रायः रत्नजटित आभूषण धारण करनेवालेकी रहा करती है अर्थात् सब रत्नजटित अलकार धारणकरनेवाले जैसे उनकी परीक्षा नही जानते वैसेही हमभी अपनी विद्याकी परीक्षा नहीं जानते थे । इस बातका हम अभिमान भलेही कर लें कि हमने अपने पूर्वपुरुषोपार्जित धनकी रक्षा की है, पर यह बात हमे मुक्तकंठसे स्वीकृत करनी पड़ेगी कि उस हमारे चिररक्षित धनकी उपयोगिताका परिचय सर्व साधारणको इन्ही विदेशीलोगोंद्वारा प्राप्त हुआ है । इसके उदाहरण स्वरूपमें वर्त्तमान विषयको ही विचारिये । हमारे प्राचीन कवि गणोने अपने काव्योंमे शद्बार्थचमत्कृति तथा रसके मानो बड़े २ भंडार भर रक्खे थे । पर उनका आस्वादन हमारे अर्वाचीन पंडितगण किस प्रकारसे किया करते थे इसका यदि परिचय लेना हो तो वह पद पदपर प्राप्त हो सकता है अर्थात् उनकी टीका उनके प्रिय ग्रंथ, और अपर साधनो द्वारा उसका ज्ञान हो सकता है । मल्लिनाथकैसोंने संस्कृतके महान् २ काव्योंकी पंडितजनमान्य टीकाएं लिखी हैं, पर उनमे केवल

शब्दार्थ और व्याकरणकी जटिलताके सिवाय अधिक कुछ नहीं पाया जाता ! हां कही कुछ अधिक पाया ही जाता है तौ इतना लिखा हुआ और पाया जाता है कि अमुक स्थानपर अमुक २ अलंकार बांधा गया है। इन तीन चार निश्चित बातोंके अतिरिक्त उनमे और अधिक कुछ नही पाया जाता। पर अंगरेज टीकाकारोंकी टीकाओंको देखिये वे लोग मूल काव्यके रसविशेषात्मक स्थलों, तथा वर्णनचातुर्य्यादिको जिस उत्तमताके साथ लिखते है, वह उत्तमता हमारे उक्त ग्रंथोमें कही नही पायी जाती। *हमारे टीकाकारोके मतानुसार सब धान बाइस पसेरी ही के समझे जाते हैं, अर्थात् सब कवि एकसे हैं, उन सबके काव्य भी वैसे ही उत्कृष्ट, सब पद्य रोचकतापूरित, जहां तहां ऐसेही उल्लेख पाये जाते हैं। वही बात उक्त पंडितोके प्रिय ग्रंथोंके विषयमे भी दृष्टिगत होती है। इन ग्रंथोद्वारा भी

* हम समझते हैं कि हमारे केवल हिंदी तथा संस्कृत जाननेवाले पाठकोंको निम्न लिखित वृत्तातसे अंगेरज लोगोंकी ग्रथपरीक्षा तथा मार्मिकताका विशेष परिचय प्राप्त हो सकेगा।

हमारे प्रात स्मरणीय श्रीयुत गोस्वामी तुलसीदासजी लिखित अद्वितीय महाकाव्यरत्न रामायणकी टीका अनेक पडितोंने प्रचंड परिश्रम उठाकर लिखी हैं, पर प्राय सब लोगोंने अपना पांडित्य शब्दार्थ चमत्कृति प्रदर्शित करनेमे ही शेष करदियाहै। इन टीकाकारोंमेंसे किसीने कहीं वह बात नही लिखी कि जिससे सर्वसाधारणको बोध होता कि हमारे गोसाईजी एक स्वतन्त्र ग्रथकार थे। उलटे किसी किसीने और यह लिख दिया है कि गोसाईजीने अध्यात्म वा वाल्मीकीयरामायणका अनुवाद किया है। अब देखिये अगरेज पादरी रेवरेंड एड्विनग्रीव्स साहिबने विधर्म्मी होनेपरभी हमारे भाषाके कविशिरोमणि गोसाईजीकी धार्मिक कविताकी प्रशसा तथा उनके स्वतंत्र ग्रथकार होनेकी वातको किस मार्मिकताके साथ लिखा है:-

"न केवल परदेसियोमे पर कभी२ हिंदुओंमेंभी यह वात समझी जाती है कि यह रामचरित मानस वाल्मीकिकृत रामायणका उल्था है, पर यह बात ठीक नहीं है। दोनोंमें तो सात सात काड हैं, और दोनोंमें एकही कथा है जो न वाल्मिकिकी न तुलसीदासकी बनाई है पर वहुत दिनोसे प्रचलित है। पर इस कथाको लेकर तुलसीदासने अपनीही रीतिपर इसका वर्णन किया है और वह रीति निस्सदेह अपूर्वा है। तुलसीदासके अगणित अनुकारी हुए हैं। पर वह किसीके अनुचर नहीं थे। उनको न उल्था करनेवाला, न अनुगामी, पर एक सृष्टिकर्त्ता समझ लीजिये॥"

नागरीप्रचारिणीपत्रिका तीसरा भाग पृष्ठ ६६.

उक्त बात भलीभांति प्रमाणित हो सकती है। इन लोगोंके प्रिय ग्रंथ शकुंतला रघुवशादि नही है, कि जो एतद्देशीय तथा पाश्चात्य रसिकलोगों द्वारा परमोत्कृष्ट निश्चित किये गये है, किंतु महाकाव्योमे 'नैषध' और छोटे काव्योंमे 'भारतचपू' 'लक्ष्मीसहस्र' आदि यही इन लोगोके परम प्रिय ग्रथ हैं ॥ इस कथनका यह अभिप्राय नही है कि यह लोग 'रघुवंश' तथा 'किरातार्जुनीय' प्रभृति काव्य पढते पढाते नही, पर हां बहुधा उक्त कैसे ग्रंथोंकोही पढते पढाते हैं। इन लोगोंकी मडलीमे जब कभी उक्त ग्रथोंमेंके एक आधे श्लोककी चर्चा छिड जाती है और एक एक श्लोकके पांच पांच सात सात दस दस श्लेष जब निकाले जाते हैं तब शास्त्रीलोगोके मंडलीके आनदकी सीमा नही रहती। वह दृश्य भी एक प्रेक्षणीय वस्तु है। ज्यो ज्यो श्लेषोंकी सख्या बढती जाती है त्यो त्यों मडलीसे यही ध्वनि सुनाई देती है 'बलिहारी है इस कविकी' 'धन्य है इसकी कविताकी'। इस प्रकारकी उक्तियोके मारे रसज्ञ मडली तल्लीन होजाती है। कहना नही होगा, कि इन लोगोंके मुखारविंदसे उस समय जो वचनमकरंद झडता है वह भी उसी प्रकारका रहता है। अर्थात् ऐसे समयपर यह लोग प्रायः वही पद्य छेड़ते हैं जिसमे कोई आश्चर्योत्पादक वक्रोक्ति वा कोई व्यवहारिक नीति गर्भित रहती है। जिनमें वर्णनादि उत्तम रहते है, उनकी चर्चा इन लोगोंके मुहँसे कभी श्रवणगत नही होती। निदान यूरोपके संस्कृतज्ञ पंडितोंने इस अतिम उपकारद्वारा हमे तथा हमारे प्राचीन ग्रंथप्रणेतृगणोंको प्रत्यंत अनुगृहीत किया है। इन सब बातोंका स्मरण कर उनके दोष तथा निंदापूरीत आलोचनाओपर विशेष तीव्रताके साथ दृष्टिपात करना हम उचित नही समझते।

निदान वर्त्तमान ग्रथकी भूमिकामे जिन विचारोका पाठकों पर प्रकाशित करना आवश्यक था वे प्रदर्शित कर दिये गये। यहां पर इस बातका पुनरपि उल्लेख करनेकी कोई आवश्यकता नहीं बोध होती कि अगला निरूपण उपरितन कथित नूतन प्रथाके अनुसार किया जायगा। उसकी व्यवस्थाका बोध निम्नोल्लिखित विषयक्रमद्वारा भली भांति हो सकता है। आगामिलेखोंके सपादनमे यह क्रम

जायगा कि प्रथम प्रत्येक कविके जीवनकालका निर्णय किया जायगा, अनंतर उसके ग्रंथोंका उल्लेख और उनके गुणदोषोंकी विवेचना, और अंतमें उनके उत्तमोत्तम स्थानोंके संग्रह उद्धृत किये जॉयगे। भरोसा तो है कि उक्त व्यवस्थाके योगसे हिंदी वा संस्कृतके सहृदय पाठकों तथा विद्यार्थियोंको जो अपेक्षित है सो सब प्राप्त हो सकेगा।

अस्तु; अब प्रथम कविविषयक लेखका प्रारंभ किया जाता है। यह कवि कौन है उसके विषयमें स्यात् किसीको भी संदेह न होगा। काल तथा योग्यतानुसार जिसका सबके प्रथम नामोल्लेख किया जाता है वह कवि एकही है। जयदेव स्वामी लिखते हैं.—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥

"जिस कविताबधूका चोर चिकुरनिकर (केशकलाप) है, मयूर कर्णपूर (कर्णभूषण) है, भास हास (हास्य) है, कविकुलके गुरु अर्थात् कविश्रेष्ठ कालिदास जिसका विलास है, हर्ष हर्ष (चित्तका आनंद) है, और बाण जिसके हृदय मंदिरमें संचार करने वाला स्वय पंचबाण (मदन) है, वह संसारमें ऐसा कौन है जिसके मनको कौतुक-मग्न नही कर सकती? *

सारांश उक्त उल्लेखानुसार कवि कुल गुरुसे ही विषयविवेचनका प्रारभ किया जाता है। इति।

* चोर कविने 'चौरपचाशिका' नामका ग्रथ लिखा है। इस ग्रथका वृत्तांत बडा रहस्यावगुंठित है। मयूरने 'सूर्यशतक, प्रणीत किया है। इस 'शतक'की दंतकथाभी बडी विलक्षण है। भास धावकके नामसेभी प्रसिद्ध है। इसके ग्रथ विशेष विख्यात नही है। कालिदासके विषयमे यहा विशेषोल्लेख अनावश्यक है। हर्षको श्रीहर्षके नामसे सब संस्कृतज्ञ जानतेही है। 'रत्नावली' और सुप्रसिद्ध 'नैषध' काव्यके रचयिता यही कहे जातेहै। यूरोपीय विद्वानोकी सम्मति है कि 'राजतरंगिणी'में हर्षदेव नामका काश्मीरका जो राजा वर्णित है सो यही है। बाण कवि कादंबरीके कर्त्ता है। इनके विषयमें आगे एक स्वतंत्र लेखही लिखा गया है।

श्रीः ।

संस्कृतकविपञ्चक ।

कालिदास ।

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्म्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विवजायते ॥ हर्षचरित ।

कालिदासके विषयमें यही कहा जाता है कि प्रायः होमरकी नाई उसके विषयमें अभीलो निश्चयरूपसे कोई वृत्तान्त उपलब्ध नही हुआ है । उसकी असामान्य कीर्त्ति आज अनुमान हजार डेढ़ हजार वर्षसे अद्वितीयताके कारण उसके स्वदेशमें अमेटरूपसे फैली हुई है, और उसका नाम आबालवृद्धके जिह्वाग्रपर पाया जाता है, पर वह कौन था, कहां था, कब था आदिके विषयमे किसीको कुछभी ज्ञात नही है । उक्त तीनो बातोका अनुसन्धान करनेके लिये अंगरेज और भारतवर्षीय विद्वान लोगोंने बहुत उद्योग किया है; पर अद्यावधि किसीके भी उद्योगको सफलता प्राप्त नहीं हुई है । उसकी जाति, स्थल, और जिवनकाल आदि अभीलो अनिश्चित हैं । कोई कहते हैं वह सारस्वत ब्राह्मण था । कोई कहते हैं वह काश्मीरका रहनेवाला था, कोई कहते हैं, नहीं वह उज्जैनमे रहता था, वैसेही और लोग कहते हैं वह धारानगरीका निवासी था, ऐसीही मतभिन्नता उसके जीवनकालके विषयमेंभी पायी जाती है । किसीका मत है कि वह ईसवी सन्‌के पूर्व पहिली शताब्दीमे जन्मा था, कोई कहते हैं नहीं उसके अनन्तर छठी शताब्दीमें वह हुआ है । इस प्रकारसे कालिदासके विषयमे निश्चयरूपसे किसी बातका पता नही लगता । कई लोगोकी सम्मति है कि कालिदास दो हुए हैं । कई लोगोंका अनुमान है

---

१ कालिदासकी उत्तम उक्तिकी चर्चा छिड़ने पर ऐसा कौन है जिसे वह, आनन्द नहीं होता जो मधुर एवं रस चुहचुहाती हुई नूतन मञ्जरीको देखकर होता है ।

कि जिस रससिद्ध महाकविने शाकुन्तलादि ग्रन्थ लिपिबद्ध किये हैं, वह उज्जैनका निवासी था, और 'नलोदयादि' सामान्य एवं क्लिष्ट काव्योंका रचयिता, भोजराजाका आश्रित कोई दूसरा कालिदास हुआ है। तात्पर्य ग्रीसदेशके आदि कविकी नाई हमारे महाकविके विषयमे अबलो एकसी खींचाखींच चली जाती है पर उससे मथितार्थ अभीलो कुछभी सम्पादित नहीं हुआ। दयामूर्त्ति परमेश्वरसे हमारी सानुरोध यही प्रार्थना है कि उक्त खींचातानीका परिणाम जैसे होमरका अनुसन्धान करते करते अन्तमे यह निश्चित होगया* कि उस नामका कोई मनुष्यही नही था, वही आक्षेप विचारे हमारे कविके अस्तित्व पर न आने पावे।

कालिदासके विषयमे हमें कुछभी वृत्तान्त उपलब्ध न होनेका बड़ाभारी कारण तो यह है कि उसने निजके विषयमे आत्मरचित ग्रन्थोंमें कुछ भी नहीं लिखा।भवभूति,बाणप्रभृति कवियोंने जिस प्रकारसे अपने वंशकावर्णन अपने ग्रन्थोंके आदिमे किया है, और प्रायः सब कवियोंकी अपने पाठकों तथा भावी लोगोंको आत्मपरिचय देनेकी जो प्रथा पायी जाती है, उसकी कालिदासने नितान्त उपेक्षा की है। अपने ग्रन्थोंपर उसने अपना नामलों तो लिखाही नही तो फिर अपर परिचयकी बात तो बहुत दूरकी है। उसकी कीर्त्ति पहिलेसेही दिगन्तरव्यापिनी होकर,उसके ग्रन्थ समस्त लोगोंको परम प्रिय एवं मान्य यदि न होजाते, और यदि वह नाटक प्रणीत न करता, तौ आज दिन उसके नामका लुप्त होजाना कोई असंभव बात न थी। उक्त दोनो कारणोंके योगसे उसकी रक्षा तो हुई है, पर तिसपर भी उसके मौनभावने एक बड़ीभारी आपत्ति उत्पन्न करही दी। वह यह है कि बहुतसे सामान्य और कई अप्रयोजनीय ग्रन्थ भी उसके नामसे आजलो प्रसिद्ध होते चले आये

---

* जर्मनीमें उल्फ नामका कोई पण्डित था। उसने यह सम्मति प्रकट की है कि, होमर नामका कोई मनुष्यही नही था। 'इलियड' और 'ऑडिसी' काव्यको अनेक कवियोनें मिलकर लिखा है, और वे उक्त नामसे आजलो चलेआते हैं यही समझना चाहिये। पर अब इधर उक्त मतकी प्रबलता हीन होगयी है।

हैं, और भूतपूर्व पण्डित लोगोमे अनुसंधानशीलताका पूर्णरूपसे अभाव होनेके कारण वे सब उसके बड़े नामपर प्रसिद्ध होते चले आये । I अमुक २ काव्य ग्रन्थपर कालिदासका नाम अवश्य पाया जाता है, पर उसमें उसका कवित्व गुण कहांलो दृष्टिगत होताहै, इस बातका विचार करना तक पुराकालमें किसीके मनमे नही आता था । अतः कालिदासके नामसे आजलो प्रसिद्ध होते आये हुए ग्रन्थोंमेंसे वर्त्तमान पण्डितोने कई ग्रन्थोको पृथक् कर उन्हे झूठ ठहराया है । इसके उदाहरण स्वरूपमें 'मालविकाग्निमित्र' नाटक और 'नलोदय' काव्यका नामोल्लेख किया जाता है । उक्त नाटक कालिदासकृत नही है, वा निदान सच्चे कालिदासका नही है, यह सम्मति विलसन् साहबने एक स्थानपर प्रकाशित की है, तबसे उसके विषयमे सबके मनमें सन्देह उत्पन्न होगया है ।* और यह बात प्रतीत भी होती है, क्योकि उक्त नाटकको पढ़तीवार रसज्ञजनोको इस बातका तनिक भी बोध नही होने पाता कि हम 'शाकुंतला, और 'विक्रमोर्वशी' रचयिता कविकी कविता पढ़ रहे हैं । 'नलोदय' काव्यकी बात उक्त कथन से भी निराली है । जिसमे अणुमात्र भी रसिकता होगी, और जिसे कालिदासके कवित्वगुणकी यत्किंचित् भी पहिचान

I विना नाम ग्रन्थके प्रकाशित होनेसे दो प्रकारके अनर्थ होते है । एक तो निम्नश्रेणीके ग्रन्थोंको प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओके नामसे प्रसिद्ध करनेका अवसर लोगोके हाथ लग जाता है, दूसरे और लोगोको भी प्रसिद्ध ग्रन्थोंके साथ अपना नाम चपका देनेका अवसर मिलजाता है । इस दूसरे अनर्थसे अपनी कविताकी रक्षाकरनेके हेतु पण्डितराज जगन्नाथने अपने 'भामिनीविलास' के अन्तमे निम्नलिखित श्लोक लिख दिया है ।

दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शंकया ।
मदीयपद्यरत्नाना मञ्जूषैषा मया कृता ॥

'दुष्ट एव जारजात लोग मेरे पद्यरत्नोको अपहृत करलेगे इस शंकाके कारण यह मंजूषा मैने प्रस्तुत की है।पण्डित राजके समस्तरत्न एक सूत्रमे गुंफित न होनेके कारण उक्त भयकी विशेष सभावना थी ।,

*विलसन् साहबने उक्त प्रतिकूल सम्मति अपने 'हिन्दू थिएटर' सज्ञक ग्रन्थमे प्रकाशित की है । इस ग्रन्थमे संस्कृत परमोत्कृष्ट नाटकोंका अङ्गरेजीमें पूरा उत्था और शेषका योंही थोड़ा बहुत स्वरूप कथन किया गया है ।

होगी, उसे उक्त क्लिष्ट काव्यकी कर्तृताके विषयमें बिलकुल शङ्का न होगी। कहां तो संस्कृत कवियोंके कुलगुरुकी प्रसन्नता और सरसतासंपन्न वाणी और कहां नारिकेलपाक तुल्य उक्त हठ कवित्व! आजपर्यंत समस्त धरतीपर जो प्रसिद्ध २ कवि हुए हैं उनमेंसे उक्त कैसे इन्द्रजालको प्रदर्शित करनेमे अपनेको किसीने भी धन्य नहीं माना, बरन उसके विषयमें सबने तिरस्कार प्रदर्शित किया है। बड़े कष्टसे शब्द चमत्कृतिका साधन कर अरसिक लोगोंसे प्रशंसा प्राप्त करनेका उत्साह केवल निम्न श्रेणीके कवियोंमें दृष्टिगोचर होता है। यह बात आगे अपर कवियोंके वर्णनमें प्रदर्शित की जायगी। कालिदासादिकोंके श्रोतृचित्तरंजन करनेके साधन कुछ निरालेही रहते हैं। गोवर्धनाचार्य्यने कहा है।

साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीला कालिदासोक्तिः॥

"शिक्षाके समयमें भी आनन्ददेनेवाले केवल दोही विषय हैं, एक स्त्रीसमागम, और दूसरा कालिदासकी कविता। पहिला कामिनियोंके मधुर, कोमल, और भावयुक्त मंद आलापोंसे परिपूर्ण है, और दूसरी कविता उक्त मुग्ध भाषणोंकी नाईं मनोहर है। *

सारांश आजलों कालिदासके नामसे प्रसिद्ध होते चले आयेहुए ग्रन्थोंमेसे कई ग्रन्थोंके विषयमे संशयात्मकता पायी जाती है, इसका कारण ऊपर कही चुके हैं। अब जो ग्रन्थ यथार्थमें उसके हैं और अन्तरङ्ग रचना तथा जनप्रसिद्धिद्वारा उसीके निश्चित होते हैं उनके विषयमें नीचे यथाक्रम विवेचना की जाती है।

---

* केवल शब्द चमत्कृतिसम्पन्न काव्यद्वारा यथार्थ रसिककी मनस्तुष्टि बिलकुल नहीं होती। यह अभिप्राय 'आर्यासप्तशतीमें' बड़े सरस एवं मार्मिक दृष्टान्तद्वारा व्यक्त किया गया है।

रतरीतिवीतवसना प्रियेव शुद्धाऽपि वाङ्मुदे सरसा।
अलसाऽसालंकृतिरपि न रोचते शालभञ्जीव॥

वैसेही,

अध्वनि पदग्रहपरं मदयति हृदयं न वा न वा श्रवणम्।
काव्यमभिज्ञसभायां मञ्जीरं केलिवेलायाम्॥

कालिदासका प्रथम ग्रन्थ 'ऋतुसंहार' है।* इसमें षड्ऋतुका वर्णन किया गया है। भिन्न २ ऋतुमें प्रकृति देवी जिन जिन रूपोंको धारण करती है उनका इसमे संस्कृतकविकुल प्रथानुसार कविने वर्णन किया है । इस काव्यका विशेष गुण मधुर एवं कोमल पदरचना और कविजन संप्रदायानुसार सरस अर्थका निबन्धनमात्र है । इस ग्रन्थको देख यही बात विचारमे आती है कि हमारे कविने प्रकृति देवीका अनुधावनकर इस सरलसे विषयको पहिलेसे हाथमे लिया होगा, और जिस वाग्देवीके सर्वस्व एवं पूर्ण कृपाका आगे वह पात्र बना, उसे उक्त छोटेसे काव्यद्वारा उसने प्रथम नमन किया होगा । अब इधर अंगरेजी कविताके पठनपाठनद्वारा जिन लोगोंको प्रकृतिवर्णनके नूतन प्रकारोंका परिचय हुआ होगा उन्हे उक्त ग्रंथका वर्णन बहुत पसंद नहीं होगा । क्योंकि वे लोग कहते हैं कि उक्त ग्रन्थ विचित्रताविशेष और सृष्टिके पूर्ण एवं सूक्ष्म अवलोकनके अभावसे दूषित है । और सच पूछिये तो उक्त दोषको दूर करनेके लिये कोई उपाय भी नही है । वर्त्तमान काव्यके पक्षमे इतना अवश्य कहा जासकता है कि उक्त दोष केवल उक्त काव्यमें ही नही घटित होता किन्तु संस्कृत कवितामें सृष्टिवर्णनप्रणाली सामान्यतः चारो ओर उसी प्रकारकी पायी जाती है । इसी कविके 'रघुवशमे' 'वसन्त' और ग्रीष्मऋतुका वर्णन है, 'कुमारसम्भवमे' पुनः केवल 'वसन्तका' वर्णन है, और वैसेही 'मृच्छकटिक नाटकमे पावसका 'कादम्बरी मे' वसन्त और वर्षाका, 'किरातार्जुनीयमें' शरदृतुका और 'शृंगारशतक में' पांचो ऋतुका वर्णन है। सारांश उक्त भिन्न २ स्थलोमें संस्कृत कवियोके ऋतुवर्णन पाये जाते हैं । पर एक छोरसे लगा दूसरे छोरतक एकही प्रकार दृष्टिगत होता है। वसन्तके वर्णनमें कोयलका कलरव, और आंबोका बौरना, ग्रीष्मके वर्णनमें चंद्रिका और शीतलताका उपचार, पावसके वर्णन मे मोर चातकका आनन्दप्रदर्शन शरद्वर्णनमे हंस और स्वच्छ चन्द्रिका का वर्णन और हेमंत शिशिरमे

* यह बात तो स्पष्टही है कि कालिदासके ग्रंथोंकी तालिका कालक्रमानुसार न बन सकेगी एतावता वर्त्तमान लेखमें वह क्रम ग्रंथोंकी उत्कृष्टतापर निर्भर किया गया है ।

शीतवायुके झकोरोंको वर्णन, इत्यादि प्रसिद्ध प्रसिद्ध बातोंके अतिरिक्त कही कुछ अधिक वर्णन नही पाया जाता । अंगरेजी कवितामे जिस प्रकार गगनभेदी पर्वतोके और उनके तुङ्ग शिखरोंसे दृष्टिगत होनेवाले भव्य एवं रमणीक दृश्योंके, और तूफानसे उभड़े हुए समुद्र आदिके वर्णन पाये जाते हैं, वैसे संस्कृतमे प्रायः नही दीख पडते । और तो क्या पर समुद्र परके मेघकेलिये संस्कृतमे कोई शब्द है वा नही इसकी शंकाही बनी रहती है। 'वात्या' 'वात्या चक्र' प्रभृति शब्द हैं पर वे धरती परके मेहोंकेही वाचक हैं। अंगरेजी और संस्कृत कविताकी यदि तुलना की जाय, तो दोनोमें ऐसे विशेष भेद बहुत पाये जायँगे, पर उन सबमे यहप्रधान होनेके कारण भाषाशास्त्रविशारदोंद्वारा विचारार्ह है । सृष्टिके चमत्कारऔर रमणीक दृश्यो-को देख एक सामान्य विचारशील मनुष्यका मनभी तल्लीन हो आश्चर्य्य-चकित हो जाता है, तो फिर 'मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्तिचेतः' ऐसा जिन्हे अनुभव होचुका है उन कविश्रेष्ठोके मन उन्हे देख कैसे तल्लीन होने चाहिये । पर वह बात उनके वर्णनोमें विशेषरूपसे दृष्टिपथगामिनी नहीं होती । अब इसमे अणुमात्रभी संदेह नही है कि सूक्ष्मविचार करनेपर इनके कारण अनेक ज्ञात होंगे, पर संप्रति यहां उन्हीमधान २ कारणोका उल्लेख किया जाता है जो सर्वसाधारणको सहसा विदित होसकते हैं । कालिदास, बाणप्रभृति कवियोने राजधानीमे होनेवाले महोत्सवोंका और राजागणोंके अन्तःपुरआदिका जो स्थान स्थानपरवर्णनकिया है उससे यह बात स्पष्टरूपसे प्रतीत होती है कि वे लोग राजाश्रित थे । राजा-श्रित होनेके कारण वनश्रीकी असामान्यशोभाके निरीक्षणार्थ यथेच्छ भ्रमणकरनेकी आधीनता उन्हे अप्राप्त थी । अरण्यसृष्टिके चमत्कार देखनेका अवसर उनके हाथ तभी लगता जब कभी राजालोग मृगया खेलनेको जाते और उन्हे अपने साथ ले जाते; ऐसे प्रसंगोका वर्णन उनकी कवितासृष्टिमें अनेक स्थलोपर उपलब्ध होता है । ऋतुसंहारादि काव्योमे जो वर्णन पायेजाते हैं वे ऐसे हैं जो नगरके नगर वा उपवनमे

होतेही उसकी देह क्रोधाग्निसे संतप्त होगयी, शिवकी अगाधि महिमा तुझ कैसे नराधमको क्योंकर ज्ञात होसकती है, इत्यादि कह पार्वतीने उसकी निर्भर्त्सना की; फिर वह वही बात पुनः बोलनेहीको था कि उसे वहांसे निकालदेनेके लिये पार्वतीने अपनी सखीको आज्ञा दी और स्वयं उसने वहांसे चलदिया। इतनेमे उक्त मुनिने अपना सच्चा शिवरूप प्रगटितकर पार्वतीके संदेहका निवारण किया, और आजसे मैं तेरा दास हुआ ऐसा कह उन्हे उनके तपकी सफलता ज्ञात करायी। छठेमें शिवके स्मरण करतेही सप्तर्षि प्रगट हुए और शिवकी आज्ञानुसार उन लोगोंने हिमालयके निकट जा पार्वतीके विवाहके विषयमे बातचीतकर विवाह निश्चित किया। अंतिम अर्थात् सातवे सर्गमे उमा महेश्वरके विवाहका आनंदोत्सव वर्णित है। कालिदासके नाम तथा उसके बहुतेरे ग्रंथोको देख जाना जाता है कि शिव पार्वती उसके उपास्य देव थे। तीनो नाटकोकी नांदीमे शिवनमस्कृति ही पायी जाती है, 'रघुवंश' के आदि और कही २ बीचमे भी शिवस्तुतिके श्लोक पाये जाते हैं; पर यह बात 'मेघदूतमें' बहुत अधिकताके साथ पायी जाती है। 'कुमारसंभव' मे शिवपार्वतीके उद्वाहपर्य्यंतकी समस्त बातोंका वर्णन है; और 'कुमारसंभव' अर्थात् कार्त्तिकेयका जन्म, इसनामसे इसकाव्यका अवसान यहीं अनुमित होता है। पर अब इधर आगेके और भी दस सर्गोंका पता लगा है, पर वे कालिदासके ही लिखे हुए हैं वा किसी अन्यके इस विषयमे एक नया विवाद उत्पन्न होगया है। बहुतेरे लोगोंकी सम्मति ऐसी कुछ जान पड़ती है कि उन्हें कालिदासकृत नही मानना चाहिये। क्योंकि यदि कालिदासही इनकी रचना करता तो वह इस काव्यका 'तारकवधम' वा ऐसाही कोई दूसरा नाम रखता, 'कुमारसंभव' न रखता। के अतिरिक्त कालिदासके सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथकी टीकाभी सर्गोंपर्य्यंतही उपलब्ध होती है, आगेकी बिलकुल नहीं मिलती; यही दीखपड़ता है कि यह सर्ग उसके समयमे प्रसिद्ध न थे, वा

बिभवदर्शनकी ऐसी उत्कट इच्छा और उत्साह था कि उसका पूरा जन्म पहाड़ी देश, नदी मैदानादि पर भ्रमण करनेमें बीता । अस्तु, इन सब बातोमेंसे हमारे कवियोको कहीं कुछभी अनुकूल न था, अतः यह ऊनता उनके काव्योंमें दीख पड़ती है ऐसा कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

'कुमारसम्भव' महाकाव्यको जान पडता है कालिदासने मध्यम अवस्थामें लिखा होगा । इसकी कथा शैवपुराणसे लीगयी है । आदिमें पार्वतीके पिता हिमालयका वर्णनकर, पहिलेसर्गमे उनका जन्म और उसकी मुग्धावस्था वर्णित की है । दूसरेमे त्रिजगत्पीडक तारकासुरत्रसित इन्द्रादि सुर ब्रह्माको शरणागत हुए हैं; और ब्रह्माने मदनको वश करनेकी युक्ति इन्द्रको बतलाई है । तीसरेमे मदनने इन्द्रकी सूचनानुसार शिवप्रेरणाका काम अङ्गीकृत कर अपने सहायक वसन्तको प्रगटित होनेकी आज्ञा दी है । अनन्तर पार्वती शिवदर्शनार्थ आयी हैं, और कामने तदर्थ शिवके हृदयमे क्षणभर कामबुद्धि उत्पन्न की है, पर शीघ्रही शिवने उसका दमनकर चारों ओर क्रोधाग्निकी दृष्टि फैलायी । उसके मदनपर पड़तेही वह भस्म होगया । चौथेमे मदनप्रिया रतिके पतिवियोगजन्य शोकका वर्णन है । शोकसंतप्त हो उसने वसंतसे चिता प्रस्तुत करनेकी प्रार्थना की, पर इतनेमें आकाशवाणी द्वारा उसे पुनः पतिप्राप्तिका आश्वासन मिलनेके कारण वह निश्चय उसने छोड़ दिया। पांचवेंमें पार्वतीका तप वर्णित है । शिवके सहसा अन्तर्हित होजानेपर पार्वतीका जो अपमान हुआ उससे नितांत दुखी हो पार्वतीने हिमालयपर उग्र तप करनेका निश्चय किया । फिर बहुत काल बीतनेपर एक मुनि उसके आश्रमपर आये । उनका उसने स्वागत किया तदनन्तर मुनिने उनके घोर तपका कारण पूछा । सखीद्वारा उक्त मुनिको सब वृत्तान्त सुनाया, जिसे सुन मुनिने अत्यन्त विस्मितसे हो अमंगलरूप शिवपर इस प्रकार आसक्त होना बहुत अयोग्य है कहकर शिवकी निंदा करना प्रारंभ किया । शिवनिंदा पतिप्राणा पार्वतीके कर्णकुहरमे प्रविष्ट

पडता है । 'रघुवंशमें' सूर्यवंशी राजाओका वर्णन है । दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम,कुश और अतिथिके दिग्विजयादि मतापो और उनके सांसारिक सुखदुःखजन्य अनुभवका वर्णन पहिले सतरह सर्गोमे किया गया है । अठारवेमें अतिथि राजाके वंशजोका समासवर्णन है, और अतिम अर्थात उन्नीसवे सर्गमे रघुवंशके अतिम राजा अग्निवर्णके शृंगार और अंतका वर्णन है । 'रघुवंश' कालिदासके समस्त काव्योमे श्रेष्ठ है। मौढ़ और मधुर वर्णरचना, वर्णनकी शैली, भिन्न २ रसोका आविर्भाव आदि उसके गुणोका उक्त काव्यमे पूर्णरूपसे परिचय मिलता है । जिस वंशके गुणकथन करनेकेलिये वाल्मीकादि कविश्रेष्ठोंकी वाणी पंगु होगयी, और उसके योगसे जिस वशकी कीर्त्तिको अमरता माप्त हुई, उसपिर आक्षेप कर मैं छोटे मुहॅ बडा कौर ले रहाहूं इस ढिठाईके लिये बहुत संकुचित हो यह कविकुल गुरु लिखते हैं:–

मंदःकवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिववामनः ॥

"जैसे किसी वृक्षके फल केवल ऊंचे मनुष्यको माप्य हों, और कोई नाटा मनुष्य लोभके कारण उसकी माप्तिकेलिये योंही ऊपरको हाथ उठावे, ठीक वैसेही मन्दमति मै कवियशकी माप्तिके निमित्त व्यर्थ इच्छा करता हूं, एतदर्थ विज्ञलोग मेरा उपहास करेंगे" उक्त कथनसे यह बात निश्चय रूपसे लक्षित होती है कि कालिदासने हाथमे लिये हुए कामको असामान्य समझ उसके पूर्ण रूपसे संपादनार्थ कोई बात उठा नही रक्खी । और वास्तवमे यह बात ऐसीही दृष्टिगत होती है । जैसे किसी विशाल नदीका मवाह जहां २ देखा जाय वहां २ रमणीक ही भासित होता है तद्वत इस काव्यका मत्येक सर्गही नही वरन उसका मत्येकं श्लोक भी कविके अपूर्व ... पूर्णरूपसे परिचय देता है । तथापि रसानुभवमे जहां अन्तःकरण ... होजाता है ऐसे जो अत्युत्कृष्ट स्थल इस काव्यमें हैं वे आगे उल्लि... जायँगे।सिंह और दिलीप,इंद्र और रघु,मियंवद और अज आदिका

प्रसिद्धभी हो तो यह कालिदासकृत माने नहीं जाते थे । परंतु अपर लोगोका यहभी मत है कि यह सर्ग स्वयंकालिदासके लिखे हुए नही हैं, स्यात उसके किसी शिष्यके लिखे हुए होंगे । अर्थात् जिस प्रकारसे कादंबरीग्रंथका उत्तरभाग बाणभट्ट कविके पुत्रने प्रणीत किया है उसी प्रकारसे स्यात किसी शिष्यने इन्हे लिखा हो । इस दूसरी कल्पनाके समर्थनमे यह कहा जा सकता है कि अंतिम सर्गोंकी पूर्वके सर्गोसे अत्यंत विभिन्नता नही बोध होती । बहुतेरे शब्द, शब्दसमूह और लेखप्रणाली दोनोमे एकसी देखपड़ती हैं । पर प्रौढता और अर्थचमत्कृति प्रभृति गुण पहिले सात सर्गोंकी नाई अंतके सर्गोंमें सध सकेसे नहीं देखपड़ते । यद्यपि इस ग्रंथके विषयमे पंडितोंके उक्त प्रकारके भिन्न २ मत पाये जाते हैं तथापि उक्त संशयजालका जबलों निरसन हो निश्चयरूपसे कोई बात उपलब्ध नही होती तबलों उत्तर सर्गोंकी कर्तृताको वादग्रसित समझ हम संप्रति किसी पक्षका अनुधावन नही करते । इस काव्यमें स्थल स्थलपर सुंदर वर्णन हैं, और शृंगार एवं शोक-रसकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है।यहां यह बात लिखनेकी कोई आवश्यकता नही है कि इस ग्रंथके उत्तम श्लोक और संवाद यदि उद्धृत, किये जाँय तो बहुत विस्तार हो जायगा।अतः यहांपर इतनाही कहदेना अलम् होगा कि आदिका हिमालयवर्णन, और पांचवे सर्गके कपटवेष-धृक् मुनि और पार्वतीका संवाद अत्यंत उत्कृष्ट हैं। पर्वतके ऊपरके अनेक सृष्टिचमत्कारोंके वर्णन परम चमत्कारजनक एवं आनंदोत्पादक हैं।वैसेही पांचवें सर्गमे पार्वतीके प्रेमकी परीक्षालेनेके लिये कपटमुनिने जो भाषण किया है सो और पार्वतीने उसका जो तिरस्कार किया है सो सब प्रसंग परम सरस और हृदयग्राही हैं ।

कालिदासके परमोत्तम ग्रंथ 'रघुवंश' 'मेघदूत' 'शकुंतला' नाटक और 'विक्रमोर्वशी' नाटक हैं; इन्हें उसने प्रौढ अवस्थामें लिखा होगासा जान-

पड़ता है । 'रघुवंशमें' सूर्यवंशी राजाओका वर्णन है । दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम,कुश और अतिथिके दिग्विजयादि मतापो और उनके सांसारिक सुखदुःखजन्य अनुभवका वर्णन पहिले सतरह सर्गोंमे किया गया है । अठारवेमें अतिथि राजाके वंशजोका समासवर्णन है, और अतिम अर्थात उन्नीसवे सर्गमे रघुवशके अतिम राजा अग्निवर्णके शृंगार और अंतका वर्णन है । 'रघुवंश' कालिदासके समस्त काव्योमे श्रेष्ठ है। प्रौढ़ और मधुर वर्णरचना, वर्णनकी शैली, भिन्न २ रसोंका आविर्भाव आदि उसके गुणोका उक्त काव्यमे पूर्णरूपसे परिचय मिलता है । जिस वशके गुणकथन करनेकेलिये वाल्मीकादि कविश्रेष्ठोंकी वाणी पगु होगयी, और उसके योगसे जिस वशकी कीर्त्तिको अमरता माप्त हुई, उसीपर आक्षेप कर मैं छोटे मुहँ बडा कौर ले रहाहूं इस ढिठाईके लिये बहुत संकुचित हो यह कविकुल गुरु लिखते हैं:—

मंदः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिववामनः ॥

"जैसे किसी वृक्षके फल केवल ऊंचे मनुष्यको माप्य हों, और कोई नाटा मनुष्य लोभके कारण उसकी माप्तिकेलिये योंही ऊपरको हाथ उठावे, ठीक वैसेही मन्दमति मैं कवियशकी माप्तिके निमित्त व्यर्थ इच्छा करता हूं, एतदर्थ विज्ञलोग मेरा उपहास करेंगे" उक्त कथनसे यह बात निश्चय रूपसे लक्षित होती है कि कालिदासने हाथमे लिये हुए कामको असामान्य समझ उसके पूर्ण रूपसे संपादनार्थ कोई बात उठा नही रक्खी । और वास्तवमे यह बात ऐसीही दृष्टिगत होती है । जैसे किसी विशाल नदीका मवाह जहां २ देखा जाय वहां २ रमणीक ही भासित होता है तद्वत इस काव्यका मत्येक सर्गही नही वरन उसका मत्येक श्लोक भी कविके अपूर्व गुणका पूर्णरूपसे परिचय देता है । तथापि रसानुभवमें जहां अन्तःकरण तल्लीन होजाता है ऐसे जो अत्युत्कृष्ट स्थल इस काव्यमें हैं वे आगे उल्लिखित किये जायँगे। सिह और दिलीप, इंद्र और रघु, मियंवद और अज आदिका

प्रसङ्ग इन्दुमतीका स्वयंवर (अथवा छठा सर्ग) विदर्भदेशाधिपतिकी राजधानीमें अज राजपुत्रका वरप्रवेश और विवाह, अपर राजाओंसे हुए युद्धोंका वर्णन, और तदनन्तर भयभीत हुई इन्दुमतीके साथ वीररसप्रमुख साभिमान संभाषण, पारिजातकी मालाका वृत्तान्त, और इंदुमतीके अर्थ अजका शोक, वसंतोत्सव और दशरथकी मृगयाका वर्णन; राम और भार्गवका प्रसङ्ग, पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर रामने सीताके अभिज्ञानार्थ समुद्र और पूर्ववृत्तस्मारक अनेक स्थलोंका जो वर्णन किया, सीताका वनविसर्जन, और मुनिवर वाल्मीकिद्वारा उसकी सांत्वना स्त्रीरूपसे आयी हुई अयोध्या और कुशका वार्त्तालाप; ग्रीष्म और जलविहारका वर्णन; और अंतिम सर्गके अग्निवर्णका शृङ्गार वर्णन; इनमेसे किसी एकका रसास्वादन करतेही सहृदय पाठकोंको कालिदासके कविताकी मनोहरता तत्क्षण विदित हो जायगी; और तदर्थ उन्हें अनिवार्य्य अभिरुचि उत्पन्न होगी इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है ।

'मेघदूत' को बहुतेरे लोगोंने देखा भलेही नहो पर इसका नाम अवश्यही सुना होगा। और बहुतेरे काव्यरसिक लोग इसके काव्यरसामृत को पानभी करचुके होंगे। यह बहुत छोटा होनेके कारण संस्कृतमें इसे 'खण्डकाव्य' कहते हैं । पर कविताके लोकोत्तर आनन्द देनेवाले अपूर्व गुणोंके कारण यह इतना रमणिक बन गया है कि इसकी समानतामें महाकाव्यभी फीके जानपड़ते हैं। इसमें तिलमात्रभी संदेह नहीं है कि कालिदासके समस्त ग्रंथ लुप्त होकर यदि यही एक लभ्यमान रहता तौ भी इसके कारण वह कविवृंदमे अग्रगण्य माना जाता। काव्यके वर्णनीय विषय प्रायः जगत्की नाना भांतिकी घटनाएं और सामान्यतः दृष्टिपथमें आनेवाले सृष्टिचमत्कारादिही हुआ करते हैं; और इनका यथार्थ वर्णन करना यद्यपि सामान्य कविताशक्तिका काम नहीं है, तौ भी ऐसे कवियोंकी ऊनता नहीं पायी जाती, क्योंकि अनुभूत बातोंका वर्णन करना तादृश कठिन नहीं है। पर जहां केवल मनकीही गति

होती है उस इंद्रियातीत अद्भुत काल्पनिक सृष्टिमें यथेच्छ विहार करने का अधिकार * 'मिड्समर नाइट्सड्रीम' 'प्याराडैजलाष्ट' 'मेघदूत' आदिके रचयिता भगवती सरस्वतीके लालोंकोही प्राप्त है ! वह विषय अपरलोगोंकेलिये अगम्य है । कालिदासके जीवित्व और कवित्वका अद्वैतभाव कैसा पूर्ण था सो उक्त काव्यद्वारा स्पष्ट जाना जाता है; क्योंकि कथासूत्रकी सामग्री कुछ न होनेपरभी कल्पनाशक्तिके उदात्त एवं समुज्ज्वल विलासोंसे यह काव्य परिपूर्ण है । इस काव्यकी कथा नितांत सरल एवं चमत्कृतिजनक है । उसके मेलकी कथाका अकेले संस्कृतहीमे नहीं किंतु संसारकी अपरभाषाओंमे भी पाया जाना प्रायः कठिनही बोध होता है । प्राचीन आर्य्य लोगोंके समयसे आजलो जो 'गिरिराज' के नामसे प्रसिद्ध है--और वर्त्तमान अनुसंधानानुसार जिसका उक्त नाम केवल भारतकेही नहीं किन्तु सपूर्ण पृथ्वीके संबंधसे यथार्थ हुआ है—और जिसके हिमवेष्टित गगनभेदी उत्तुंगशिखर गंगा यमुनादि पावन महानदियोंके उत्पत्तिस्थान हैं एतावता जिसे, ग्रीसके आलिंपस पर्वतकी नांई यहांके लोग देवोंका वसतिस्थान मानते हैं, उस हिमालय शिखरस्थ अलकापुरीके एक यक्षको कुबेरका शाप हो उसे प्रियाविरहजन्य परम दुःख भोगना पड़ा । कहां हिमालय और कहां रामगिरि ! पर निरुपाय होनेके कारण वहांभी उसने वियोगजन्य असह्य दुःखके कई महीने काटे । आगे शीघ्रही पावस-के मेघोंकी गर्जना होने लगी । तब उसने गंभीर चिंतामे मग्न हो यह मंसूबा बांधा कि मेरे दीर्घ विरहसे जो पहिलेही कृश होगयी होगी और अब पावसके मेहोंको देख मेरा वियोग जिसे बहुतही गढ़ाता होगा, उसे वियोगसे मुक्त करनेके हेतु निजके कुशल संवादद्वारा सांत्वना देनेवाला

* 'मिड् समर नाईट्सड्रीम' (भरधूपकालेकी रात्रिका स्वप्न) शेक्सपीयर के नाटकों मे से एक सर्व्वप्रसिद्ध नाटक है । इसका विषय 'मेघदूत' की नाई केवल कल्पनामय है । 'टेंपेष्ट' नाटक में जैसी भूत चेष्टा है वैसीही इसमें पिशाच लीला भरी हुई है । 'प्याराडैलाष्ट' मिल्टन के प्रसिद्ध महाकाव्य का नाम है ।

कोई दूत उसके निकट भेजना चाहिये । पर ऐसा दूत उसे वहां कौन मिला ? कोई मनुष्य वा अपर सजीव प्राणी नही मिला, तो संसारका संतापहरणकर उसे जो समृद्धि प्रदान करता है और निजके मनोहर नीलवर्णद्वारा जो सबके, विशेषतः उत्कंठितोके हृदयको आनंदप्रद होता है, उस मेघकोही उसने दूत मानकर उससे बोलना प्रारंभ किया । यह मेघ अचेतन है, मेरा कार्य्य क्योंकर करसकेगा, इस बातकी तर्कना तक उसके मनमे नही आयी, इसका कारण यही है कि वह प्रियाके प्रेमातिशयके कारण बिलकुल पागल होगया था । उसके अनंतर वहां से अर्थात् रामगिरिसे ले ठेठ अलकापुरी पर्य्यंत मार्गमे आनेवाले पर्व्वत और नदी आदिका वर्णन उसने मेघको सुनाया । यहांलो इस काव्यका पहला भाग शेष हुआ, यह 'पूर्व्वमेघ' के नामसे परिचित है । 'उत्तर मेघ' मे अलकाका वर्णनकर फिर यक्षने अपने मंदिर तथा स्त्रीका वर्णन किया है, और अंतमें उसे संदेश कहा है ।

बस इस काव्यकी कथा केवल इतनीही है । पर परमोत्कृष्ट कविको अपनी असामान्य कविताशक्ति प्रगट करनेकेलिये, इसकी अनुकूलता किस प्रकार अत्यन्त आवश्यक है सो सहृदय पाठकोंको सहजही में लक्षित होसकता है । जिस प्रकारसे खगराज गरुड़ उच्चतर वृक्ष और पर्वतोंको तिरस्कृतकर अपने विस्तीर्ण अतः बलवान् पंखोके बलपर आकाशमें अधिकाधिक ऊंचा चढ़ते चला जाता है, वैसेही जिस उद्दाम एवं उदात्त प्रतिभाकी 'कुमारसंभव' और 'रघुवंशादि' ग्रन्थोमें विषयानुरोधके कारण बीच बीचमें कहीं झलक मालूम देती है, उसीका पूर्णरूपसे विकास होनेके हेतु तदनुरूप इस छोटीसी कथाका कविने प्रयोग किया सा जान पड़ता है । मेघमण्डलसे प्रकृतिदेवीके जो चमत्कार दृष्टिपथमें आते हैं, और पुराण तथा लोगोंमें जो अचल और नदी तथा अपर स्थान प्रसिद्ध हैं उनका वर्णन इसमें नितांत सरस किया गया है । वैसेही श्रीराम सीता, अर्जुन, बलराम आदिकोंके पुनीत चरितोंसे जो जो स्थान विख्यात

हुए हैं उन सबके यथावत् वर्णन और उज्जैन तथा हिमालय पर शिवसे-वार्थ अथच अन्यान्य प्रसंगोपर कामरूप मेघको जो नाना भांतिके रूप ग्रहण करनेका निदेश वर्णित किया है उन सबके योगसे इस काव्यकी शोभा बहुतही बढ़ गयी है ।'उत्तरमेघमे' भी अलकापुरीका वर्णन बहुतही मनोहर किया गयाहै, यक्षके स्त्रीकी विरहावस्था तथा अंतिम संदेशका वर्णन अत्यंत करुणरसभरित है । वृत्तोंकी योजनाभी बड़े बहारकी है, उसके योगसे उक्त काव्यको और भी शोभा प्राप्त हुई है । वृत्तोंको मानो अर्थ गौरवके कारण जो मंदगति प्राप्त हुई है, वैसेही पदलालित्य, रूप-विशदत्वादि अपर गुणोद्वारा सहृदय पाठकोको कविकी नायिकाका साक्षात परिचय होनेमे कोई कसर नहीं जान पड़ती, साथही कल्पनाकी आनंदमय सृष्टिमे मन नितांत लीन हो कुछ कालकेलिये उनकी इस संसारकी सुध बुध सब जाती रहती है ।

कालिदास कवियोकी मालिकामें जैसे अग्रगण्य माना जाता है वैसेही वह नाटक लेखकोकी श्रेणीमे प्रथम माना जाकर समादृत किया जाताहै; अथवा उसकी वर्त्तमान विशेष ख्यातिका कारण उक्त दूसरा गुणही मानना चाहिये । उसके 'मालविकाग्निमित्र' नाटकके विषयमे पंडितोकी भिन्न-सम्मतिका पीछे उल्लेख होही चुका है, अब शेष दो नाटक 'शकुंतला' और 'विक्रमोर्वशी' के विषयमें आलोचना की जाती है । उक्त दोनों नाटको की उनमेंसे भी पहिले की इस देशमे पूर्वहीसे जैसी कुछ प्रतिष्ठा मानी-जाती है उसके विषयमे आज कोई नई बात कहने को नहीं है । प्रत्येक काव्यप्रिय पंडितके जिह्वाग्रपर उसके पद्य और 'काव्येषुनाटकं रम्यं तत्र रम्यं शकुंतला । तत्रापिच चतुर्थोऽकस्तत्रश्लोकचतुष्टयम् ॥" यह श्लोक पायाही जाता है । यहां पर लिखनेके योग्य विशेष बात यही है कि हमारे कविकी जो अजरामर कीर्त्ति प्रथम देशांतरव्यापिनी हो अनन्तर समस्त भूमण्डल पर विस्तृत हुई उसका कारण यही 'शकुन्तला' नाटक है । वह इस प्रकारसे कि अनुमान सौ सवासौ वर्षके पूर्व बङ्गाल हातेमें सर विलियम् जोन्स नामके एक परम विद्वान् साहब न्यायाधिपति थे

उन्हें एकबार एक पंडित द्वारा ज्ञात हुआ कि संस्कृत भाषामें नाटक ग्रन्थ पाये जाते हैं । यह बात उन्हें ज्ञात होतेही उनने बड़े परिश्रमसे संस्कृत भाषाको अधीत किया और "शकुन्तला" नाटकको अङ्गरेजी में अनुवादितकर उसे यूरोपमें प्रकाशित किया । उसे देख यूरोपके बहुतेरे पण्डितोंका मन उसपर इतना मोहित होगया कि उन लोगोंने कालिदासको तत्क्षण महाकवियोंमें परिणत किया । जर्मनी देशके कवि चूडामणि गेटी सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता एवं प्रवासी हंबोल्ड और पण्डित श्रेष्ठ श्लेजेल आदिने हमारे कविकी अनुपम कविताका केवल अनुवाद रूपसे रसपानकर आनन्दातिशयमें मग्न हो शिरःप्रकंप किया हैं । सहृदयताका पूर्ण रूपसे परिचय दे उक्त रसिकशिरोमणि विद्वानोंने शकुन्तलाकी जो समालोचना की हैं उन्हें हम सबको और विशेषकर हिन्दू लोगोंको उचित है कि अपने २ हृदय पटलपर अंकित करलें । वह यहां भी उद्धृत कर दी जाती पर वैसा करना योग्य नहीं जानपड़ता । क्योंकि वह सर्वप्रसिद्ध होनेके कारण उनका उल्लेख यहां केवल पुनरुक्तिही होगा । *

---

* तौभी यह हमारे समस्त पाठकोंको स्यात विदित न होगी अतःनीचे उद्धृत की जाती है:--

"Wouldst thou the young year's blossoms and the fruits of its decline And all by which th soul is charmed, enraptured, feasted, fed? Would thou the earth and heaven itself in one sole name combine? I name thee, O Sakoontala and all at once is said." GOETHE

"Káhdása the celebrated author of the 'Sakoontala' is a masterly describer of the influence which Nature exercises upon the minds of lovers. Tenderness in the expression of feeling, and richness of creative fancy have assigned to him his lofty place among the poets of all nations." ALEXANDER VON-HUMBOLDT.

"No composition of Kalidasa displays more the richness his poetical genius, the exuberance of his imagination, the warmth and play of his fancy, his profound

'शकुन्तला' नाटक महाभारतांतर्गत आदिपर्वकी एक कथाके आधारसे रचा गया है। वहांकी मूलकी कथा यों है कि जब दुष्यंत राजा आखेट खेलनेको गया था तब परिश्रान्त होकर वह कण्व ऋषिके आश्रमपर गया। वहां कण्व ऋषिकी कन्या शकुन्तलाके अतिरिक्त और कोई न था। उसने राजाकी स्वागत पूंछ अतिथिसत्कारद्वारा उसे सत्कृत किया। राजा उसके मनोहर रूपको देख विवश हो गया, राजाके प्रश्नकरने पर शकुन्तलाने अपना जीवनवृत्तान्त उसे निवेदन किया। सो सुन उसे क्षत्रीकी कन्या जान दुष्यत राजाने गधर्व विवाहकी विधिसे उसका पाणिग्रहण किया। अनंतर दुष्यंत अपने नगरको लौट आया, पर मुनिशापके भयके कारण उसने शकुंतलाको विदा करालानेके लिये किसीको नहीं भेजा। इधर कण्व ऋषिने कन्याकी कृतिपर कुपित न हो उलटे उसके योग्य वरके साथ परिणीत होजाने पर अपना आनंद प्रकाशित किया, और अपने शिष्यों-को साथ दे उसे दुष्यंत राजाके नगरको पहुंचा दिया। शकुंतलापर राजाका प्रेम यत्किंचित् भी न घटा था पर तोभी जनापवादके कारण वह उसे अंगीकृत करनेमे हिचकता था। एतावता तू कौन है? यह लड़का किसका है? आदि मिथ्या कारण उपस्थित कर राजा उसका अपमान करने लगा। शकुन्तलाने भी कुपित हो राजाको बहुत उत्तर दिये और उसको-पावेशमे वह वहांसे निकल जानेको ही थी कि, इतने में यह आकाशवाणी हुई कि, राजा दुष्यंत, यह तेरीही स्त्री है। उक्त आकाशवाणीको सत्यमान राजाने उसे अपनी पट्टरानी बनाया और उसके पुत्र भरतको कुछ कालके अनंतर युवराजपदाभिषिक्त किया।

उक्त कथाको पढ़ बहुतेरे अनभिज्ञ पाठक स्यात यही विचारेंगे कि, उत्कृष्ट नाटक रचनाकी सामग्री इसमे क्या है? पर वास्तवमें कालिदास-

---

knowledge of the human heart, his delicate appreciation of its most refined and tender emotions, his familiarity with the workings and counter workings of its conflicting feelings—in short, more entitles him to rank as the Shakespeare of India."

M. WILLIAMS.

के सकल बुद्धिगुणोंका एकत्र विकास होनेके लिये इससे अधिकतर अनु-
कूल विषयका हस्तगत होना दुस्साध्य है। महाभारतरूप अगाध आक-
रसे हमारे चतुर शिल्पीने इस रत्नको निकाल अपनी अनोखी कार्य्यकुश-
लता और कार्य्यसंपादनपटुताद्वारा उसे ऐसे दिव्य कुंदनमे खचित
किया है कि, उसपरसे शेष सब न्यौछावर करडाले जायँ। अब यह बात
कहां २ और किस २ प्रकारसे संपादित की गयी है सो सविस्तर आगे
लिखी जाती है। मूलकी कथामें यह बात पायी जाती है कि, राजा-
को शकुंतला आश्रममें अकेली मिली और उसीने अपना जन्मवृत्तान्त
राजाको कह सुनाया और दोनोंका गंधर्वविवाह प्रत्यक्षही हुआ। ये
दोनो बातें काव्यमें ऐसी कुछ भिन्न और विलग नहीं जान पडतीं; पर
जहां मनके नैसर्गिक व्यापार विशेषरूपसे प्रदर्शित करना होते हैं उस
नाटकमें अत्यंत अयोग्य एवं अनुचित बोध होती है; तिसपरभी नायि-
काके कुलकानिका इसके समान प्रचंड विरोधी और कुछ नहीं है इस
दोषको दूर करनेके अभिप्रायसे कालिदासने शकुन्तलाकी दो सखी कल्पित
की, और उनमेसे एकके द्वारा वह वृत्तान्त कथित कराया है। और आगे
गान्धर्व विवाहकी बात भी वैसीही उनके द्वारा घटनानुरोधसे संघटित
कराई है। उसी प्रकारसे आदिमे शकुंतला और राजाकी भेट वृक्षवनमें
करा, वनवासी कुमारिकजनोचित एवं कविजनप्रिय वृक्षसेचनादि कार्य्योंमें
लगी हुई उसे प्रदर्शित किया है। दुष्यंत राजा कपटदोषसे दूषित न होने पावे
इस अभिप्रायसे दुर्वासा ऋषिका शाप, और शकुंतलाको दी हुई अंगूठीका
शक्रतीर्थमें पतित होना ये दो नई बातें कल्पित की हैं। पांचवें अंकके
अंतमेंही उक्त कथा शेष हो गयी है। पर राजाके शकुंतलाको न पहिचान-
ने और उसके दुःखीहो निकल जाने पर उसकी मा मेनकाका उसे सहसा
उठा ले जाना नूतन जोड़कर नाटकके अंतिम दो अंकोंकी कविने बिलकुल
नई रचना की है। छठे अंकके आदिमें एक मछुवाके पास वह अंगूठी
पायी गयी और राजाको उसके विषयमें शापहतस्मृति पुनः हो आयी
और मेनकाकी सखी सानुमती अप्सरा जब गुप्तभावसे उसके निकट खड़ी
थी तब राजा शकुन्तलाके भूतपूर्व्व वृत्तांतका स्मरण कर उसके विरह दुखसे

कातर हो उसकी पुनः प्राप्तिकी निराशाके कारण पागलसा हो गया है। आगे इन्द्रका सारथी मातलि वहां आया है और दैत्यवधार्थ उसे स्वर्गको ले गया है। सातवें अंकमे मातलि दुष्यंतको भूलोकको लौटा ला रहा था तब राजाको इच्छा हुई कि, हेमकूटपर जा कर मारीचके दर्शन करना चाहिये, अतः उसने रथ वहीं उतारा, वहां उसे शकुंतला और पुत्र भरत की अचित्य भेटका लाभ हुआ, और अंतमे मारीच अथच अदितिका साक्षात्कारकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर दुष्यंत राजा वहांसे अपने नगरको लौट आया है। मारीच और आदिति नाटकके अंतमे क्यों लाये गये हैं इसका कारण स्पष्टही है। संस्कृतनाटकप्रणयनप्रथानुसार नायक दुष्यंत और नायिका शकुंतला पिछले सब संकटोको भोगकर लब्धमनोरथ हुए इसी प्रकार सदा सुखसे रहे ऐसा आशीर्वाद उनसे दिलाया है; और अब तुम्हे किस वरकी इच्छा है ऐसा उनके पूछनेपर राजा दुष्यंतने चर्चरीके (भरतवाक्यके)रूपसे समस्त भ्रातृगणकेलिये आशीर्वचन किया है; और वह कविके इष्टदेव शिवकी प्रार्थनास्वरूपमे है।

हमारे कविकुलकमलदिवाकरने मानो यह पहिलेसेही जानकर कि, मेरी यह रचना आगे चिरकाललों रसिकजनपरम्पराद्वारा समादृत होगी और अन्य सब काव्योंकी अपेक्षा इसीद्वारा मेरा कवित्वयश दिशाओंमें फैलेगा, इस नाटकमें अपने बुद्धिविभवकी पराकाष्ठा प्रदर्शित की है। नाटकके जिस अंगपर दृष्टिपात कीजियेगा उसे स्वयं सर्वाङ्गपूर्ण पाइयेगा, और इसके सिवाय उसके शेष अंगोसे उसका परमोत्कृष्ट मेल मिलते चला जाता है। प्रथम कथासूत्रकोही देखिये। वह इतनी चतुराईसे रचागया है कि, उसमें किंचित् ऊनता वा अधिकता कही नहीं दीखपड़ती। मूलकी कथामें कैसे२ हेरफेर किये है सो पीछे उल्लिखित होही चुका है, पर उनकी अपेक्षा और भी कई विशेष बाते कविने रसविशेषको परिपुष्ट करनेके हेतु प्रयुक्त की हैं उनका उल्लेख संक्षेपमे यहां किया जाता है। प्रथम अंकमें भ्रमरका कमलकी भ्रांतिसे शकुंतलाके मुखपर आना, चौथेमें मृगशावकका उसके पाओंके आड़आना, पांचवे

के आदिमें राजाको उत्कंठित करनेवाली अन्योक्तिगर्भित गीतमालिका, छठेमें शकुंतलाकी प्रतिकृतिको देख क्षणभर उसके साक्षात्कारका लाभ और लक्ष्मीकृपापात्र धनमित्रके मृत्यु समाचारको सुन उसके संतानहीन होनेके कारण खिन्न हो राजाका मूर्च्छित होना, उक्त घटनाओंमेंसे प्रत्येक द्वारा समस्त आख्यायि१। किस उत्तमताके साथ शृंखलाबद्ध होती गयी है और जहां तहांका रस कितना उत्कृष्ट सधा है, उसका विशेष वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नही है। वैसेही कविने सगुनोंका भी बहुत उत्तम प्रयोग किया है। पुराकालमें लोगोंका उनपर विश्वास होनेके कारण कवियोंको और विशेषतः नाटकप्रणेतृगणोको आख्यायिका के जोड़नेमें वे परम उपयोगी हुए हैं। यह दो प्रकारसे उपयोगी होते हैं। एक तो दर्शक वा श्रोताओंको आगेकी कथाकी पहिले सूचना देनेमें, जैसे वर्त्तमान नाटकमें प्रथम और अन्तिम अंकके आदिमे राजाके बाहुस्फुरणद्वारा सूचित किया गया है। और दूसरे किसी भूत वा भविष्यत् भयोत्पादक घटनाकी सूचनाद्वारा मनको दुःखी करनेमे। यह दूसरी बात इस नाटकके चौथे अंकमे पायी जाती है। शकुंतला दुष्यंतके नगरकेलिये जब प्रस्थित हुई, मार्गमे उसने एक चक्रवाकीको देखा, उसका पति निकटस्थ कमलपत्रकी ओटहीमे था पर उसे वह दूर जान आक्रोश करतथी। यह घटना है तो एक क्षुद्र पर उसके योगसे शकुंतला और उसकी सखी मनमें भयभीत हुई, और वही अवस्था प्रेक्षक तथा पाठकोकी भी होती है। इसके जोड़नेकी शैली अन्तिम तीन अंकोमे तो बहुतही चमत्कातिजनक है; किंचित् ध्यानपूर्व्वक नाटक पढ़नेसे वह लक्षित हो सकती है। वर्णनोका प्रसंग नाटकोंमें प्रायः अधिक नहीं रहा करता है, पर वर्त्तमान नाटकमें जहां कहीं वह आही गया है वहां हमारे कविने उसे सर्व्वांग पूर्णकरनेमे कोई बात उठा नहीं रक्खी है। यह बात कहते हम तानिक भी नहीं हिचकते कि, प्रथम अंकमे जैसा वर्णन मृगगण और रथवेगका हमारे कविकुलगुरुने किया है वैसा संसारभरके कवियोंके ग्रंथोंमें स्यातही पाया जाय। पुत्रकी बाललीलाको देख पिताके

हृदयमें कैसी आनंद वृत्तियां समुत्पन्न होती हैं सो सातवे अंकके जिस श्लोकमें वर्णित की हैं उन्हें पढते ही शेझी नामक फ्रेंच पंडित आनंदातिशयमें मग्न हो विदेह होगया था सो बात सर्वप्रसिद्धही है। वैसेही छठे अंकमें शकुंतलाकी अधूरी प्रतिकृतिको किस प्रकारसे पूर्ण करना चाहिये और उसके आसपासका दृश्य किस प्रकारका होना चाहिये एतद्विषयक जो श्लोक हैं उनका वर्णन ऐसा चित्तको मुग्धकरनेवाला है कि, उससे और कुछ नही तो यह बात मानलेनेमे तो कोई आपत्तिही नहीं है कि, हमारे कविचूड़ामणि चित्रकलाके अच्छे ज्ञाता थे। अस्तु; इस नाटककी लेखप्रणालीको हमारे कविने यथासंभव परमोत्कृष्ट करनेमें कोई बात शेष नही रक्खी है सो स्पष्टही है। पद्यकी तो बातही क्या है, पर गद्यकाभी प्रत्येक शब्द जितना कर्णमधुर और उपयुक्त प्राप्त हो सका है, यथा स्थानपर प्रयुक्त किया गया है। यो तो यह बात सर्वप्रसिद्धही है कि, कालिदासकी कविता प्रसादगुणसंपन्न है, पर उसकी बहार इस ग्रंथमे सविशेषसी लक्षित होती है। सारांश'साकूतमधुरकोमलविलासिनीकंटकूजितप्राया' यह जो गोवर्द्धनाचार्य्यने कालिदासकी उक्तिको विशेषण दिया है उसका पूर्ण प्रत्यय इस नाटकमे मिलता है। इसमें रसोका निर्वाह जिस उत्तमताके साथ किया गया है उसका विस्तृत वर्णन करनेकी स्वयं कविनेही कोई आवश्यकता नही रक्खी है। जिन्हें अणुमात्रभी सहृदयता संप्राप्त है उन्हें वे साक्षात् अनुभूत हो वह वह घटना मानो प्रत्यक्ष उनके समीप उपस्थित हो जती है। और चित्तवृत्ति मानो मंत्रसे अभिमन्त्रित हो इतनी तल्लीन होजाती है कि, बाह्यसृष्टिका ज्ञान विस्मृत हो नाटकके पात्रविशेषसे पाठक वा प्रेक्षकको तदात्मता प्राप्त होजाती है। इसके उदाहरण स्वरूपमें यह कहा जासकता है कि, ऐसा कौन होगा कि, जिसने यह नाटक पढ़तीवार चौथे अंकके पृष्ठोपर टिप्पणी न की होगी? तात्पर्य, इस नाटकका कोई भी अंक ले लीजिये जहां जहां देखियेगा वहां इस कविवरकी पराकाष्टाही दृष्टिगत होगी। जैसे 'मृच्छकटिकमें' दरिद्र चारुदत्तका मित्र विदूषक वसंतसेनाकी हवेलीका चौक देख

चकित और विस्मित होगया, और जो जो नई वस्तु उसे वहां दीख पड़ती वह उसे अत्यंत मनोहर जान पड़ती ठीक वैसीही अवस्था यहां सहृदय पाठकोंकी होजाती है। जिस अंकके पृष्ठ लौटाइये नई नई वहार दृष्टिपथमें आती हैं, और प्रत्येककी भिन्न २ रचना अधिक उत्तम कहनी चाहिये वा वा सबके मेलको परमोत्कृष्ट कहना चाहिये इसका निश्चय सहसा नहीं हो सकता!

'विक्रमोर्वशी' नाटक 'शकुंतला' नाटककी अपेक्षा योग्यतामें किंचित् ऊन माना जाता है। इसे भी अंगरेजीमे अनुवादितकर विलसन साहबने प्रकाशित किया है। यह साहव कलकत्तेमें कई वर्षलों संस्कृत भाषाके प्रधान अध्यापक थे, संस्कृतकी आपको बहुत अभिरुचि थी अतः आपने उसकी बहुत कुछ उन्नति की। इस नाटककी भूमिकामें उक्त साहबने लिखा है कि, इसकी कथा अग्निपुराणसे ली गयी है और वह सब अन्योक्तिपूरित है। इस नाटकके नायक और नायिका यथाक्रम सूर्य्य और ऊषा अर्थात् प्रभातके प्रतिनिधि है। सूर्य्य और ऊषा आदिमें एकत्रित होनेके पश्चात् शीघ्रही वियुक्त होते हैं, विरही सूर्य्यके दिनभर उत्तुंग पर्वत और विशाल नदियोंपर भ्रमण करनेके अनंतर पुनः उनकी भेट होती है। यह घटना नाटकमें किस प्रकारसे लायी गयी है सो समझनेके अर्थ उसकी आख्यायिका ज्ञात होनी चाहिये, अतः वह नीचे लिखी जाती है।

इस नाटकका नायक राजा पुरूरवा और नायिका अप्सरा उर्वशी हैं। उर्वशी जब धनपति कुबेरके मंदिरसे लौटकर आ रही थी तब केशी नामके दैत्यने उसे अपहृत किया। तब उसकी सहेलियां बड़े जोरसे विलाप करने लगीं। उनके आक्रोशको सुन पुरूरवा रथारूढ़ हो उनकी बतायी हुई दिशाको लपका, और; राक्षसोको जीतकर उर्वशी और उसकी सखी चित्रलेखाको लेकर लौट आया। अनंतर उन दोनोंको वह दूसरी अप्सराओंके आधीन कर रहा था कि, उतनेमें वहां चित्ररथ गंधर्वने आकर राजासे कहा कि, आपके पराक्रमपर अमरनाथ इन्द्रने

संतोष प्रकाशित कर उर्वशीको साथ ले आपको बोलाया है। संप्रति कोई आवश्यक काम उपस्थित है ऐसा कहकर राजा वहां नहीं गया; अनन्तर उर्व्वशी और अपर अप्सरा भी वहांसे निकल गयी। आगे राजा मदनविह्वल हो विदूषकके साथ उपवनमे बैठे यह चिंता कर रहा था कि, उर्व्वशी मुझे किस प्रकारसे प्राप्त होगी कि, उतनेमे वह अपनी सखी चित्रलेखाके साथ गुप्तभावसे वहां आयी। उसने एक भूर्जपत्र पर मदन-लेख लिख राजाकी ओर फेक प्रकाशरूपसे वह राजाका जयजयकार करतीही थी कि, उतनेमें देवदूतने आकर कहा "चित्रलेखा, उर्व्वशीको लेकर शीघ्र चल, इन्द्रकी सभामें नाटक खेलना है।" उक्त वाणीको सुन अत्यंत खिन्न हो उर्व्वशी वहांसे निकल गयी। इतनेमे वह भोजपत्र वायुसे उडकर रानीके हाथ लगा, राजा उसे खो गया समझ बड़ी चिंताके साथ ढूंढ़ रहा था कि, रानीने वह लाकर उसको दिया। रानीसे उसे पा राजा बहुत लज्जित हुआ और रानी सकोप वहांसे चली गयी। आगे रानीकोही तदर्थ अनुताप हो उसने चंद्रसाक्षिक प्रियप्रसादन व्रत किया, और विनीतभावपूर्व्वक राजासे निवेदन किया कि, अब पुन. मुझसे ऐसा उपरोध न होगा। पर इतनेपर भी राजाको उर्वशीके समागमका सुख चिरकाल लो प्राप्त नही हुआ। एक बार उर्व्वशी गंधमादन वनसे योंही जा रही थी कि, भूलकर कुमारबनमें जा निकली, और वहां पहुंचतेही वह लता हो गयी। * तबकी राजाकी अवस्थाका क्या पूछना है। वह बिलकुल पागल होगया और मार्गमें उसे जो मिलता उसीसे अपनी प्रियाकी वार्ता पूंछता। इस प्रकारसे फिरते फिरते वह उक्त लताके निकट जा पहुंचा और उसे लपटतेही वह पुनः उर्व्वशीकी उर्व्वशी होगयी। उस भेंटका लाभ उसे संगमनीय मणिकी प्राप्तिका कारण हुआ। इस मणिको राजाने बड़े यत्न से रक्खा था, पर एक दिन एक गीध उसे मांस जान उठा ले गया।

१ इस वनको कुमारका (कार्त्तिकेयका) शाप था कि मेरे तपको भ्रष्टकरनेके हेतु जो स्त्री यहा आवेगी वह लतारूप हो जायगी। आगे उच्छापके योगसे उर्वशीको उसका पूर्व्वरूप प्राप्त हुआ।

उसके पीछे राजा भी दौड़ा पर मणि उसके हाथ न लगा। अनंतर वह बाणसे छिन्न भिन्न हो सहसा धरती पर गिरपड़ा; वह बाण किसका होगा इसका अनुसंधान करने पर ज्ञात हुआ कि, वह राजाके पुत्र दीर्घायुका था। इस प्रकारसे राजाकी अपने पुत्रसे भेंट हुई। अंतमें नारदने आकर राजाको सूचित किया कि, उर्व्वशीका शाप यद्यपि अवशेष होगया है तथापि वह आगे तुम्हारे ही पास रहे ऐसा इंद्रने तुम्हें वर दिया है। इस प्रकारसे राजाके समस्त मनोरथ परिपूर्ण हुए।

अब यह बात सच है कि, इस नाटकके समस्त गुणोकी आलोचना करनेसे यह नाटक उत्तम ग्रंथोमें परिणत करने योग्य पाया जाता है, पर तौ भी हम समझते हैं कि, यदि 'शकुंतला' के साथ इसकी तुलना की जाय तो यह फीका जान पड़ेगा। आख्यायिकाचातुर्य्यादि पीछे कहे हुए जिन अनेक गुणोके कारण दूसरा ग्रंथ अद्वितीय माना जाता है, वे सब गुण पहिलेमे पूर्णरूपसे दृग्गोचर नहीं होते, हां कही कही उनकी झलक अवश्य दीख पडती है। इसके सिवाय कालिदास जैसे विशाळबुद्धिसपन्नकविकी कुशाग्रबुद्धिके अनुसार इन उभय नाटकोमे जो भिन्नता होनी चाहिये थी, और प्रत्येकमे मनोरंजन करनेवाले चमत्कृतिजनक जो भिन्न २ स्थल होने चाहिये थे, वह वर्त्तमान नाटकमे बहुधा नहिं पाये जाते। आदिमे रथारूढ़ राजाका प्रवेश, और अंतमे राजाकी और उसके पुत्रकी भेट प्रभृति 'शकुंतला' मे लिखी हुई बाते पुनः इस नाटकमें लिखी जाने, और 'मेघदूत' 'रघुवंश' आदिमे अनेक बार उल्लिखित हो जिनकी नूतन शोभा कभीकी नष्ट हो गयी है ऐसे कई विचार इस नाटकमे पुनः उल्लिखित होनेके कारण इस नाटककी बहुत कुछ रसहानि हुईहै; और यही कारण है कि, पाठकोका चित्त जैसा चाहिये वैसा इससे नही भरता। पांच अंकोमे प्रथम और चतुर्थ ये दोंही उत्कृष्ट हैं। चौथेमे स्त्रीप्रेमके कारण पागल हुए राजाका पशु पक्षी आदिकोसे बात चीत करना और उससे भी अधिक प्राकृत भाषाके कर्णमधुर गीत, नितान्त मनोहर है। पर पहलेकी छटा इसमें भी अनूठी है। हमारे कविका मन नगाधिप हिमालयके

भव्य एवं रमरणीक शिखरोंका निर्भर प्रेमपूर्वक कैसा लोभी बना रहा करता था सो इससे स्पष्ट लक्षित होता है । 'शकुंतला' के अंतिम अंकमे जिस हेमकूटके शिखरपर दीर्घ विरहके अनंतर दुष्यन्त और शकुंतलाकी भेंट कराकर नाटकका उपसंहार किया गयाहै उसीपर इस 'विक्रमोर्वशी' नाटकके प्रथम स्थलकी कल्पना कर, भयमूर्च्छित उर्वशी को राजाने उसकी सहेलियोंके आधीन किया है और दोनोंकी चार आँखे हो वे परस्परके प्रेमासक्त हुए हैं । कविने इस प्रथम गर्भांककी कल्पना बहुत चतुराईसे कर उसकी रचनाभी वैसेही परमोत्कृष्ट की है । इसका रस उदात्तमिश्रितशृंगार है । उर्वशीकी मूर्च्छाके धीरे धीरे टूटने और उसके नेत्र खोलनेपर राजाको जो आनंद और विस्मय हुआ है तदादिबातोंका वर्णन इसमें इतना यथार्थ है कि वे घटनाएं पाठकोंकि चित्तपर खचितसी हो आगे कभी मिटने नही पातीं । पाहिले अंकको पढ़ पाठकोंका उत्साह बढ़ता है कि आगेभी यह ग्रंथ सब ऐसा ही होगा, पर उक्त आशा सर्वथा व्यर्थ एवं विफल होती है; क्योंकि जो बातें सामान्य नाटकोंमेंभी पायी जाती हैं, और जिनबातोंका पाठकोके मनमें योंही आविर्भाव होता है, वेही आगे मिलती हैं ।

यहांलौं कालिदासके बड़े बड़े ग्रंथोंका वर्णन हुआ । पर इनकी अपेक्षा 'श्रुतबोध' 'शृंगारातिलक' और 'शृंगाररसाष्टक' आदि छोटे २ ग्रंथ औरभी हैं । यह ग्रंथभी उक्त ग्रंथोकैसेही प्रसिद्ध हैं, अतः यहां उनकी उपेक्षा करना न्यायसंगत नही है । 'श्रुतबोध' में जिस वृत्तका लक्षण उसी वृत्तमें कहा गया है, और इसका अभिप्राय ग्रंथके नामद्वाराही सूचित कियागया है कि उसकी सहायतासे वृत्त विशेषका लक्षण केवल 'श्रवण करतेही ज्ञात' हो जाय । पूर्व्वोल्लिखित महान्ग्रंथोंद्वारा जिसने पहिलेही अखंड कीर्त्ति बटोर ली, वा उसका संपादित करना कोई दुःसाध्य कार्य्य नहीं है ऐसा जिसे सुदृढ़ विश्वास था, उसीने विद्यार्थियोंको छंदोंका बोध करादेनेके अभिप्रायसे इस छोटे से कार्य्यको अंगीकृत किया होगा इसविषयमें सामान्यबुद्धिके मनु-

र्योंको बड़ी विलक्षणता जान पड़ती होगी। परंतु बड़ोंके चरित्र और उनकी महिमाका अल्पबुद्धिके लोगोंको थांह मिलना केवल दुःसाध्य ही नहीं है, किन्तु कई बार ऐसाभी देखा गया है कि, सच्चे बड़प्पनका लोगोंको यथातथ्य बोध न होनेके कारण उनके परम श्लाध्यकार्य्योंको भी लोग अन्यथाही समझलेते हैं। इस बातका बढ़िया उदाहरण कालिदासकी उक्त कृतिही है। इस उल्लेखके साथ और एक ऐसेही दूसरी बातका उल्लेख यहांपर किये विना आगेको लेखनी नहीं चलती। वह किसी ऐसे वैसे सामान्य व्यक्तिका नहीं है तो हमारे कविकीनाई ही जिसकी समुज्ज्वल कीर्ति स्वदेशको अलंकृत कर सब जगमें फैली है उस भुवनविख्यात मिल्टन कविके विषयमें है। इनने अपने कविकी नाई भगवती सरस्वतीप्रदत्त माथेपरके मुकुटको क्षणभरकेलिये उतार स्वभाषाके एक व्याकरणग्रन्थको लिख सर्वसाधारणके हितका परमोदार परिचय दिया है। ये दोनों उदाहरण इस बातको स्पष्टरूपसे प्रमाणित करते हैं कि अहंपनका अभाव सच्चे बड़प्पनका एक प्रधान चिह्न है। अस्तु; इस ग्रन्थकोभी हमारे कविने ऋतुसंहारकी नाई अपनी प्रियाको संबोधन देकर लिखा है। इसमें सिवाय मधुरता और लालित्यादिके कि जो केवल पदरचनाकेही गुण कहे जाते हैं काव्यके अपरगुणोंका समाविष्ट करना असंभवही है। अतः इसग्रंथमें सदाकी नाई वही पारिपूर्ण रूपसे पाये जाते हैं। 'शृंगारतिलक' और 'शृंगाररसाष्टक' में शृंगार प्रधान स्फुट श्लोक हैं। यह सब कालिदासकृत होंगेसे नही जान पड़ते क्योंकि बहुतेरे श्लोक तो ऐसेही हैं कि जिनमें सिवाय फूहड़पन और लंपटताके अपर कोईभी गुण नही पाया जाता। इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि उक्त ग्रन्थमे कालिदासकी रचना बिलकुल नही है। हां, इतना अलवत्त है कि ऐसे श्लोक बहुत कम हैं कि जिनसे कालिदासकी कविताका रस टपकता है। इसके सिवाय दूसरा कारण यहभी कहा जा सकता है कि जिस कालरूप विस्तीर्ण समुद्रपर बड़े बड़े संपूर्ण काव्योंका भी निर्वाह यदि हुआही तो अत्यन्त कठिनतासे हो पाता है, उसीको

उल्लंघित कर यह 'तिलक' विना क्षेपकसंपन्न हुए, वा यह 'अष्टक' अविकलरूपसे पूरा इस तीर पर्य्यन्त सुखपूर्व्वक आ पहुंचा होगा, यह भी बड़ी सावधानीपूर्व्वक कहना चाहिये। इससे तो यही निर्द्धारित होता है कि शृंगाररसके जो सैकड़ों श्लोक पण्डितोंके मुँहसे सुने जाते हैं उनमेंसे बहुत कुछ इनमें सन्निविष्ट कर दियेसे जान पड़ते हैं॥

सर्वसाधारणमें यह चर्चाभी श्रवणगत होती है कि दक्षिणी लोगोंके यहाँ विवाहके समय जो मंगलाष्टक पढ़े जाते हैं वेभी कालिदासकृत हैं-इसमें तनिकभी संदेह नहीं है कि इस क्षुद्रबातका यहांपर उल्लिखित होना हमारे बहुतेरे पाठकोंको स्यात हँसीका कारण जान पड़ेगा; और उनलोगोंका ऐसा समझनाभी कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है, क्योंकि आज कल हमलोगोंमे गुणकी चाह और उसका सन्मान करनेकी मनोकामना कहांलों पाई जाती हैं सो विज्ञ एवं विवेकी पाठकोपर विदित ही है। संसारमें बहुधा यहभी देखा जाता है कि कभी कभी वास्तुविशेष विख्यात मनुष्यके संबन्धके योगसे महत्त्वको प्राप्त होजाती है; और इस बातका टुकभी विचार नहीं किया जाता कि वह वस्तुविशेष उस विख्यात पुरुषकी कीर्त्तिका आधारस्तंभ है वा नहीं, और कहांलौं, कभी कभी तो ऐसे पुरुष और वस्तु विशेषका संबन्धही संदिग्ध पाया जाता है! स्ट्राटफर्डमे रक्खी हुई शेक्सपियरकी कुर्सीको देखनेकेलिये चारो ओरसे लाखों लोग क्यों जाया करते हैं? क्या वह विधिनिर्म्मित है? सुना जाता है कि उस कविकुलदीपने एक वृक्ष अपने हाथसे लगाया था जिसे एक मनुष्यके तोड़ डालनेपर उस गांवके सबलोगोने उसपर आक्रमण कर उसे दंडित किया था। कहिये इसका कारण क्या कहा जा सकता है? उसने उस गांवके लोगोंका ऐसा कौनसा प्रचण्ड अपराध किया था? इसके उत्तरमें यही कहा जासकता है कि शेक्सपियरका प्रत्यक्ष स्मारक होनेके कारण जिसे मानों पवित्रता प्राप्त होगई थी; और जो उनके आनन्द

तथा अभिमानका आधार स्वरूप होगया था, उस वृक्षको नष्टकर उसने उनलोगोंकी ऐसी हानि की कि, जिसका पुनः प्राप्त होना असंभव था। उक्त दोनों घटनाएं इस बातको स्पष्टरूपसे प्रमाणित करती हैं कि महान् महान् पुरुषोंके संबन्धकी क्षुद्रबातोंको समादृत करना नीचता वा मूर्खताका प्रदर्शक नहीं हो सकता किन्तु विचारांश करनेपर यही निर्द्धारित होगा कि उक्त सन्मानकी स्थितिके समान राष्ट्रका उत्कर्षप्रवर्त्तक अपर कोई नहीं है। ऐसी अवस्थामें, संसारमें अत्यन्त हृद्य एवं अभीष्ट जो समागम सो तुम्हें निरन्तर सुखावह हो ऐसा हमलोगोंको जिसने आशीर्वाद दिया, वा आगे देगा, वह गणमात्रा जोड़नेवाला कोई सामान्य व्यक्ति न था, तौ रघुवंशके गीत गा उसकी कीर्तिको जिसने नई अमरता प्रदान की, जिसकी विशाल कल्पनाशक्तिने मेघारूढ़ हो संपूर्ण भारतमें भ्रमण किया, और तदन्तर्गत, पर्वत, नदी आदिके दृश्य, जो सामान्य मनुष्योंके दृष्टिपथमें नहीं आते, फैला दिये, और हजारों वर्षके पूर्वकी प्राचीन जनस्थिति की, कि जो केवल कविकल्पनाकोही गम्य है, जिसने अपने बुद्धिके मांत्रिक सामर्थ्यसे ऐसी परमोत्कृष्ट प्रतिकृति बना दी कि जिसका रंग अनन्तकाल बीतनेपरभी किंचिदून न होगा—उसी देशभूषण कवीन्द्र एवं शृंगारदीक्षागुरुका वह अनूठा वाग्विलास है। क्या यह बात कोई अल्प स्वल्प और ध्यानमें न रखने योग्य है?

यहांलों कालिदासके छोटे बड़े सब ग्रन्थोंका वर्णन हो चुका। * अब आगे इस बातकी आलोचना की जाती है कि कालिदास कौन २ गुणोंके

---

* ऊपर जितने ग्रन्थोंका उल्लेख किया गया है उतने सब कालिदासकृत माने जाते हैं? पर इनके सिवाय और भी ऐसे बहुत ग्रन्थ हैं जो कालिदासके नामपर प्रतिष्ठा पाते हैं। मराठीके 'कविचरित्र' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि 'प्रश्नोत्तरमाला' 'असज्जनवर्णन' 'घटकर्परकाव्य' 'हास्यार्णव नाटक' 'कर्पूरमंजरी' 'श्यामलादण्डक' 'भोजप्रबन्ध' 'भोजचंपू' और 'रामायणचंपू' ये सब कालिदासकृत हैं। इनके अतिरिक्त कहीं कहीं यह भी पाया जाता

कारण चारों ओर इस प्रकार समादृत किये जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि प्रत्येकजातिमे उसका प्रियतर एक कवि रहताही है। प्राचीन ग्रीक लोगोंको अपने विख्यात कवि होमरका इतना अभिमान था कि उसे हमारा हमारा कह सात नगरके लोग आपसमें लड़ाकरते थे; और उनलोगोंमें परस्परमें संतत लड़ाई चलीही जाती थी कि शत्रुओंने आ संपूर्ण देशको पददलित करलिया, उससमय उनके देशाभिमानको जागृत कर एकताके साथ देशसे शत्रुओंके हटानेमें उसकी वीर्योत्साहप्रेरक कविताही उपयोगी हुई, और आगे विद्याकलादिकोंकी जो अनूठी उन्नति हुई कि जिसके सामने वर्त्तमानकी उन्नति कहीं कुछ नहीं है, उसका कारणभी बहुधा उसकी कविताही कही जाती है। यह सब बात इतिहासप्रियलोगोंपर विदितही है। यह घटना इस बातको निश्चयरूपसे प्रमाणित करती है कि महाकवि देशविभवके आधारस्तंभ होते हैं; और जो ज्ञानदुर्बललोग निजकी अरसिकताके कारण कविताको केवल कल्पनामय तथा सत्यतारहित मान उसे अवकृत करते हैं, उन्हें उसके यथार्थरूपका तिलभरभी ज्ञान नहीं हुआ कहना चाहिये। शेक्सपियरकाविको अंगरेजलोगभी किस प्रकार मानते हैं सो अभी पीछे उल्लिखित होही चुका है। हमारे देशके

है कि 'महापद्माष्टक' 'गंगाष्टक' 'राक्षस काव्य' और 'पुष्पवाणविलास' भी कालिदास लिखितही हैं। बाण कविके 'हर्ष चरित में' कालिदासकृत एक 'सेतुकाव्य' नामक ग्रन्थका उल्लेख पाया जाता है, और यह भी कहा जाता है कि सर्व प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रथ 'ज्योतिर्विदाभरण' भी कालिदासही का रचा हुआ है। अस्तु, तो इतने और ग्रन्थ कालिदासके नामसे प्रसिद्ध होनेके कारण वर्त्तमान लेखमें ग्रन्थ पूर्णताके हेतु उनके सम्बन्धसे कुछ तोभी उल्लिखित होना समुचित जान पडता है। उक्त ग्रन्थोंमें से 'सेतुकाव्य' की कर्त्तृताके अतिरिक्त अन्यकेलिये विश्वास पात्र प्रमाण नहीं मिलता। और 'भोजप्रबन्ध' और 'घटकर्पर' तो दूरहीसे पुकारकर कहते हैं कि हम कालिदासकृत नहीं हैं। इसके सिवाय कई ग्रन्थ तो प्राप्तही नहीं हैं। यही कारण है कि उनके विषयमें [illegible] लेख। भया। और यह विषय नूतन होनेके कारण इसका अधिक वि[illegible] को भी अभीष्ट न हुआ होता।

वैसे जनपूजार्ह कविकुलगुरु कालिदासही हैं; उनके सिवाय दूसरा और नहीं है । जिन्हें संस्कृतकी हवातक नहीं लगी है, और जिन्होंने उनका एक श्लोक तक कभी नहीं सुना, वे लोगभी उनके विषयकी चर्चा बड़े प्रेमसे सुनते और करते हैं। इस प्रकारकी कथाएं कैसी अप्रयोजक होती हैं; आदिके विषयमें-भी यदि विचार किया जाय तो तत्क्षण ज्ञात हो जायगा कि केवल कालि-दासके नामसेही हमलोगोंका कैसा प्रेम होगया है और सर्वसाधारण तदर्थ आपनेको किसप्रकारसे धन्य मानते हैं । पंडितलोगोंमें उनकी जैसी कुछ प्रतिष्ठा है सो सब विज्ञलोगोंपर विदितही है । किसी कविने कहा है,

पुराकवीनांगणनाप्रसंगेकनिष्ठिकाऽधिष्ठितकालिदासा ॥
अद्यापितत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवतीबभूव ॥१॥

"प्राचीनकालमें एकवार एक पंडित कवियोंकी गणना करने लगा, तब प्रथम उसने कालिदासके नामसे छिगुली उठाई, और आगे विचार करनेलगा तो दूसरी अंगुली उठानेकेलिये उसे वैसा दूसरा कवि उपलब्ध नहीं हुआ । तब उस अंगुलीका नाम जो अनामिका * सो यथार्थ हुआ "। इस श्लोकमें कालिदासकी अद्वितीयता कैसी चतुराईसे वर्णित की है! दूसरी अंगुलीको 'अनामिका' कहते हैं इसछोटीसी बातपर इस सुंदर पद्यमें कैसे गम्भीर अर्थकी रचना की है ! कालिदासके गुणोंका चाहे उतना वर्णन किया जाय, तौभी उक्त पद्यांतर्गत मार्मिक अर्थके योगसे मनको जो चमत्कृति भासित होती है सो अपरवर्णनसे स्यात्ही हो । अब यह

---

* संस्कृतमें हाथकी पाचों अंगुलियोंके नाम पाये जाते है । अंगुष्ठ (अंगूटा), तर्जनी (भयप्रदर्शक अंगुली), मध्यमा (बीचकी अंगुली) कनिष्ठिका सबसे छोटी अंगुली अर्थात् (छिगुनिया), और अनामिका (बिना नामकी अंगुली) । इस अंतिम अंगुलीको ऐसा नाम दिये जानेका कारण स्पष्टही है कि स्यात् या अपर कारणके द्वारा उसका बोध कराने योग्य दूसरी संज्ञा उसे दीही नहीं जा सकती ।

बात सच है कि उक्त श्लोकमे अंशतः अत्युक्ति पायी जाती है, पर साथ-ही उससे यह बात स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती है कि इसदेशके गलेका तावीज होनेकी अकेले कवि कालिदासहीकी योग्यता है। इससे यह अभिप्राय नही है कि अपर कविगण मानार्ह नही हैं, पर देशप्रियताके हिसाबसे होमर, शेक्सपियर आदिकी मालिकामे गुंफित करनेकी योग्यता केवल कालिदासहीकी है। कवि अपने २ देश तथा कालके प्रतिबिंबस्वरूप हुआ करते हैं—अर्थात् तत्तत् देश और कालकी अवस्था उनके काव्यमें प्रतिबिंबित हुई दीख पड़ती है। इस अवस्थाका बार बार हेरफेर होते रहता है, अतः तत्तत्कालीन कविगणभी जनमान्यतासे बहिष्कृत होते जाते हैं; पर यह बात केवल सामान्य कवियोके विषयमेंही चारितार्थ होती है; कालिदास जैसोंपर उसका अमल नही पहुंचता। इसका कारण स्पष्टही है कि उनके विशाल मनद्वारा किसीएक व्यक्ति वा राष्ट्रकाही नही किन्तु समस्त मानवजातिके स्वभावका आकलन हो उनके हृदयोद्गार प्रत्येक व्यक्तिके हृदयको द्रवितकर तल्लीन करडालते हैं; यही कारण है कि उनका अमेट यश देशकालादिद्वारा परिच्छिन्न न हो भगवान् सूर्य्यदेवके तेजकी नाई नित्यतापूर्व्वक उनपर बना रहता है!

भूतपूर्व्व पंडितगणोके मतानुसार कालिदासके कवित्वगुणोमे उपमाचातुर्य्य अत्यन्त समुज्ज्वल माना जाता है।

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनःपदलालित्यं माघेसन्तित्रयोगुणाः॥

"उपमाकी हथोटी केवल कालिदासको, अर्थगौरवकी भारवीको पदलालित्य अर्थात् शब्दोंकी मनोहर रचनाकी दंडीको ही सधीहुई थी, पर माघकविको उक्त तीनो गुण प्राप्त थे" उपमान और उपमेयकी पूर्ण सदृशता चतुराईके साथ प्रदर्शित करनेकी कालिदासकी शैली अपर कवियोंमें बहुधा लक्षित नहीं होती; पर इसकी अपेक्षा उसके काव्यमे एक विशाल गुण औरभी पायाजाता है जो अपर कवियोके काव्यमे प्रायः नहीं दीख पड़ता। इसका उल्लेख आगे चलके किया जायगा। संप्रति उक्त उपमाओंके कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्याप्रमुखेस्थितासिमेसुमुखि।
उपरागांते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम् ॥ *

शकुंतला ७।

किमित्यपास्याभरणानि यौवने।
धृतंत्वयावार्द्धकशोभि वल्कलम्॥
वदप्रदोषे स्फुटचंद्रतारका।
विभावरीयद्यरुणाय कल्पते॥ §

कुमारसंभव ५।

दृष्टापिसाह्रीविजितानसाक्षा-
द्वाग्भिः सखीनांप्रियमभ्यनंदत्॥
स्थलीनवांभःपृषताभिवृष्टा।
मयूरकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम्॥

रघुवंश ७।

संचारिणीदीपशिखेवरात्रौयंयंव्यतीयायपतिंवरासा।
नरेंद्रमार्गाट्ट इवप्रपेद विवर्णभावंससभूमिपालः॥

रघुवंश ६।

---

* पीछे जहा जहा लेखके प्रवाहसे श्लोक आते गये हैं, उनके नीचे उनके अनुवाद भी लिख दिये गये हैं। पर यह बात यहापर नहीं की जा सकती। क्योंकि प्रथम तो विस्तारका भय है, और दूसरे केवल भाषा जाननेवालोंको उक्त पद्योंका रस अनुवादद्वारा प्राप्त होना कठिन तो क्या वरन असंभवही है। अतः जिन २ ग्रन्थोंके अनुवाद भाषामे विद्यमान हैं, उन्हें पाठक देखलेवें। इसके सिवाय और उपाय नही है।

§ इस पद्यके सारको पंडित महावीर प्रसादजी द्विवेदीने अपने कुमारसभव सारमें इसप्रकारसे लिखा है:—वल्कल सदा बुढापे हीमें शोभाको पानेवाला, आभूषण तज नूतन वयमें क्यों तूने तनपर डाला? शशी और तारोसे शोभित सायंकाल निशा—नारी, रविसारथी पासजानेकी करती है क्या तैय्यारी? द्विवेदीजीका उक्त ग्रंथ नागरीप्रचारिणी सभा काशीसे प्राप्त होसकता है।

इस अंतिमपद्यकी उपमा कैसी साधी और समर्पक है । हमारे कविकी वर्णनप्रणाली अपने ढंगकी अनूठीही है सो पीछे अनेकबार उल्लिखित होहीचुका है उसका परिचय निम्नलिखित श्लोकसे प्राप्त होसकता है ॥

ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यंदने दत्तदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभ ाद्भूसा पूर्वकायम् ॥
दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिःकीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियतिबहुतरंस्तोकमुर्व्यांप्रयाति ॥

शकुंतला १ ।

यह जो जनश्रुति कर्णगत हुआकरती है कि, नानाभांतिके चित्रविचित्र रंगोद्वारा खीचे हुए चित्रको भी कभी कभी कविशब्द निर्म्मित चित्र लज्जित करते हैं उसका उक्त पद्य परमोत्तम उदाहरण है । उक्त और बक्ष्यमाण श्लोकद्वारा हमारे सहृदय पाठकोको विश्वास होजायग कि, प्रकृति देवीके परम कुतूहलोत्पादक दृश्योंको मार्मिक दृष्टिसे देखनेकी कालिदासकी नैसर्गिक जिज्ञासा अत्यंत प्रखर थी । अस्तु; आगेः—

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्द्धे विच्छिन्नं भवति कृतसंधानमिव तत् ।
प्रकृत्या यद्वक्रंतदपि समरेखं नयनयो—
र्न मे दूरे किंचित् किमपि च न पार्श्वे रथजवात् ॥

शकुंतला १ ।

इसे पढ़ यह किसे न भासित होगा कि, संप्रातकी नाईं उस समयभी अग्निरथ थे, स्यात् उनकी प्रचण्ड गतिका अनुभव लेकरही कविने यह बात लिखीहो !

तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा
तूणीमुखोद्धृतशरेण विशीर्णपंक्ति

इयामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातै-
र्वातेरितोत्पलदलप्रकरैरिवार्द्रैः ॥

रघुवंश ९ ।

यहांलों प्रकृतिके वर्णनका आदर्श अर्थात् नमूना हुआ, अब लौकिक प्रसंगके वर्णनको देखिये ।

तासुश्रियाराजपरंपरासुप्रभाविशेषोदयदुर्निरीक्ष्यः ।
सहस्रधात्मान्यरुचद्विभक्तःपयोमुचांपंक्तिषुविद्युतेव॥

रघुवंश ६ ।

इंदीवरश्यामतनुर्नृपोसौत्वंरोचनागौरशरीरयष्टिः ।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धयेवायोगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु॥

रघुवंश ६ ।

तीसरा प्रकार शृंगारका । इसके विषयमें तो कुछ कहनाही न चाहिये । जानपड़ताहै कि, कामदेवने प्रणयिजनोंके अत्यंत गूढ़ हृद्गतकविको दिखा मानो आत्मरहस्यका उसे उपदेशही कर दिया है:-

यतोयतःषट्चरणोभिवर्त्ततेततस्ततःप्रेरितलोललोचना ।
विवर्त्तितभ्रूरियमद्यशिक्षतेभयादकामापिहिदृष्टिविभ्रमम् ॥

शकुंतला १ ।

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौबाहूतदीयाविति मेवितर्कः ।
पराजितेनापिकृतौहरस्ययौकंठपाशौमकरध्वजेन ॥

कुमारसंभव १ ।

विवृण्वतीशैलसुतापिभावमंगैःस्फुरद्बालकदम्बकल्पैः ।
साचीकृताचारुतरेणतस्थौमुखेनपर्य्यस्तविलोचनेन ॥

कुमारसंभव ३ ।

ततःसुनंदावचनावसानेलज्जांतनूकृत्यनरेंद्रकन्या ।
दृष्ट्याप्रसादामलयाकुमारंप्रत्यग्रहीत्संवरणस्रजेव ॥

रघुवंश ६ ।

यह सबवर्णनके चुटकुले हैं। पर कही २ यह वर्णन इतना परि-पूर्ण रहता है कि, वर्णित विषय मानो प्रत्यक्ष सामने आखड़े होजाते है और उनके मानासिक भावोंकी और पाठकोकी चित्तवृत्ति बलात् आकृष्ट हो तन्मय होजाती है।

ततःप्रियोपात्तरसेऽधरोष्ठेनिधायदध्मौजलजंकुमारः।
तेनस्वहस्तार्जितमेकवीरःपिवन्यशोमूर्त्तमिवावभासे॥

रघुवंश ७।

सचापकोटीनिहितैकबाहुःशिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः
ललाटबद्धश्रमवारिबिंदुर्भीतांप्रियामेत्यवचोबभाषे॥

रघुवंश ३।

त्वामारूढ पवनपदवामुद्गृहातालकांताः
प्रेक्षिष्य ते पथिकवनिताःप्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कःसन्नद्ध विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
नस्यादन्योप्यहमिव जनो यःपराधीनवृत्तिः॥

पूर्व्वमेघः।

तस्माद्गच्छेरनुकनखल शैलराजावतीर्णां
जह्नोःकन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येवफेनैः
शंभोःकेशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता॥

पूर्व्वमेघः।

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदिच विचरेत्पादचारेण गौरी।

भगीभक्त्या विरचितवपुःस्तंभितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरुमणितटारोहणायाग्रयायी ॥

पूर्व्वमेघः।

नूनं तस्याःप्रबलरुदितोच्छूननेत्रंप्रियाया
निश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
यस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा–
हृददोर्दैन्यं त्वदनुशरणाक्लिष्ट कांति विभर्ति ॥

उत्तरमेघः

अतिम श्लोकमें यक्षने अपनी विरह शोकार्त्त स्त्रीके मुखका वर्ण कैसा हृदयभेदक किया है। साथही जिस मेघको उसने अपना मि माना उसका संबन्ध भी कैसी उत्तमतासे निबाहा है !

देखिये निम्नस्थ पद्योंमें कामिजनोंकी मनश्चेष्टा कैसी मनोहर रीतिं वर्णित की गयी है !–

अनुयास्यन्मुनितनयांसहसाविनयेनवारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपिगत्वेवपुनःप्रतिनिवृत्तः ॥

शाकुंतला १।

यदिदंरथसंक्षाभदिगनीङ्गनिपीडितम्।
एकंकृतिशरीरेऽस्मिन् शेषमंगं भुवोभरः ॥

विक्रमोर्वशी २।

अभिमुखेमयिसंहृतमीक्षणंहसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतोमदनोनचसंवृतः ॥

शकुंतला २।

वाचंनमिश्रयतियद्यपिमेवचोभिः
कर्णंददात्यभिमुखंमयिभाषमाणे।

कामंनतिष्ठतिमदाननसंमुखीसा
भूयिष्ठमन्यविषयानतुदृष्टिरस्याः ॥

शकुंतला १ ।

अनुभवन्नवदोलमृतूत्सवं पटुरपिप्रियकंठजिघृक्षया ।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहेभुजलतांजल(ड)तामबलाजनः

रघुवंश ९ ।

भित्वा सद्यःकिसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिंग्यंते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्व्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ॥

उत्तरमेघः ।

दुष्यंतको शापाहत होनेका पुनः स्मरण होतेही शकुंतलाको जो उसने अपकृत किया था, तदर्थ उसे नितांत अनुताप हुआ; अब उसके दर्शन दुर्लभ हैं ऐसा समझ उसे अत्यंत विरहदुःख हुआ । उस समय वह कहता है,—

स्वप्नोनुमायानुमतिश्रमोनुक्लिष्टंनुतावत्फलमेवपुण्यम् ।
असन्निवृत्त्यैतदतीतमेव मनोरथानामतटप्रपाताः ॥

शकुंतला ६ ।

इसी प्रकारका अज राजाका शोक ॥

धृतिरस्तमितारतिश्च्युताविरतंगेयमृतुर्निरुत्सवः ।
गतमाभरणप्रयोजनंपरिशून्यंशयनीयमद्यमे ॥

रघुवंश ८ ।

इसी प्रकारसे अन्य घटना संबंधीय हृदयस्थ विचार ऐसे कुतूहलोत्पादक शब्दकलापद्वारा वर्णित किये गये हैं कि, उनसे वह रस मानों टपकाही पड़ता है:—

यास्यत्यद्यशकुंतलेतिहृदयंसंस्पृष्टमुत्कंठया
कंठःस्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडंदर्शनम्।
वैक्लव्यंममतावदीदृशमिदंस्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्तेगृहिणःकथंनतनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥

शकुंतला, ४।

यह और टिप्पणीस्थ तीन श्लोक इतने करुणारसगर्भित हैं कि, पंडित लोगोंको नितांत प्रिय हो 'श्लोक चतुष्टय' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

इतःप्रत्यादेशात्स्वजनमनुगंतुंव्यवसिता
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदतिगुरुशिष्येगुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रकरकलुषामर्पितवती
मयिक्रूरेयत्तत्सविषमिवशल्यंदहतिमाम्॥

शकुंतला १।

---

* वे तीनो श्लोक यह हैं।

शुश्रूषस्वगुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्त्तुर्विप्रकृतापिरोषणतया मास्ममतीपंगमः।
भूयिष्ठंभवदक्षिणापरिजनेभाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवंगृहिणीपदंयुवतयोवामाःकुलस्याधयः॥
अभिजनवतोभर्त्तुःश्लाघ्योस्थितागृहिणीपदे
विभवगुरुभिःकृत्यैस्तस्यप्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात्प्राचीवार्कंप्रसूयचपावनं
ममाविरहजांनत्वंवत्सेशुचंगणयिष्यसि॥
भूत्वाचिरायचतुरंतमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथंतनयंनिवेश्य।
भर्त्रातदर्पितकुटुम्बभरेणसार्द्धं
शान्तेकरिष्यसिपदंपुनराश्रमेऽस्मिन्॥

शकुंतला ४।

जब दुष्यंतने भी स्वीकार नही किया, और मुनि शिष्य शाङ्गरव भी नितांत क्रुद्ध हुआ तब बापुरी शकुंतलाकी ऐसी अचिंत्य अवस्था हुई कि, यदि उस समय धरती फट जाती तो वह उसमे समाजाती, पर उतने परभी उसने आंखे डबडबाकर दीनतापूर्व्वक पुनः राजाकी ओर ताका तौ भी उसे दया न आयी। आगे यह बात राजाके चित्तमे खटकती रही और उसने विदूषकसे उसका पछताव किया। इस सकरुण घटनाको कविने चतुराईसे कल्पितकर श्लोकमें भी उस रसको पूर्णरूपसे उतार दिया है।

वही बात अगले श्लोकमे भीः—

पुरंनिषादाधिपतेरिदंतद्यस्मिन्मयामौलिमणिंविहाय।
जटासुबद्धास्वरुदत्सुमंत्रःकैकेयिकामाःफलितास्तवेति॥

रघुवंश १३।

राजा मनोमन सखेद बिचार कर रहा था कि, शंकुतला का विनाकारण परित्याग कर मैं अभागेने अपने हाथो अपना घात करलिया कि, इतनेमें उसे धनवृद्ध साहूकारके समाचार मिले। उस संवादके मिलतेही उसका चित्त नितांत खिन्न हो, पुनः वह गहरी चितामे मग्न हो बिचार करनेलगा कि, संतति विच्छेदके कारण मेरे पितरोको अधोगति प्राप्त होगी। उस समयकी उसकी शोकोक्तिको पढ़ ऐसा कौन है कि, जिसकी छाती न भर आवे?

अस्मात्परंबतयथाश्रुतिसंभृतानि
कोनःकुलेनिवपनानिनियच्छतीति।
नूनंप्रसूतिविकलेनमयाप्रसिक्तं
धौताश्रुशेषमुदकंपितरःपिवन्ति॥

शकुंतला ६।

वैसेही

त्वंरक्षसाभीरुयतोऽपनीता
तंमार्गमेताःकृपयालतामे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवन्त्यः
शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः॥
मृग्यश्चदर्भांकुर निर्व्यपेक्षाः
तवागतिज्ञंसमबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्योदिशिदक्षिणस्या
मुत्पक्ष्मराजीनिविलोचनानि॥
अत्रानुगोदंमृगयानिवृत्तः
तरंगवातेनविनीतखेदः।
रहस्त्वदुत्संगनिशण्णमूर्द्धा
स्मरामिवानीरगृहेषुसुप्तः॥

रघुवंश ३।

कालिदासकी कवितामे अश्लीलता अर्थात् ग्रामीणता कहीं तनिकभी नहीं पायी जाती। उसकी अनूठी उक्ति शुद्ध एवं मार्मिकतागर्भित रहती हैं। पृथ्वीके समस्त विषयोंको ग्रामीणजन सदा कुत्सित मानाकरते हैं; उन लोगोकी अप्रशस्त बुद्धिमें यही बात समायी रहती है कि, स्त्रियां केवल उपभोगवस्तु हैं और उनके बिचारकलापभी तदनुसारही रहते हैं। परन्तु यह अनुचित समझ कालिदासके काव्यमें कहीं कुछ दृष्टिगत नहीं होती, जिनके विषयमें विधिका विधान पूर्णतया दृष्टिपथमें आता है, जिनकी अपेक्षा धरतीपर अधिकतर रमणीक और कुछ नहीं है, जिन्हें समसमान प्रमाणसे विधिने बुद्धि प्रदान की है, और जिनका हृदय विश्वनिर्माताने इस अभिप्रायसे विशेष कोमल बनाया है कि, वे अपने कर्त्तव्यको भलीभांति समझ

बूझकर अपने सहचरोंको विशेषरूपसे सुखद हों-उन्हीं स्त्रियोंकी ओर कालि-दास जैसे महाकविके मनका प्रवाह विपरीत कैसे बहसकता है! वह वैस कदापि न प्रवाहित होगा। उसकी कवितामें स्त्रीजन विषयक समादर और गौरव पदपदपर दृग्गोचर होता है। प्रस्वापनास्त्रद्वारा अपने शत्रुगणोंके जीत अज राजा जब इंदुमतीके निकट आया, तब

सचापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः
ललाटबद्धश्रमवारिबिंदुर्भीतांप्रियामेत्यवचो बभाषे॥
"इतःपरानर्भकहार्य्यशस्त्रान् वैदर्भिपश्यानुमतामयासि।
एवंविधेनाहवचेष्टितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगताममैभिः"॥

रघुवंश ७।

यह वीररसपूरित उक्ति उस समयपर कैसी समयोचित बोध होती है! हमारे जिन ग्रंथावलोकनप्रिय पाठकोंने अंगरेजीके उपन्यास पढ़े होंगे उन्हें इस अवसरपर सर वाल्टर स्काट्के अनुपम ग्रंथोंकी विस्मृति कदापि न होगी।

अपने कविका स्त्रीजन विषयक पक्षपात ऐसा दृढ़ पाया जाता है कि, वैसा कुछ विशेष प्रसंग न होनेपर भी वह बीचबीचमे झलकता है। स्वयंवरको जाती बार अज राजा नर्मदातीरपर डेरा डाले पड़ा था कि, सहसा उस नदीमेंसे एक प्रचंड हाथी निकला और उसने सब सैन्य तिथर बिथर कर दी। उस घटनाके वर्णनमें हमारे कविराट् कहते हैं:—

सछिन्नबंधद्रुतयुग्मशून्यं
भग्नाक्षपर्यस्तरथंक्षणेन।
रामापरित्राणविहस्तयोधं
सेनानिवेशंतुमुलंचकार॥

रघुवंश ५।

इन्दुमतीके सहसा कालकवलित होजानेपर अज राजा शोककातर हो उसके गुणोंका स्मरण करता है:—

गृहिणीसचिवःसखीमिथःप्रियशिष्यालालितेकलाविधौ।
करुणाविमुखेनमृत्युनाहरतात्वांवदकिन्नमेहृतम्॥

रघुवंश ८।

अब इधर आजकल हमलोगोंके जो विचार पाये जाते हैं कि, स्त्रीगण सबप्रकारसे निंद्य तथा नीच टहलके योग्यही हैं, सो इसमें और उक्त श्लोकके पूर्व्वार्द्धमें कितना अंतर लक्षित होता है! यहां पर यह बात विशेषरूपसे विचारक्षेत्रमें लेने योग्य है कि, कविका उक्त पक्षपात केवल राजस्त्रियोंके विषयमेंही न था बरन स्त्रीमात्रके लिये था।

त्वय्यायत्तंकृषिफलमितिभ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैःपीयमानः।
सद्यःसीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्यमालं
किंचित्पश्चाद्व्रजलघुगतिःकिंचिदेवोत्तरेण॥

पूर्वमेघः।

उक्त पद्यके प्रथमार्द्धमें किसानोंकी स्त्रियोंके विषयकी स्वभावोक्ति कैसी हृदयग्राहक है।

अब प्रवचनपटुताके कतिपय उत्कृष्ट उदाहरण नीचे प्रदर्शित करते हैं।

अतोयमश्वःकपिलानुसारिणा
पितुस्त्वदीयस्यमयापहारितः।
अलंप्रयत्नेनतवात्रमानिधाः
पदंपदव्यांसगरस्यसंततेः॥

रघुवंश ३।

उक्त श्लोकमें इन्द्रने थोड़ेसेही, पर साथही खूबीदार शब्दोंद्वारा रघुको अपना कैसा आतंक दिखलाया है। पर वह पराक्रमीराजपुत्र ऐसे आतंकको समझताही क्या था,। उसने तत्क्षण उत्तर दिया कि:—

ततःप्रहस्यापभयःपुरंदरं
पुनर्बभाषेतुरगस्यरक्षिता।
गृहाणशस्त्रंयदिसर्गएषते
नखल्वनिर्जित्यरघुंकृतीभवान्॥

रघुवंश ३।

उक्त उत्तर राजपुत्रका कुलीनता, वीरता तथा उस समयको जैसा कुछ उचित है, सो सहृदय पाठक स्वयं जानसकते हैं।

ऊपर वीर रसका नमूना हुआ, अब तद्विरोधी करुणरसकी भी बहार देखिये:—

जानेविसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां
मिथ्यापवाद क्षुभितेन भर्त्रा।
तन्माव्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं
प्राप्तासिवैदेहि पितुर्निकेतम्॥

रघुवंश १४॥

व्याधाने क्रौंचका वध किया यह देखतेही जिसके मुँहसे छन्दोमयी वाणी विनिसृत हुई उस आद्य कविकी दयार्द्रता और वाणीकी प्रौढ़ता उक्त श्लोकमे कैसी उत्तमतया झलक रही है!

यहांलों उल्लिखित हुए समस्त समुज्ज्वल गुणोकोभी लुप्त करनेवाले और अपर कवियोको अगम्य होनेके कारण केवल कालिदासके आधी-

नवर्त्ती 'उदात्तरस' वा 'कल्पना विशालता' का*अभी वर्णन होना शेषही है। आज पर्य्यंत सबदेशोंमें जो जो कवि श्रेष्ठ होगये हैं उन सबमें उत्तम गुण विद्यमान था, अंगरेजी कविताके वर्णनमें एक स्थानपर ड्रैडन कविका एक सर्वप्रसिद्ध चुटकुला लिखा था, उसका हमारे पठनप्रिय पाठकोंको स्मरण बनाही होगा। उसमें इस गुणके संबंधसे होमर कविको अग्रगण्यता दे मिल्टनकोभी उसीके साथ बैठाला है। ड्रैडन एक शताब्दीके पूर्व जन्म ग्रहणकर अपने कविके काव्यका रसामृत यदि पान करता तो गेटीकी नाईही तल्लीन हो वह उसे उक्त कविमालिकामें परिणत करता; क्योंकि वह समीचीन समालोचक था, और उसे मनकी समावस्था अर्थात् वृथादंभ, मत्सरआदि विकारोंसे मुक्तता अनुकूल थी; यह परमोत्तम गुण कालिदासकी कवितामें जहां तहां उपलब्ध होता है।–

पांड्योयमंसार्प्पितलम्बहारः
क्लृप्ताङ्गरागोहरिचन्दनेन।
आभातिबालातपरक्तसानुः
सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥

रघुवंश ६।

---

*इस रसका बोधक शब्द संस्कृत साहित्यमें नहीं है, अतः यह यहांपर नूतन लिखा गया है। इस रसको अंगरेजी में (The sublime) कहते हैं।

उक्त चुटकुला यह है.–

Three poets in three distant ages born,
Greece Italy and England did adorn;
The first in loftiness of thought surpassed.
The second in majesty in both the last
The force of nature could no farther go;
To make a third she joined the other two.

ड्रैडनने उक्त सुंदर सुभाषित एक तसवीरके नीचे लिख रक्खा था। यह उक्त कविका आशुकवित्व और उसकी गुणग्राहकताको स्पष्ट रूपसे प्रदर्शित करता है।

सरित्समुद्रान्सरसीश्चगत्वा
रक्षःकपीन्द्रैरुपपादितानि।
तस्यापतन्मूर्द्धिजलानिजिष्णो-
र्विंध्यस्यमेघप्रभवाइवापः॥

रघुवंश १४।

अस्त्युत्तरस्यांदिशिदेवतत्मा
हिमालयोनामनगाधिराजः।
पूर्वापरौतोयनिधीवगाह्य
स्थितःपृथिव्याइवमानदण्डः॥

कुमारसंभव १।

प्रजानामेवभूत्यर्थं सताभ्योबालिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्तेहिरसंरविः॥

रघुवंश १।

अबोध लोग प्रायः समझा करते हैं कि, राजाका कर लेना केवल प्रजाका धनहरण करनाही है। इस निर्मूल भ्रमका निवारण, और प्रजा हितैषिता जो करका यथार्थ रूप है आदिका वर्णन उक्त दृष्टांतद्वारा जैसा उत्कृष्ट लक्षित होता है, वैसा अपर उदाहरणद्वारा स्यातही हो!

अज राजपुत्रको विवाहके वस्त्र देनेके अनंतर अन्तःपुरके रक्षक जब उसे इन्दुमतीके निकट विवाहार्थ ले गये तबका वर्णन हमारे कवि लिखते हैं:—

दुकूलवासाःसवधूसमीपं निन्येविनीतैरवरोधरक्षैः।
वेलासकाशंस्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिवचन्द्रपादैः॥

रघुवंश ७।

उक्त अनूठे दृष्टांतोंको विचार कालिदासके सृष्टिज्ञानके विषयमें आलोचना करनेका भार हम अपने सहृदय पाठकोंपरही अर्पित करते हैं।

वधूवर विवाहाग्निकी प्रदक्षिणा करने लगे, उससमयका वर्णन यों लिखा है:—

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानो
रुदर्चिषस्तन्मिथुनंचकाशे।
मेरोरुपान्तेष्विववर्त्तमान
मन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥

रघुवंश ७।

धन्य है! उक्त कल्पनाकी विशालताको? क्या यह बात सामान्य कविके चित्तमें कदापि आनेवाली है कि, दिवस रात्रिका जोड़ा मेरुके आस पास निरंतर फिरा करता है।

तिस्रस्त्रिलोकीप्रथितेनसार्द्धमजेनमार्गेवसतीरुषित्वा।
तस्मादपावर्त्ततकुंडिनेशःपर्वात्ययेसोमइवोष्णरश्मेः॥

रघुवंश ७।

चन्द्र स्वयं प्रकाशमान नहीं है, और अमावस्याके दिन वह पर्वतकी गुहामें * छिप नहीं रहता किन्तु आकाशमेंही सूर्य्यके नितांत निकट रहता

* यह कल्पना यहूदीलोगोंकी थी। मिल्टन्‌ने 'सामसन्‌ एगोनिस्टस्' नामक नाटकके आदिमें निजके विषयमें जो करुणोक्ती प्रगट की है उसमें कहा है।

The sun to me is dark,
And silent as the moon.
When she deserts the night,
Hid in her vacant interlunar cave.

हमलोगोंमें ऐसी ग्रामीण कल्पना कदापि नहीं पायी जाती। यह 'अमावास्या (साथरहना)' 'सूर्येन्दुसंगमः' आदि शब्दोंद्वाराही प्रमाणित होता है।

है और कलाहीन होजाता है, इत्यादि ज्योतिषके रहस्य कालिदासको भलीभांति विदित थे, ऐसा उसके ग्रंथोंसे स्पष्ट बोध होता है। उक्त श्लोकमें चन्द्रके दृष्टांतको ले वह तीनरात्रि (वद्य चतुर्दशी, अमावास्या और प्रतिपदा) सूर्यके निकट रहता है और द्वितीयाको उसके पाससे निकल जाता है, सो स्पष्टही है।

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधोविवस्वान्परिवर्तमानः।
पद्मानियस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः॥

कुमारसंभव १।

उक्त पद्यको पढ़ हिमालयकी गगनभेदी उंचाई किसके मनपर प्रतिबिंबित न होगी! कविका अभिप्राय यह है कि, सूर्य क्षितिजके नीचे रहने पर भी उसके किरणजाल हिमालय शिखरस्थ सरोवरांतर्गत कमलोंको विकासित करते हैं। कमलका विशेषण 'सप्तर्षि' और किरणोंका विशेषण 'ऊर्ध्वमुखैः' ये उक्त अर्थको यथाक्रम पोषकता तथा विशदता प्रदानकरते हैं, अतः उनकी योजना अत्यंत समर्पक है। *

मेघको हिमालय पर्य्यन्त मार्ग कथितकर यक्ष उसे आगे कैलास जानेका मार्ग कथन करता है।

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्यतांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारंभृगुपतियशोवर्त्मयत्क्रौंचरंध्रम्।

---

१ उक्त पद्यकी मल्लिनाथने जो टीका लिखी है उससे बोध होता है कि, कालिदासने हिमालयकी उन्नतताके विषयमें जो नितांत सरस एव उदात्तरसका निबंधन किया है वह उनकी समझमें बिलकुलनहीं आया। 'ऊर्ध्वमुखैर्मयुखै' इसकी व्याख्या करतीबार वह लिखते हैं कि 'अतिमार्त्तण्डमण्डलत्वादग्रभूमेरितिभावः' अर्थात् टीकाकारका अभिप्राय यह है कि, हिमालयके अग्रभागस्थ सरोवरोंके कमलोंको सूर्यके करानेकर ऊर्ध्वमुख द्वारा क्यों स्पर्श करते है? इसका कारण यह है कि, हिमालयके प्रदेश सूर्य्यमंडलकी अपेक्षा अधिक ऊंचे हैं। जिस हमारे चतुर कविको ज्योतिषादि सब शास्त्रोंका भलीभांति ज्ञान होगा सो जानपडता है उसका हिमालयके शिखरोंको सबसे ऊचा मानलेना बड़ विलक्षण बोध पड़ता है।

तेनोदीचादिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामःपादोबलिनियमनाभ्युद्यतस्येवविष्णोः॥

पूर्व्वमेघः।

यक्ष कहता है "भार्गवरामने क्रौंच पर्व्वतमें जो विवर किया है, उस में जानेके हेतु तू प्रथम संकुचित होकर लंबायमान हो ऐसा करनेसे वामन अवतारमें जब भगवान् विष्णुने विराट्रूप धारण किया था, उस समय संपूर्ण स्वर्गको व्याप्तकरनेवाला उनका श्यामवर्ण पांव जैसा प्रचंड दिखा था वैसाही तू भी दीखपड़ेगा।" यह उक्ति मनको कैसा चमत्कृत कर आश्चर्यचकित करती है!

उपसंहारमें यह निवेदन है कि, कालिदासके काव्यमें जो गुण प्रधान प्रधान जान पड़ते हैं उनका वर्णनकर, उन उन स्थल विशेषोंका भी वर्णन कर दिया गयाहै कि, जहां पाठकोंका मन विशेष रूपसे रममाण होता है। उक्त लेखमें स्यात यह हुआ हो कि, बहुतेरे पाठकोंको प्रिय एवं रुचिके श्लोक उसमें न आये हों। पर एतदर्थ हमारे विज्ञपाठकोंको हमे दोष न देना चाहिये; क्योंकि वह दोष सर्वथा कविकाही है। कैसा ही रत्न परीक्षापटु मनुष्य क्यों न हो, और वह कैसेही विशाल रत्नभंडारमें क्यों न छोड़ दिया जाय, पर यदि उसे थोड़ेसेही रत्नोंका चुनाव करनेकी आज्ञा दी जाय तो वह बिचारा क्या करे। एक मुट्ठीमें जितने रत्न आ सकेंगे उतनेही वह वहांसे निकालेगा। हमारे कविके गुण अपार हैं और चित्तको रममाण करनेवाले स्थलभी बहुत हैं। तो ऐसी अवस्थामें निधिमें चुनावट करना केवल असंभव बात है। तथापि 'रघुवंशादि' काव्योंकी प्रशंसापूरित जो समालोचनाएं पीछे लिखी गयी हैं उनका पाठकोंको पूर्ण परिचय मिले इस अभिप्रायसे उक्त संग्रह उद्धृत किये गये हैं। हमें भरोसा तो है कि, उक्त संग्रहमें कालिदासके सरस पद्य प्रायः छूटने न पाये होंगे। संस्कृत कवियोंकी मालिकामें प्रथम जो कालिदास उसका यहांलों संक्षेपसे वर्णन किया गया।अब आगे कालिदासकी योग्यताका कवि और नाटकप्रणेता जो भवभूति तद्विषयक लेखका अनुवाद अपने सहृदय पाठकोंको भेंट करनेका उद्योग किया जाता है।

भवभूति ।

---o---

भवभूतेःसंबंधाद्भूधरभूरेवभारतीभाति ।
एतत्कृतकारुण्येकिमन्यथारोदितिग्रावा ॥ *

सप्तशती ।

पीछे कालिदासके विषयमें लिखतीबार यह कहा था कि, उसके विषयमे विश्वासपात्र परिचय अणुमात्र भी नहीं मिलता । और तो क्या पर उसकी असामान्य कीर्तिकौमुदी यदि उसके जीवितकालमेंही न प्रकाशित होती, और वह नाटकोंको न लिखता, तो केवल उसके काव्योंद्वारा आज दिन उसके नामका भी पता न लगता । आनंदका विषयहै कि, भवभूतिके विषयमे यह बात सर्वथा चारितार्थ नही होती । उसके जीवनकाल तथा वसतिस्थानादिका यद्यपि कालिदासकी नाईं कहीं कुछ पता नही लगता, तथापि निजके कुलवृत्तांतका भावी लोगोंको परिचय मिलनेकी तजबीज उसने कररक्खी है । उसके तीनों नाटकोंके आदिमें आगे लिखा हुआ वृत्तांत पाया जाता है । दक्षिण देशांतर्गत पद्मपुर नामक नगरीमें डंबरनामके तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहा करते थे । उनके कुलमें गोपालभट्टने जन्म ग्रहण किया था । उसका पुत्र नीलकण्ठ भवभूतिका पिता था । भवभूतिकी मांका नाम था, जातुकर्णी । आगे अपने कविको भट्ट श्रीकण्ठनाम भी प्राप्त हुआ था । भवभूतिके विषयमें सच्चा वृत्तांत इससे अधिक और नही पाया जाता । यों तो लोगोंमें कई प्रकारकी चर्चा होती रहती हैं, पर वे सब केवल कल्पनामात्र हैं ।

---

* भवभूतिके संबंधसे विचार कियाजाय तो सरस्वती पर्वतकी कन्या पार्वती होंगीसी जानपड़ती हैं । क्योंकि यदि ऐसा न होता तो उसके करुणरसद्वारा पाषाण क्यों कर रोने लगता? ।

हमारे यहां प्राचीन संस्कृत कवियोंके विषयमें अनेक दंतकथाएँ पायी जाती हैं । उनमें भवभूतिके विषयमें यह सुना जाता है कि, भोज राजाके आश्रित जो अनेक पंडितगण थे उनमे वह भी था और कविताके विषयमें उसे कालिदासकी बड़ी स्पर्द्धा थी । यह तो केवल सामान्य बात है, पर विशेषरूपसे यहभी सुना जाता है कि, भवभूतिके 'उत्तररामचरित' नाटकको पढ़ कालिदास अत्यंत विस्मित हुआ और आनंदमग्न हो उसे माथेपर रख धन्य धन्य कह वह नाचने लगा ।

किमपिकिमपिमंदंमंदमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलंजल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरंभव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामारात्रिरेवंव्यरंसीत् ॥

भवभूतिके उक्त श्लोकको पढ़ कालिदासने उसे सूचित किया कि, अंतिम चरणके 'एवं' पदके स्थानमें 'एव' पद प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेषशोभाप्रद होगा । * सुना जाता है कि, कालिदासकी उक्त सूचनाका भवभूतिने स्वीकार किया, और आजदिन उक्त श्लोकमें वही पाठ पाया जाता है । उक्त मनोरंजक कथामें काइ बात असंभवसी नहीं जान पड़ती; क्योंकि उस नाटककी योग्यता ऐसीही है कि 'शकुंतला' नाटक लिखनेवाला भी उसे अपने सीसपर धारण करे, साथही यहभी लक्षित होता है कि, कालिदास जैसाही विशालबुद्धिसम्पन्न था वैसाही वह अत्यन्त निरभिमानी भी था । परन्तु सखेद लिखना पड़ता है कि, भवभूतिके नाटक कवीश्वरोंको अल्प परिश्रम और अल्प अवकाशमें मान्य नहीं हुए,

---

* यह ऐसे कि, पूर्व्वोक्त प्रकारसे बोलते २ 'रात्रिमात्र' शेष हो गयी, पर कहानी शेष नहीं हुई । और पूर्व्वपाठका अर्थ इतनाही होता था कि, इस प्रकार से बोलते २ रात्रि शेष होगयी, इसकी अपेक्षा उक्त अर्थ अधिकतर सरस है सो अर्थमर्मज्ञ पाठक सहजही में जान सकते हैं ।

नैसर्गिकीसुरभिणःकुसुमस्यसिद्धा
मूर्ध्निस्थितिर्नचरणैरवताडनानि ।

"सुगन्धयुक्त पुष्पोंकी प्रकृतिसुलभ यही योग्यता है कि, सब लोग उन्हें मस्तकपर धारण करें न कि, उन्हें पददलित करें " यह सब है सच्चा, पर जगमे इसके विपरीत अनुभव प्राप्त होते हैं । इसी देशमें नहीं, किंतु अनेक देशोंमें ऐसी कई घटनाएँ दृष्टिगत हुई हैं कि, यथार्थपरीक्षक एवं रसिकके अभावके कारण बहुतेरोंके नैसर्गिक बुद्धिगुण उत्कर्षको प्राप्त न हो वैसेही अप्रसिद्ध बने रहे; और बहुतेरोको तो मूर्ख एवं अरासिक लोगोंमें सुदुःसह दुःखपूर्वक अपने दिन काटने पड़े । भवभूतिके नाटकोसे स्पष्ट बोध होता है कि, उसकीभी ऐसीही दुर्दशा हुई होगी ।

'उत्तररामचरित' के प्रारम्भमें सूत्रधार कहता है,

सर्व्वथाव्यवहर्त्तव्ये कुतोह्यवचनीयता ।
यथास्त्रीणांतथावाचां साधुत्वेदुर्जनोजनः ॥

" लोगोमें नामधराई हुए विना रहना बड़ा कठिन है, तिसमें भी स्त्रियोंका पातिव्रत्य और वाणीकी निर्दोषता तो लोगोंको नितान्त दुःसह बोध होती हैं । उसमें कुछ न कुछ दोष निकालनेको वे अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं ।" वैसेही 'महावीरचरित' के अंतकी चर्चरी, (भरतवाक्य)

लोकेनित्यप्रमोदंविदधतुकवयःश्लोकमाप्तप्रसादं ।
संख्यावंतोऽपिभूम्नापरकृतिषुमुदंसंप्रधार्य्यप्रयांतु ॥

" प्रसादगुणयुक्त अर्थात् अत्यन्त सरल एवं सुबोध काव्य कविगण प्रणीत करें; और बुद्धिमान् पण्डितगण उन्हे सादर पढ़ उनका गुण अङ्गीकृत करें ।"

भवभूति अपने समकालीनलोगों द्वारा यदि समादृत किया गया होता और सब लोगोंका वह प्रीतिपात्र होता तो यह कब सम्भव था कि, ऐसी कृतघ्नतापूरित उक्ति उसके मुखसे विनिःसृत होती ?

यह तो कुछ भी नहीं है, इसकी अपेक्षा नितान्त गंभीर एवं मर्मस्पृक् उक्ति 'मालतीमाधव' नाटकके आदिमें पायी जाती है; वह पाठकोंके हृदयपरभी वैसीही गहरी चोट करती है:—

येनामकेचिदिहनःप्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तुतेकिमपितान्प्रतिनैषयत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्तिममकोऽपिसमानधर्म्मा
कालोह्ययंनिरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

"जो लोग हमारी हँसी कर उसे लोगोंमें फैलाते हैं, उन्हें यह समझलेना चाहिये कि, हमने यह परिश्रम उनके लिये कदापि नहीं किया है; हमारे कैसे मनोधर्मका कोई न कोई आगे पीछे कभी अवश्यही उत्पन्न होगा, क्योंकि काल अनन्त है और वसुन्धराभी वैसीही विस्तीर्ण है।"

अरसिकलोगोंको यथार्थ योग्यताकी परख न होनेके कारण जिसे उन लोगोंने क्षुद्रवत् माना उस कविमणिकी भविष्यरूप यथार्थ उक्ति उक्त जैसी उदार एवं सकरुण क्या कहीं भी दृष्टिपथमें आसकती है? कल्पनामय सकरुण घटनाओंका वर्णन कर भवभूति अपने पाठकोंको अनेक स्थानपर द्रावित करता है, परन्तु उक्त श्लोकमें उसकी निजकी सच्ची अवस्थाको पढ़ हृदय जैसा करुणाप्लावित होता है वैसा अपर घटनाके वर्णनसे स्यातही होता हो।

उक्त पद्योंको पढ़ कालिदास और भवभूतिकी समकालीनताके विषयमें हमारे पाठकोंको किंचित् संदेह अवश्यही उत्पन्न होगा, क्योंकि जिसकी अद्वितीयताके कारण अनामिकाका नाम सार्थक हुआ; * वह कहां और जिसकी सर्व्वसाधारणमे कीर्त्ति होना तो दूर रहा, पर जिसे कविताका रसज्ञतक न मिलनेके कारण, कालकी अनंतता और धरतीकी विस्तीर्णता पर अपनी आशाको स्थित करना पड़ा, वह बापुरा कवि कहां?

* देखो 'कालिदास' पृष्ठ ३० की टिप्पणी।

इनके अतिरिक्त और भी ऐसी अनेक बातें हैं जिनके द्वारा उक्त विवादका प्रायः निर्णय हो जाता है । यहांपर उनका सविस्तर उल्लिखित होना आवश्यक जान पड़ता है ।

कालिदास और भवभूति समकालीन न थे, यह माननेके लिये पहिला बड़ाभारी प्रमाण तो यह है कि, पहिलेकी कीर्ति प्राचीन कालसेही आबालवृद्धोको विदित है, पर दूसरेकी केवल पंडितलोगोकोही ज्ञात है। कालिदास अपने जीवितकालमेंही सर्व्वसाधारणका ऐसा जनप्रिय होगया था कि, उसकी वस्तुकी चर्चा होतेही सब लोग उसे समादृत करते थे । विक्रमोर्वशी नाटकके आदिमें सूत्रधार सब लोगोंसे इतनीही प्रार्थना करता है कि—

प्रणयिषुदाक्षिण्यवशादथवासद्वस्तुबहुमानात् ।
शृणुतजनाअवधानात्क्रियामिमांकालिदासस्य ॥

"दर्शकगण ! इस नाटकमे जो नायक और नायिका हैं उनके विषयमें समादरपूर्व्वक वा यह सुभणित कालिदासकी है यह जानकर हमारे अभिनयकी ओर दत्तचित्त हूजिये । "

उक्त सूत्रधारोक्तिद्वारा उक्त दोनो कवियोका महदंतर सहजहीमें लक्षित होता है । जब कालिदास तत्कालीन लोगोको इतना वन्द्य था तब जिस कविकी कृतिको वह स्वयं समादृत करता था वह कविलोगोको किस प्रकार बहुमान्य होना चाहिये था । पर यह जनप्रियताका सुख विचारे भवभूतिके नसीबमें न बदा था । यह बात उसके नाटकोंद्वारा स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती है ।

भवभूतिको राजाश्रय प्राप्त था यह कहना युक्तिसंगत बोध नही होता, क्योंकि यदि वैसा होता तो उसके तीनों नाटकोंका प्रयोग कालप्रियनाथकी यात्राके प्रसंगपरही क्यों किया जाता?*कालिदासके किसी नाटकके आ-

---

* उक्त स्थलका उल्लेख इस कविके तीनो नाटकों के आदिमे पाया जाता है ।

दिमें रंगभूमिके स्थलका उल्लेख नहीं पाया जाता, इससे यही अनुमित होता है कि, उनका अभिनय राजमंदिरादिमें ही होता होगा। पर वह सौभाग्य भवभूतिको कभीभी न प्राप्तहोनेके कारण जान पड़ता है उसने अपने नाटक यात्रादि जनसमाजोंके प्रसंगपरही अभिनीत कराये हों, और इसकी अपेक्षा अधिक विश्वासपात्र प्रमाण स्वयं उसके नाटकमें ही पाया जाता है। कालिदासके समस्त ग्रंथोंमें संस्कृतभाषाका शुद्धस्वरूप दृष्टिगत होता है। वाक्योंकी रचना सरल, उनमें कृत्रिमता लेशमात्रको नहीं पायी जाती; वैसेही शब्दजालभी सुबोध और समास थोड़े थोड़े शब्दोंकेही पाये जाते हैं। कालिदासके सब ग्रंथोंमें खोज करनेसे चार पांचसे अधिक पदोंके समास बहुतही थोड़े मिलेंगे। इसके उदाहरणस्वरूपमे 'मेघदूतका' नामोल्लेख किया जा सकता है। वह पूरा ग्रंथ मंदाक्रांता कैसे दीर्घवृत्तमें प्रणीत कियाजानेपरभी उसमे समास प्रायः छोटे छोटेही हैं। पर भाषाकी यह प्रणाली भवभूतिके नाटकोंमें नहीं दीखपड़ती। बाण, श्रीहर्षादि तदनंतरके कवियोंने लंबे लंबे समासोकी जो कृत्रिम रचना धीरे धीरे प्रचलित की, वही उनमें जहां तहां दीख पड़ती है। इसी प्रकारसे 'मालतीमाधव' नाटकमें बौद्धमतकी स्त्रियोंको प्रधानपात्र बना, कापालादि घोर पंथानुयायी लोगोंका भी संबंध लाया गया है। पर ऐसों कैसा संबंध कालिदासके नाटकमें यत्किंचित् भी नहीं पाया जाता। 'मृच्छकटिक' 'प्रबोधचन्द्रादेय' 'नागानन्द' आदि नाटकों और 'दशकुमारचरित' प्रभृति ग्रंथोमें मात्र उस समयके लोगोंकी दशाका कुछ स्वरूप लक्षित होताहै। एतावता भवभूतिको कालिदासके समयका माननेकी अपेक्षा, उक्त ग्रन्थ जिस समय लिखे गये उसी लागपर वह था. मानना अधिक सयुक्तिक जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त भवभूतिके नाटकोंमें कालिदासके ग्रंथोंको अनुलक्षितकर लिखेहुए और उनमें से लियेहुए कुछ शब्दभी पाते जाते हैं। 'मालतीमाधव' के दूसरे अंकमें:-

''कामंदकी। अयि, सरले! किमत्र भवत्यामया शक्यं कर्तुम्? प्रभवति प्रायः कुमारिकाणां जनयिता दैवं च। यच्च किल कौशिकी शकुन्तला

दुष्यन्तमप्सराः पुरूरवसं चकमे इत्याख्यानविद आचक्षते, वासवदत्ता च राज्ञे संजयाय पित्रा प्रदत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छदित्यादि । तदपि साहसिक्यमित्यनुपदेष्टव्यकल्पं सर्वथा ।"

उक्त संवादमें 'शकुन्तला' और 'विक्रमोर्वशी' नाटकोंका तथा 'मेघदूतादि' ग्रंथप्रसिद्ध वासवदत्ता और उदयन राजाका संबंध लाया गया है सो स्पष्टही है ।

उक्त ग्रंथके नवम अंकमें माधव,मालतीके विरहसे कातर हुआ प्रदर्शित किया गया है । इस अंकके विषयमे कई स्थानोंपर ऐसा भासित होता है, कि, मानों कविने 'मेघदूत' और 'विक्रमोर्वशी' के चौथे अंकको अनुकृतकर इसे लिखा हो ।

'महावीरचरित' के सातवें अंकमेः—

विभीषणः । देव!

एतेतेसुरसिंधुधौतदृषदःकर्पूरखंडोज्ज्वलाः
पादाजर्जरभूर्जवल्कलभृतो"गौरीगुरोःपावनाः" ।*

उसी अंकमें पुनः ।

'सुग्रीवः ** **

उत्खातस्त्रिभुवनकंटकोऽतिदृप्य
दोर्दंडांचितमहिमाप्ययंनिकारः ।

---

* कार्प्योसैकतलीनहंसमिथुनास्रोतोवहामालिनी,
पादास्तामभितोनिषण्णहरिणा "गौरीगुरो:पावनाः ।
शकुंतला ६ ।

** उत्खातलोकत्रयकंटकेऽपि
सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि ।
त्वांप्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तौ
अस्त्येवमन्युर्भरताग्रजेमे ॥ रघुवंश १४ ।

देव्याश्चप्रतिशमितस्तथात्रसंधा
निर्व्यूढाप्रगुणविभीषणाभिषेकात् ॥

मननपूर्व्वक यदि आलोचना की जाय तो हम समझते हैं कि, उक्त कैसी सदृशता और भी अन्यस्थलोंपर उपलब्ध होगी।

उक्त विवाद हमारे पाठकोंको बहुधा अभीष्ट न होगा, किंतु पूर्वोल्लिखित मनोहर आख्यायिकाके विरोधिप्रमाणोंको, जो ऊपर प्रदर्शित किये गये हैं, पढ़ वे नितान्त हताश होजायँगे। क्या किया जाय इसकेलिये कोई उपाय नहीं है। इस संसारमे सत्यता और मनोहरताकी एकत्र स्थितिका नित्य विधान नहीं पाया जाता; अतः जिसे केवल सत्यताकाही अनुधावन करना हो उसे अनेक प्रसंगो पर साहसपूर्वक अपने परम प्रिय मत और नैसर्गिक वृत्तियोको भी सत्यप्रीत्यर्थ जलांजलि देनी पड़ती है। अब कोई यह प्रश्न करे कि, उक्त बात सच्ची कैसी दिखनेपर भी उसे नई गढ़ंत कैसे कह सकते हैं? वा वह वैसी ही मानलीजाय तो उसके रचयिताका क्या अभिप्राय मानना चाहिये। इसके उत्तरमे हम इतनाही कहते हैं कि, यह बात केवल कालिदास और भवभूतिके विषयमेही, वा हमारे देशके विषयमेंही नही पायी जाती, किन्तु मनुष्यके मनकी सर्वत्र ऐसीही प्रवृत्ति दीख पड़तीहै कि, जहां कोई दो अतिविख्यात मनुष्य मिले कि, किसी न किसी प्रकारसे उनका मेल मिला दिया जाता है। दैवात् यदि यह लोग बहुत पुराने रहे तो उनका गुत्थमगुत्था करदेनेवालोंकी कल्पनाशक्तिको बहुत कुछ अनुकूलता प्राप्त हो जाती है। मनुष्यकी इस प्रकृतिसुलभ मनोवृत्तिका वर्णन सब देशोंकी आद्यविद्याके कथासमूहों मे (जिन्हें अंगरेजी में Mythology कहते हैं) बहुत उत्तम प्रकारका पाया जाता है। वह इस प्रकार कि, जब मनुष्य अज्ञान अवस्थामें रहता है और क्रमशः उसकी ईश्वरप्रदत्त बुद्धिका विकास होने लगता है, तब चन्द्र सूर्य्यादि आकाशके ज्योतिर्मय पदार्थ, वैसेही समुद्र, पर्वत और

नदी आदिकी ओर देखकर वह आश्चर्य्यचकित होता है, और उसके चित्तमें यह पूज्यभाव आविर्भूत होता है कि, यह सब मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ देवतागण हैं। अनंतर वह अपने समस्त धर्म्म उनके विषयमें कल्पित कर उनके परस्पर संबंध जोडने लगता है । इस प्रकारसे एक बार आरंभ हो गया कि, पितृपुत्रपरंपराद्वारा उन्हीं कथाओंका विस्तार हो पूर्वोक्त कथासमूह बनजाता है । हिंदू, ग्रीक और रोमनप्रभृति जातियोंके प्राचीन कथासमूहोंके विषय प्रकृतिके भव्य एवं रमणीक पदार्थही पाये जाते हैं, और उनकी परस्परकी तुलना आधुनिक भाषाभिज्ञोकेलिये बड़ा गंभीर एवं रमणीक विषय हुआ है । सारांश मनुष्योंमें यह मनोधर्म निसर्गतः बलिष्ठ रहता है और नामी ग्रामी लोगोंके विषयमें सर्वसाधारणमे जिन बातोंकी चर्चा हुआ करती हैं उनका प्रायः कारण यही कहा जाता है । ' दश-कुमारचरित ' संज्ञक ग्रंथके कर्त्ता दंडीके कि, जिसका नाम पीछे एक श्लोक मे आचुका है, और कालिदासके विषयमे भी एक ऐसीही बात कही सुनी जाती है; पर वह भी पूर्वोक्त कारणोद्वारा केवल असंभवही नहीं निश्चित होती किन्तु अप्रयोजनीय एवं ग्रामीण प्रमाणित होती है। * अब एक बात देशान्तरकी उदाहृत करते हैं । ग्रीकलोगोंके सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता सोलन् और प्राचीन लिडिया देशके अमित धनसंपन्न एवं परम प्रभावशाली राजा क्रीससके विषयमे इतिहासमे एक अद्भुत बात प्रसिद्ध है । पर आधुनिक इतिहासलेखकगण यह कहते हैं कि,शताब्दीके हिसा-बसे इस बातका मेल ठीक २ नहीं मिलता, इसी बातको प्रधानता दे उसके सर्व्वप्रसिद्ध होनेपर भी वे लोग उसे प्रमाणित नहीं मानते । इस प्रकारसे, इन सब बातोंके विषयमे, यथावत् मीमांसा करतीबार संस्कृत-भाषाके उभय कविचूडामणिके विषयमें उनकी कल्पनासृष्टिचतुरजातिमे उक्त चित्तवेधक आख्यायिका परंपरासे चली आयी है तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ?

---

* इसका उल्लेख आगे दंडीके निबंधमें किया ।

अब विषयविवर्णनानुरोधके कारण यहांपर एक परम महत्त्वकी बातका उल्लेख आवश्यक जानपड़ता है । वह यह कि, इस प्रकारकी आख्यायिका वास्तवमें रहती तो असत्यही हैं पर असत्यताके कारण वे त्याज्य नहीं होसकतीं, बरन् विद्वानोंको उचित है कि, वे आदरपूर्व्वक उनका संग्रह करें । क्योंकि प्रथम तो वे मनरंजनकरनेवाली रहती हैं, और दूसरे उनके अयथार्थ होनेंपर भी उनमें यथाथताका बहुतांश विद्यमान रहता है । वह इस रूपसे कि, उनमें सर्व्वसाधारणका मत संक्षिप्त रूपसे पाया जाता है । उक्त भवभूतिविषयक बात यदि सत्य होती तो आजदिन उसकी योग्यता इतनी बड़ी न मानी जाती, पर वह निरी झूठ है इससे आगेके लोगोंमें उसकी कैसी चाह हुई होगी, सो सहजहीमे अनुमित हो सकता है । यदि वह कालिदासके समयमें हा होता, तो जिन लोगोने 'शकुंतला' और 'विक्रमोर्वशी' की प्रशंसा की, उन्हीं लोगोने 'उत्तररामचरित' और 'मालतीमाधव' की भी प्रशंसा की होती, इसमे कुछ विशेषता न थी । पर उस कविकेसरीकी गर्जना शेष होजाने पर जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, और लोगोंको जान पड़ने लगा कि, अब पुनः वैसी गर्जनाका होना काठिन है, तब पहिले का स्मरण दिलानेवाले सुतरां उससे भी कही प्रचंड दूसरेकी गंभीर गर्जना कर्णकुहरमें प्रविष्ट होने लगी, यह बात वास्तवमें अधिक चमत्कारजनक जान पड़ती है ।

कदाचित् बहुतेरे लोग यह शंका उपस्थित करनेमें तनिक भी न हिचकेंगे कि,ऊपर कविने निजका जो परिचय दिया है और अपने समकालीनलोगोंका अधिक्षेप किया है वह उसे आत्मश्लाघाके दोषसे दूषित करता है । पर नेक विचारांश करनेपर तत्क्षण ज्ञात हो जायगा कि,उक्त विचार सर्व्वथा यथार्थ नहीं है । कवि आदिकोंकी सुप्रसिद्धि प्रायः उनके परलोकयात्री होनेपर ही हुआ करती है; क्योंकि उनके जीवितकालमे उनके उत्कर्षका देख जलनेवाले मत्सरीलोग उनकी ख्यातिके बाधक

होजाते हैं; सारज्ञ एवं निर्मल बुद्धिवाले लोग बहुत थोड़े रहनेके कारण वे दुष्टोंका कुछ नही करसकते । ऐसी अवस्थामें उनका यथार्थ वृत्तांत लिख रखनेवाला उन्हें कौन मिलसकता है ? यही जान बूझकर कई नामीलोगोंने आत्मचरित्र स्वयं लिपिबद्ध कर रक्खे हैं, उसी प्रकारसे यदि और लोगभी कर रखते तो आज दिन जगको कैसा अमूल्यलाभ प्राप्त होता ! मानलो कि, संप्रति इंग्लैंडदेशमें यदि किसीको शेक्सपियर कविका स्वरचित सविस्तर चरित मिलजाय तो उसे लेनेके लिये सब देशोंसे मांगकी कैसी धूम मचेगी ! तात्पर्य यह प्रचार यदि पूर्व्वसे प्रचलित हो जाता तो उसकेद्वारा एक औरभी अनर्थ बहुत कुछ दूर हो जाता । वह यह कि, ग्रन्थोमें क्षेपक और अन्यलोगोंके विचार चोरी कर अपने कहनेको जैसा आज क्षुद्रग्रंथलेखकोंको अवसर मिलगया है वैसा उन्हें कदापि न मिलने पाता । इससे यही प्रतिपादित हुआ दीखपड़ेगा कि, महान् ग्रंथकारोंके आत्मविषयक लेख दूषणार्ह नही हैं किन्तु वे परमोपयोगी हैं । अपर संस्कृतके कवि और नाटक लेखकोंके नाम प्रायः उनके २ ग्रंथोंमे लिखेहुए पाये जाते हैं । 'मुद्राराक्षस' 'मृच्छकटिक' आदि नाटकों और कादंबरी प्रभृति काव्योंके आदिमे उनके रचयिताओंका आत्मपरिचय बहुत कुछ पाया जाता है । अतः एतदर्थ भवभूतिको दूषित करना सर्वथा अयोग्य है । * अब यह बात सच है कि, कालिदासका नाम उसके नाटकोंको छोड़ उसके अन्यग्रंथोंमेंसे किसी ग्रंथमें भी नहीं पाया जाता । और नाटकोंमेंभी जो उसने अपना नाम लिखा है सो केवल नाटकप्रणेतृगणोंकी प्रथानुसारही लिखासा जान पड़ता है । पर कालिदासकी तो बातही कुछ निराली थी । उसके काव्योंमे उसके निसर्गजात जो गुण झलकते हैं उनमें शालीनता यथार्थमें

---

* इस विषयकी अधिक विवेचना देखनी हो तो मुन्शी नवलकिशोर सी, आई, ईके मुद्रणालय लखनऊसे मदनुवादित 'निषधमालादर्श' को मगाकर उसके 'अभिमान' संज्ञक लेखको पढियेगा ।

प्रमुख है; पर उसकी भणित प्रथमहीसे सर्व्वमान्य होजानेके कारण शोभाको प्राप्त होगयी यही कारण है कि, स्वयं स्वगुण वर्णनका अश्लाघ्य कर्म उसे नहीं भोगना पड़ा। भवभूतिकी अवस्था वैसी अनुकूल न होनेके कारण स्वयं निजके गुण लिखनेके अतिरिक्त उसे उपायांतरही न था। वैसा यदि वह न करता तो उसका नाम लुप्त हो उसके ग्रंथ लुप्त होजानेका भय था, इसी भयके कारण कहीं समूचे श्लोक, कहीं एक २ दो २ चरण और कहीं केवल शब्दही उसने तीनो नाटकोंमें एकसे प्रयुक्त किये हैं, ऐसा अनुमान होता है। सारांश इन दोनो कवियोंकी तुलना करना ठीक न होगा। तोभी इसमें तनिकभी संदेह नहीं है कि, जनमान्यताके संबंधसे गुणवान् लोगोकी जो अत्यंत भिन्न २ दो अवस्था होती हैं उनके उक्त उभय कवि उत्कृष्ट उदाहरण हैं; और दोनोभी विषेशतासंपन्न होनेके कारण चित्तमे धारण करने योग्य हैं। अपनी सहज लीलाओंद्वारा वशहुए युवा पुरुषोंको देख सुंदर युवतियोका सलज्ज नीचे निहारना जैसे चित्तको मोहित करलेता है, वैसेही अर्भकोका आत्मविषयक अनादर देख उनकी ओरको तत्कृत तिरस्कारका कटाक्षपात क्या मनोहर न होगा?

भवभूतिके नामसे केवल 'मालतीमाधव' 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित' यही तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। यही तीन उसने लिखे, वा जितने लिखे उनमेंसे यही तीन अवशिष्ट रहे; इसका इतःपर निश्चय होना प्रायः असंभवही है। पर इसमे तो अणुमात्रभी संदेह नही है कि, यह तीनों उसकी लिखे हुए हैं। क्योंकि प्रथम तो उन सबमें उसका नाम पाया जाता है, और दूसरे पिछे अभी कहही चुके हैं कि, उन सबमें कुछ न कुछ श्लोकादि एकसे उपलब्ध होते हैं। यहांपर यह बातभी सहजही उत्पन्न हो सकती है कि, भवभूतिने कालिदासकी नाई काव्यभी लिखे हैं वा नही। पर इसकाभी निर्णय करना प्रायः ऊपर कैसाही दुःसाध्य है। तोभी 'मालतीमाधव' नाटकके प्रारंभमें सूत्रधारके भाषणमें 'भवभूतिनामा कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेषु वर्त्तमानः' (भवभूति नामका कवि जिसका कि, हम नाटकलेखकोंसे निसर्गजात स्नेह पाया जाता है) यह

जो प्रयुक्त कियागया है सो इसका यदि कुछ विशेष अभिप्राय हो तो हमारे कविकी नाटको की ओर प्राकृतिक प्रवृत्ति थी ऐसा मानाजाकर उक्त बातका अंशतः निबटेरा हो सकता है; वैसेही पहिले तो उसके नाटकोकी सर्वथा अवज्ञाही हुई पर आगे कुछ कालके अनंतर वेही स-र्वोपरि निश्चित किये गये, इससेभी स्यात यह अनुमान हो सकता है कि, भवभूतिका चित्त स्वभावतः नाटकोकी ओरही आकृष्ट था, और उसकी समस्त बुद्धि इसी ओर व्यय हुईसी दीखपडती है। अस्तु, तो अंतमे यह बात संशयात्मकही रहती है।

"मालतीमाधव" नाटकको अपर दोनो नाटकोकी नाई पुराणांतर्गत कथाका आधार नहि है, उसकी आख्यायिका केवल कविकल्पनाकी सृष्टि है। आगे उसका सारांश लिखा जाता है। भूरिवसु और देवरात नामके दो मित्र थे। गुरुगृहपर जब वे विद्या पढ़ते थे तब उनका यह विचार हुआ कि, यदि अपनेको लड़का लड़की हुई तो अपनलोग उन प-रस्परका विवाह करेंगे। आगे कुछ कालके अनंतर भूरिवसु पद्मावतीके राजाका प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया। और देवरात को भी विदर्भ देशके अधिपतिने अपने मुख्य मंत्रीका पद प्रदान किया। दैवात उनकी मनोकामनाभी पूर्ण हुई, अर्थात् भूरिवसुके यहां मालती नामकी कन्याने जन्म ग्रहण किया और देवरातको माधवनामका पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। यही दोनो वर्त्तमान नाटकके नायिका और नायक है। दोनोके वयस्थ होनेपर पूर्व्वसंकल्पानुसार उन दोनोका विवाह होनेवाला था; पर बीचहीमे एक अचित्य आपत्ति आपड़ी। वह यह थी कि, पद्मावतीके राजाका नंदन नामका एक प्यारा नर्मसचिव था; उसने राजाकेद्वारा मालतीकी सगाईकेलिये उसके बापसे वातचीत लगायी। इस बातचीतकी गंभीर चिताके कारण भूरिवसु किंकर्त्तव्यं विमूढ हो गया। पर ऐसे संकटके समयपर उसकी पूर्वकी गुरुबहिन कामंदकीने, कि जिसके सामने वे दोनों अपने अपत्योद्वाहकेलिये वचनबद्ध हुए थे, उनके

उक्त कार्य्यका भार अपने सिरपर ले, बड़ी चतुराईसे उसे संपादित किया। उसने अपना अंग बचाकर अपनी दासीद्वारा मालतीमाधवमें प्रेम अंकुरित करादिया। फिर एक दिन योंही मालतीकी भेंटके ओखेसे जा बातचीत करते करते वहां माधवकी चर्चा छेड़ प्रसंगवशात् उसके गुणोंका वर्णन कर उसका कुलवृत्तांतभी उसे सूचित कर दिया। उस वृत्तांतको सुन, माधवकी कुलीनताके विषयमें मालतीको जो संदेह था सो दूर होगया, और तद्विषयक उसका पूर्व्वानुराग सुदृढ़ हो गया। और दूसरे वर नन्दनके विषयमे द्वेष उत्पन्न हो उसे शंका होगयी कि, मेरे पिताकी दृष्टि केवल निजके स्वार्थपरही है। आगे उसे ऐसे कुछ ढंग दीखपड़ने लगे कि, नंदनके साथ उसका विवाह हो माधवका प्रेम उसे जन्मभर हृदयशल्य होगा। माधवकोभी उक्त आशाभंगके कारण सब जगत शून्यसा भासित होनेलगा। इधर दोनों ओरसे विवाहकी सब तैयारी हुई; पर इतनेमें चामुंडोपासक कपालकुंडला, अपने गुरु अघोरघंटकी मंत्रसिद्धिकेलिये बलिप्रदानार्थ, मालतीको आकाशमार्गसे उठा लेगयी। वह अपने महलमें अटारीपर सोयी थी, और अब जागृत होनेपर उसने अपनेको बलिप्रदानार्थ सिद्ध की हुई पाया। अपनी उक्त अवस्थाको सहसा देख वह बड़े जोरसे चिल्लाकर रोनेलगी। माधव निराश एवं उदासीन हो मरघटामे फिर रहा था सो उसका वह रोना उसने सुना। उस करुणोत्पादक रुदनध्वनिको सुन माधव शीघ्रही चामुंडाके मंदिरमे जा पहुंचा, और उसने अघोरघंटका वध कर मालतीको प्राणदान दिया। इतनेमें उसके पिताके यहांभी उसके अदृष्ट होजानेकी बात विदित हो, लोग चारों ओर उसे ढूंढनेकेलिये दौड़ रहे थे। उसके उक्त मंदिरमें प्राप्त होनेपर फिर विवाहकी तैयारी होनेलगी। कामंदकीने माधव और उसके मित्र मकरंदको ग्रामदेवताके मंदिरमे छिपाकर उन्हें कह रक्खा था कि, मैं देवीके दर्शनोंकेलिये मालतीको वहां लाऊंगी। तदनुसार बड़े समारोहके साथ मालती वहां लायी गयी। मंदिरमें जा मालती अपनी प्रियसखी लवंगिकाके गले लग माधवके गुण और उपकारका स्मरणकर रोने लगी

और प्राणविसर्जनार्थ अनुमोदन देनेकेलिये उसकी प्रार्थनाकर वह उसके पाँओंपर गिरपड़ी । इतनेमें लवंगिकाके इंगित करनेपर माधव उसके स्थानमें आ खडा हो गया। मालतीके नेत्र साश्रु होनेके कारण उसे किसी प्रकारका संदेह नही हुआ। अंतमें माधवको लवंगिकाही जान वह उसके गले लिपट गयी, और उसने अपने मनकी सब बात उसे सुना दी, और माधवकी गुही हुई इस बकुलमालाको मालतीके जीवनकी सहदानी जान अपने हियेसे लगारखनेकी प्रार्थनाकर उसके गलेमे उसने वह माला पहिरा दी । पर ऊपर देखतेही माधवको पह-चान, सभय लज्जित हो वह पीछे हटगयी । इतनेमें कामंदकी भीतर आयी और उसने उन दोनोंको गुप्तमार्गद्वारा अपने मठपर जानेकी अनु-मति दी। वहांपर उसने अवलोकिता नामकी अपनी चेलीद्वारा विवाहकी सब सामग्री पूर्वहीसे सुसज्जित करा रक्खीथी।इधर मालतीके सब कपडे और अलंकार मकरंदको पहिरा कामंदकी उसे भूरिवसुके यहां ले गयी, और किसी को तनिकभी संदेह न होने देते उसने उसका नंदनके साथ विवाह करा दिया।मदयन्तिका नामक नंदनकी एक बहिन थी,वह प्रथमहीसे मकरन्दपर आसक्त हो गयी थी, और जबसे उसने उसे व्याघ्रके आक्रमणसे बचाया था तबसे तो वह उसके प्रेमकी भिखारिन बन गयी थी। उसकी और मकरन्दकी भेंटभी इसी प्रसंगपर उसने बड़ी दक्षतासे करा दी । अनंतर पूर्वसंकेतानुसार वे दोनों और लवंगिका तथा कामंदकीकी दूसरी चेली बुद्धिरक्षिता ऐसे यह चारों जन, आधीरातको जब वहां चारो ओर सन्नाटा छा गया;गुप्तभावसे मठकी ओर चले गये । पर मार्गमें नगररक्ष-कोंने उनके जानेमे बाधा उपस्थित की, तब मकरन्दने उन तीनों स्त्रियोंको माधवके किंकर कलहंसके साथ माधवके निकट भेज दिया और आप अकेला उनसे लड़ता रहा । आगे माधवने जब वह समाचार सुना तत्क्षण वह भी अपने मित्रकी सहायताके लिये आ गया। उन दोनोंने नगररक्षक अधिक होनेपरभी उन्हें पराजित किया । उनके उस पराक्रमको देख राजाने उन्हे बहुमानपूर्वक बोलाया, और उनका सब

[illegible] सुन, उनकी इच्छानुसार सब कार्य करना स्वीकृत किया। इस प्रकारसे राजसत्कार प्राप्तकर वे दोनों मित्र कामन्दकीके मठपर गये–पर वहां जा उन लोगोंने मालतीको न पाया। क्योंकि, लवंगिकादि उसकी सखियोंको उससे किंचित् दूर देख कपालकुण्डला उसे अचानचक उठा ले गयी थी; और माधवसे बदलालेनेके अभिप्रायसे वह उसका वध करनेकोही थी कि, उतनेम कामन्दकीकी एक पुरानी चेली सौदामिनीने, कि, जो उसी श्रीपर्वतपर तप कर रही थी, उसके प्राणोंकी रक्षा की। इधर माधव उसके विरहदुःखसे कातर हो अपने मित्रको साथ ले उसके शोधार्थ वनोवन भ्रमण करनेलगा। फिरते फिरते विरहव्याकुल हो वह मूर्च्छित हो गया, मित्रकी उक्त दुःखद अवस्थाको देख एक पर्वतकी चोटीपरसे कूदकर प्राणविसर्जन करनेके लिये मकरंद प्रस्तुत हुआही था कि, इतनेमें सौदामिनी वहां योगबलद्वारा प्रादुर्भूत हुई और मालतीके जीवित रहनेकी पहिचान जो बकुलपुष्पमाला थी उसे दिखाकर उसने उसकी सान्त्वना की; इतने अवसरमे शीतल वायुके स्पर्शसे माधवकी मूर्च्छाभी टूट गयी, मूर्च्छाके टूटतेही उन्माद अवस्थाके कारण कृतांजलि हो वह वायुकी प्रार्थना करनेलगा। सौदामिनीने यह अवसर उचितजान वह बकुलपुष्पमाला उसकी अंजलीमे छोड़ दी। माधवने उसे तुरंतही पहिचान लिया और तद्द्वारा उसे धैर्य्य प्राप्त हुआ। आगे सौदामिनीने प्रगट होकर उन दोनोंको मालतीके समाचार सुनाये। अंतमें कामंदकी, भूरिवसु और लवंगिकादि मालतीकी सखियां; मालतीकी कहीं टोह न लगनेके कारण नितांत दुखित हो गयी थीं, उनकोभी सौदामिनीने आश्वासन दिया और मालतीका भेंट करायी। तदनंतर आनंदमग्न हो सब लोगोंने वधूवरोंका विवाहोत्सव मनाया।

यही इस नाटकका संविधानक अर्थात् कहानी है। है तो यह बहुत लंबी चौड़ी पर साथही सरलभी है। बहुत घुमाने फिरानेसे जैसे किसी विषयको जटिलता प्राप्त हो जाती है सो बात इसकी नहीं है; इसकी घटना ऐसी चमत्कृतिजनक एवं चित्रविचित्र होनपरभी इसके कथा-

सूत्रमें यद् किंचित् ऊनता नहीं देखपड़ती । आधार स्वरूप कुछ न होनेपरभी भवभूतिने ऐसी रोचक कथा रची, इससे बोध होता है कि, उसकी कल्पनाशक्ति बहुत प्रचंड थी । इसके सिवाय कापालिकपंथानुयायी दो पात्रोंकी नाटकमें योजनाकर उसका मेळ आख्यायिकासे बहुतही उत्तमतया मिळाया है । ये सब बातें उसकी चतुरताका पूर्णरूपसे परिचय देती हैं । पात्रोंके भिन्न २ स्वभावोंकी विचित्रता स्पष्टरूपसे प्रदर्शित करनेकी रीति संस्कृत नाटकोंमेंही नहीं सुतरां संस्कृत कवितामात्रमें कम पायी जाती है; और तो क्या पर नाटकोंमें 'वेणीसंहार' और काव्योंमें ' महाभरत ' के अतिरिक्त उक्त गुण किसी काव्यमे कहींभी पूर्णरूपसे दृष्टिपथमें नहीं आता ऐसा कहना स्यात अनुचित साहस न कहा जायगा । वर्त्तमान नाटकमेभी वह गुण वैसा कुछ विशेष नही है; पर तोभी प्रत्येक पात्रमें उसकी भिन्न २ अवस्थानुसार जो जो गुण रहने चाहिये वे उत्कृष्टतापूर्व्वक प्रदर्शित कियेगये हैं । माधव और मकरंदकी शूरता और परस्परका स्नेह, मालतीके स्वभावकी गंभीरता एवं कुलाभिमान, लवंगिका, बुद्धिरक्षिता और अवलोकिताकी प्रवचनपटुता, कामंदकीकी प्रौढ़ता और चतुराई, अघोरघंट और कपालकुंडलाकी निठुरता, प्रभृति सब गुण इसमें पूर्णरूपसे पायेजाते है । इसका प्रधान रस प्रायः शृंगार जानपडता है, तौभी अन्य नाटकोमे वह जितना स्पष्ट और उद्दाम पाया जाता है उतना इसमें नही पायाजाता । इसमे वह जिस ढंगका पायाजाता है वह बडा गंभीर एवं प्रौढ़ है । इसके उदाहरण स्वरूपमे आगे एक दो बाते लिखी जाती हैं । प्रथम अंकांतर्गत मदनोद्यानमें मालतीके दृष्टिपथमे आनेके कारण माधवका कामार्त्त होना और उसका समस्त वृत्तांत मकरंदसे कथन करना; आगे छटे अंकमें मालतीका करुणाप्लावित हो लवंगिकाकी भ्रांतिसे माधवके गले लिपटना और अनन्तर उसे देख लज्जित होना, वैसेही आठवेंके आदिका खूबीदार शृंगारका चुटकुला आदि आदि । पर इन सबकी अपेक्षा पांचवे अंकमें कविने अपनी चतुरताकी पराकाष्ठा प्रदर्शित की है; उसमे भया-

नक, अद्भुत, वीर और करुणादि भिन्न भिन्न रस अवश्य एकत्रित हुए हैं। पर उनमे शृंगारका जो अंश है वह उदात्तरूप एवं अत्यन्त शुद्ध है । इसमें अणुमात्रभी संदेह नहीं है कि, भिन्न भिन्न रसोकी ऐसी एकात्मता बहुतही थोड़े स्थानोंपर मिलसकेगी । मालतीका विवाह जब नंदनके साथ निश्चित हुआ तब माधव निराश हो गया, उस समयकी उसके मनकी अवस्था, और वैसेही कपालकुण्डलाके मालतीको उठा ले जानेपर विरहके कारण उसे जो असह्य दुःख हुआ आदि प्रसंगोका वर्णन अत्यन्त अनूठी उक्तिद्वारा उत्कृष्टतया किया गया है।इस नाटकमे बीभत्सरसकाभी एक सुप्रसिद्ध उदाहरण पायाजाता है।वह यह कि, जब माधव सायंकालके समय हताश हो प्रर्घटामे फिर रहा था तब भूत प्रेतोंकी जो लीलाएं उसके दृष्टिपथमें आयीं, उनका तत्कृत वर्णन है । कहनेका अभिप्राय यह है कि, कविने प्रायः सब रस इस ग्रन्थमें गठित किये हैं, और उनका परिपाकभी वैसाही परमोत्कृष्ट बना है । बीचबीचमें कहीं कही कुछ वर्णन आगये हैं सो वह भी बहुत सुन्दर हैं, और विशेषतः नवम अंकमें सौदामिनीने आकाशमार्गसे यात्रा करतीबार पद्मपुरनिकटवर्तिनी वनश्रीका जो वर्णन किया है वह बहुतही बहारका है । इस नाटकमें रचनाके सबन्धसे एक बात विशेषरूपसे ध्यानमे रखने योग्य है, क्योकि, वह अपर थोड़ेही ग्रन्थोमें पायी जाती है । संस्कृतके काव्यनियमप्रधानग्रंन्थोमे यह नियम नही पायाजाता कि, नाटकमे इतनेही अंक रहने चाहिये, अतः अंगरेजी नाटकोंकी नाई सदा उसमें पांचही अंक नही रहते किन्तु कहीं कही वे दश पर्य्यन्तभी पायेजाते हैं । वही बात वर्त्तमान नाटकमेंभी पायीजाती है; और उसके अपर दोनों नाटकोंमें न रहकर इसमे रहनेका कारणभी स्पष्टही है।वह यह कि, इसका संविधानक (कथासूत्र) बहुत लम्बा होनेके कारण सात आठ अंकोमें शेष होने योग्य न था । पर तौभी यह नाटक यदि खेला जाय तो जान पड़ता है कि, उसकेलिये और नाटकोंकी अपेक्षा अधिक समय न लगेगा, क्योंकि, उसकी पृष्ठसंख्या अपर नाटकोंके इतनीही है ।

'महावीरचरित' नाटक रामायणकी सर्वप्रसिद्ध कथाके आधारसे रचा-गया है। तौभी उसकी आख्यायिकाकी अपेक्षा उसका संविधानक बहुत ही निराले ढंगसे बांधा गया है; एतावता वह आगे संक्षिप्तरूपसे लिखा जाता है। विश्वामित्र दशरथराजाके यहां जा यज्ञविघ्ननिवारणार्थ राम लक्ष्मणको अपने आश्रमपर ले आये। यज्ञोत्सव देखनेके लिये जनक राजाभी निमन्त्रित कियेगये थे, पर उन्हें अवकाश न मिलनेके कारण उनने अपने भाई कुशध्वज और कन्या सीता एवम् उर्म्मिलाको वहां भेज दिया था। इसप्रकारसे आदिमे इन दोनो राजकुमार और राजकुमा-रियोंका भेट हुई। इतनेमें रावणका भेजाहुआ एक राक्षस सीताकी मंगनीके अर्थ कुशध्वज और विश्वामित्रके निकट आया। उसकी स्वागत पूछ उन लोगोंने उसे वहां बैठनेको कहाही था कि, उतनेमे ताड़काका भीषण शब्द श्रवणगत होनेलगा। तब विश्वामित्रकी आज्ञानुसार श्रीरामने तत्क्षण उसका वध किया। तदनन्तर कुशध्वजकी आज्ञासे शिवजीका धनुष वहां लाया गया श्रीरामचन्द्रजीके उसे तोड़नेपर उन दोनों लड़कियोंका यथाक्रम श्रीराम लक्ष्मणको दिया जाना निश्चित हुआ। इस सब घटनाको देख राक्षसनाथ रावणका भेजाहुआ दूत भयचकित और निराश हो लंकाको लौटगया और वहां पहुचनेपर उसने वहांका समस्त वृत्तान्त रावणके पितामह एवम् अमात्य माल्यवान्को कह सुनाया। उसके सुनतेही वह गम्भीर चिन्तामे मग्न हो गया; और तबसे रामका घात करनेके लिये वह नाना भाँतिके उपाय और प्रयत्न करनेलगा। प्रथम वह महेन्द्रद्वीपको गया और वहां उसने शिवकोदण्डका सब वृत्तान्त परशुरामको सुनाया, और रामसे उसका बदला लेनेके लिये उन्हें उत्तेजना दी। परशुरामभी परम क्रुद्ध हो मिथिलानगरीको आये। उनके वहां आनेपर रामसे युद्ध न करनेके लिये विश्वामित्र और वसिष्ठजीने उनकी बहुत प्रार्थना की, पर उनने अपना हठ छोड़ना न चाहा। यह देख राजा जनकके पुरोहित शतानंद बहुत कुपित हुए, और दोनोका वादविवाद हो शतानंद परशुरामको शापोदकद्वारा भस्म करनेकोही थे

कि, इतनेमें राजा दशरथने उनकी रक्षा की। आगे स्वयं रामने युद्धके-लिये परशुरामको बोलाया और दोनोंका द्वंद्वयुद्ध होकर परशुराम पराजित हुए। इस प्रकारसे माल्यवान्का पहिला मंसूबा जब व्यर्थ हो गया तब उसने दूसरा मंसूबा फिर बांधा। वह इस प्रकारसे कि; शूर्पणखाको मंथराके शरीरमें प्रविष्ट करा, तद्द्वारा रामको बनवास करानेके लिये कैकेयीकी बुद्धि फेर दी, और विराध, खर दूषणप्रभृतिको रामका नाश करनेकी आज्ञा प्रदानकर कपिराज वालीको अनुकूलकर उसेभी वही बात जता दी। इधर परशुरामजीने शस्त्रसंन्यास किया और दंडकारण्यनिवासी मुनिजनोंकी रक्षाका भार रामपर समर्पितकर, आप तप करनेको चले गये। रामनेभी उसका परम हर्षके साथ स्वीकार किया, और उसके योगसे कैकेयीप्रदत्त वनवासका उन्हें अणुमात्रभी दुःख न हुआ। दंडकारण्यनिवासी खर दूषणादिके वधके वृत्तांत, और सीताहरणआदि जटायु और संपातिके सवादमे सूचित कियेगये हैं। आगे सीतान्वेषण-तत्पर राम लक्ष्मण अरण्यमें जब भ्रमण कर रहे थे तब विभीषणकी भेजी हुई श्रमणा नामकी एक स्त्री उसका पत्र लेकर उन्हें मिली। इस पत्रमें बिभीषणने रामकी शरण चाही थी। रामने उसका स्वीकार किया और उससे जानकीके समाचार पूछे, उसने उत्तरमे निवेदन किया कि, सीताने एक वस्त्र नीचे डालदिया था उसे सुग्रीव विभीषण और हनुमानादिकोंने आपके स्नेहके कारण अपने पास रख छोड़ा है। इस बातके जानतेही वे दोनो किष्किधानगरीकी ओरको गये। आगे राम और वालिका युद्ध हुआ और वालिने अपने प्राणोत्क्रमणके समय सुग्रीव और अंगदको राज्याधिकार दे अग्निसाक्षिक राम और सुकंठकी मित्रता करायी। इसके अनंतरकी लंकादहनादि घटनाएं नाटक सम्प्रदायानुसार कहीं पड़देके पीछेके और कहीं पात्रोंके संवादादिमें सूचित की गयी हैं, और घोरयुद्धका वर्णन इन्द्र और चित्ररथके परस्परालापके छलसे किया गया है। अन्तिम अर्थात सातवे अंकमें पहिले लंका नितान्त शोकाकुल होकर आती है और अनन्तर अलका अर्थात् यक्षेश्वर कुबेरनगरीकी अधिष्ठात्री

आकर उसकी सांत्वना करती है। अन्तमे पुष्पकविमानारूढ़ हो राम सीता लक्ष्मण और सुग्रीव विभीषणादि अयोध्याकी ओर प्रस्थित होते हैं और मार्गमें राम भूतपूर्व्व भिन्न भिन्न घटनाओका वृत्तान्त सीतासे कहते जाते है। रामके अयोध्या पहुंचनेपर भरतभेट हो उनका राज्याभिषेक हुआ है।

उक्त संविधानकद्वारा यह बात लक्षित होती है कि, रामायण वर्त्तमान नाटकका आधार केवल नाममात्रको मानी जा सकती है, पर वास्तवमें उसकी समस्त रचना कविकल्पितही है। रामायणकी कथा और वर्त्तमान संविधानकमे पहिला बड़ाभारी भेद यह है कि, यद्यपि परशुराम तथा वालीसे रामका युद्ध और वनवासादि स्वतन्त्र घटनाएं हैं तथापि कविने यहांपर यह बात कल्पित की है कि, उक्त घटनाएं माल्यवानूने कपटपूर्वक करायीं। हमारे चतुर कविने ऐसा क्यो किया इसका कारणभी विवेकी पाठकोको ज्ञात होही चुका होगा। वह यह है कि, ऊपर कैसी बातें कितनीहि अधिक हों तौभी उनका पृथक् वर्णन काव्यमे निर्वाहित होसकता है। पर उनके परस्परसे असम्बद्ध होनेके कारण, और नाटकके मुख्य पर्यवसानकी ओर जैसे यहां रामरावणयुद्ध—उनकी गति बिलकुल न होनेके कारण, वे नाटकमें अधूरी दीख पड़ती है, और इसके योगसे नाटकके प्रधान गुण वस्त्वैकताका * भंग होता है। इसी प्रकारके और दूसरे हेरफेरभी जो कविने किये हैं वे सब युक्तियुक्त हैं। ताड़काको देख विश्वामित्र डर गये, रावण शिवधनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाती बार उलटकर गिरपडा, परशुरामको क्रुद्ध देख दशरथराजा भयभीत हुए इत्यादि बातोसे मनको प्रशस्तता नही जानपड़ती अतः कविने उनका लोप कर एक निरालीही रचना रची है। परशुरामका स्वभाव जैसा कुछ निर्दय एवं अत्युग्र प्रदर्शित किया जाता है ठीक वैसाही यहा नहीं

---

* (Unity of Action) नाटकके संविधानकमे जो कृत्य रहते हैं उन्हें नाटककी परिभाषामें 'वस्तु' कहते है, उसकी एकता अर्थात् समस्तअंगोंका परस्पर का मेल।

प्रदर्शित किया गया है किंतु उसमें थोड़ीसी सौम्यता झलकायी गयी है। वैसेही वाली और सुग्रीवका वैर, उसमेंभी पहिलेकी उद्दंडता, और उसके साथ रामका कपटव्यवहार आदि बातोंका इसनाटकमें कहीं पतातक नहीं लगने पाता। सारांश नाटकप्रणेतृगणोंकी प्रथानूसार भवभूतिने संविधानकको चमत्कृतिजनक करने तथा पात्रोंकी उदात्तशीलता प्रदर्शित करनेके हेतु रामायणकी मूलकथाको अपनी आवश्यकतानुसार बहुत स्थानोंपर परिवर्तित किया है।

इस नाटकके नामके अनुसार इसमे वीररसही प्रधान पाया जाता है; और आदिमें सभ्यापेक्षित गुणोंका वर्णन करताहुआ सूत्रधारभी वही बात कहता है।

महापुरुषसंरम्भो यत्र गम्भीरभीषणः।
प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती॥
अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरः स्थितो रसः।
भेदैः सूक्ष्मैरभिव्यक्तैः प्रत्याधारं विभज्यते॥

"अभिनीत होनेवाले इस अगले नाटकमे महापुरुषोंकी गंभीर एवं भयावनी उग्रता प्रदर्शित की जानी चाहिये; आलाप स्पष्ट एवं उद्दाम रहने चाहिये, पात्रगण उच्च पदस्थित रहने चाहिये और उनमें वीररस जागृत रहना चाहिये, वह इतना कि, जिस पात्रको जितना आवश्यक और शोभाप्रद हो।"

उक्त प्रस्तावनानुसारही इसमें सब गुण पाये जाते हैं। कहीं कहीं थोडेसे स्थलोंपर मात्र शृंगाररस झलकता है। इसके सिवाय अपर कोई भी रस 'महावीर' चरितमे बहुधा नही पाया जाता कहना स्यात अयुक्तिसंगत न समझा जायगा।

इस नाटकके पात्रोंके स्वभावोंका यहांपर वर्णित होना आवश्यक नहीं है; क्योंकि वे सर्व्वप्रसिद्धही हैं। पुराण वा इतिहासप्रसिद्ध कथाके आधा

रसे नाटक लिखनेवालेको यह बात स्वयंसिद्धही मिलती है कि, पाठक वा दर्शकोंके चित्तमे उन्हें जो वृत्तियां प्रादुर्भूत करनी पड़ती हैं वे पहिलेसे ही उनमें सिद्ध पायी जाती हैं । उनको केवल इतनीही बातकी ओर ध्यान देना पड़ता है कि, संविधानक अप्रयोजक रीतिसे जोड़ा जाकर वा पात्रोंके संवाद अशोभाप्रद लिखे जाकर मूल कथाकी रसहानि न होने पावे । उसमें उक्त चतुराई होनेके कारण वह उस बातको सुधार भी सकता है; इस अंतिम बातको वर्त्तमान नाटकमे भवभूतिने कहां कहां और किस किस प्रकारसे सुधारा है सो अभी पीछे उल्लिखित होही चुका है । सारांश यह नाटक कविकी इच्छानुसार उत्कृष्ट बन भी गया है अतः इसके एक भागको उत्तम और दूसरेको अनुत्तम कहना युक्तिसंगत नही देख पडता । तथापि थोडेसे स्थलोका किंचित् सविशेष वर्णन आवश्यक जानपड़ता है । पांचवे अकके आदिमे जटायु और संपातिका प्रवेश; वैसेही अंतिम अंकके राम सीतादि मंडली पुष्पक विमानमे बैठकर सूर्य्यमण्डलके सन्निधि गयी और भूतपूर्व्व वृत्तांतस्मारक दंडकारण्यसे होतीहुई अयोध्याको लौट आई, यह दोनों वर्णन भव्य एवं उदात्तरसगर्भित है* । छठे अंकमे सीताकेलिये उत्कंठित हो रावण आया है; फिर मंदोदरीको आतीहुयी देख उसने अपना मनस्ताप छिपाया, और तत्कथित सेतुबंधनके संवादका उपहास कर उसे आश्वसित किया । आगे उसके सैन्यपति प्रहस्तने आकर रामके ससैन्य समुद्र पार आकर लंकापर आक्रमण करनेके समाचार उसे दो बार सुनाये पर उसने प्रमत्तताके कारण कुछ भी नही सुना, इत्यादि बाते बड़ी चतुराईसे लिखी गयी हैं। उनसे रावणका गर्व, संकट विषयक सोन्माद अनास्था, और अप्रासंगिक कामातुरता आदि खचितहुईसी स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती हैं ।

---

* संस्कृत वा भाषाके किसी प्राचीन वा अर्वाचीन रसग्रन्थप्रणेताने 'उदात्त' नामका रस वर्णित नहीं किया है । 'उदात्त' नामका रस माननेकी सम्मति केवल स्वर्गवासी पण्डित विष्णुकृष्ण चिपळूणकर शास्त्रीनेही प्रकाशितकी है ।

भवभूतिका तीसरा नाटक 'उत्तर रामचरित' है। यह पिछले दोनोकी अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है, और कोई कोई तो इसे सब संस्कृत नाटकोमे उत्तम मानते हैं। कालिदासके विषयमें इस नाटकके संबंधसे जो आख्यायिका परंपरासे चली आती है, वह अभी उपर उल्लिखित होही चुकी है, तद्वारा भवभूतिकी संस्कृतज्ञ मंडलीमें जो मान मान्यता है सो स्पष्टरूपसे लक्षित होती है। यह नाटक पिछले 'महावीर चारित, के उत्तरार्द्धके रूपमें है। पिछलेमें रामायणकी कथा रामके राज्याभिषेक पर्य्यंत पायी जाती है, और इसमे वह बहुधा अंत पर्य्यंत वर्णित है, पर इसमें भी 'महावीर चरित' की नाई मूलकी अपेक्षा वहुतेरे स्थानों पर हेरफेर किये गये हैं। वे निम्न लिखित संविधानकद्वारा सहजहीमें लक्षित हो सकते हैं।

रामके राज्यारूढ़ होनेके अनंतर ऋष्यशृंगने द्वादश वार्षिक सत्र करना प्रारंभ किया। ऋष्यशृङ्ग रामकी बहिन शांताके पति थे। इनके आमंत्रित करनेपर रामकी तीनों मा, वशिष्ठ, अरुंधती आदि राजकुलगुरु उनके यहां गये। मिथिलानरेश जनकजी राम और सीताकी भेटकोलिये आ, अयोध्यामें कई दिनोसे टिके हुए थे, वे भी इसी अवसरपर मिथिलाको लौट गये। उनके वियोगके कारण जानकीको खिन्न देख उनके मनोरंजनार्थ रामने अपने समस्त भूतपूर्व्व वृत्तांतोंका चित्रपट प्रस्तुत करानेकेलिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। उसे लेकर लक्ष्मण आये, और उसके चित्र वे यथाक्रम दिखा रहे थे कि, रामको उन उन घटनाओंके स्मरणद्वारा पूर्वानुभूत हर्ष, विरह और शोकादि मनोवृत्तियोंका एकवार पुनः अनुभव प्राप्त हुआ। उक्त चित्रपटको देखते देखते दंडकारण्यकी वार्त्तातक जब आपहुंचे, तब रामको जानकीके वियोगका स्मरण असह्य हो उनने लक्ष्मणको ठरहनेकेलिये कहा। उस चित्रित वनशोभाको देख, सीताका गर्भवती होनेके कारण इस बातपर जी चला कि, भागीरथीके पावन कूलस्थ वनमें रहना चाहिये। सीताकी उक्त इच्छा पूर्ण करनेके हेतु रामने लक्ष्मणको रथ प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणके उधर चले जानेपर सीता चित्रदर्शनसे परिश्रांत हो रामका हाथ उसीसे ले सोगयीं। इत-

नेमे दुर्मुख नामका रामका गुप्तवार्त्ताहर वहां आया । उसे रामने पूछा कि, लोग हमारे विषयमे क्या चर्चा करते है तब उसने सीताविषयक भयावना जनापवाद उनके कानमे कहा। उसके सुनतेही राम मूर्च्छित हो गये, पर शीघ्रही उनकी मूर्च्छा टूटनेपर निरुपाय होनेके कारण उनने सीताको वनमैं छोडदेनेकेलिये निश्चय किया । और इस हृदयदाही विचारकी दुर्मुखद्वारा गुप्तभावपूर्व्वक उनने लक्ष्मणको सूचना दी । इसके अनंतर अगला बहुतसा वृत्तांत–अर्थात् स्वयं गंगाका कुश लव युवकको वाल्मीकिके आधीन कर देना, ब्रह्मासे वर पा आद्य कविका रामायण प्रणीत करना; वसिष्ठ, अरुंधती, और रामकी माता आदिकोंका सत्रसमाप्तिके अनंतर वाल्मीकिके आश्रमपर आकर कुछ काललो ठहरना, रामका अश्वमेध प्रारंभ कर घोडेको छोडना और उसकी रक्षाकेलिये लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतुको नियुक्त करना, ये सब बाते जनस्थान * निवासिनी वासंती नामक वनदेवी और वाल्मीकिआश्रमस्थित तपस्विनी आत्रेयीके परस्परके सलापमे सूचित की गई है । आत्रेयीने अंतमे यहभी कह दिया कि, इस पचवटीमें शबूक नामका एक शूद्र स्वधर्मविरुद्ध तपकर प्रजामात्रके अकाल मरणादि आपत्तियोका कारण हो रहा है, यह बात आकाशवाणीद्वारा जानकर उसे दंडित करनेके निमित्त राम इधर शीघ्रही आनेवाले हैं । उक्त कथनासुर रामके वहां आ उसका वध करते ही वह अपने दिव्यशरीरको धारणकर प्रगट हुआ । आगे शंबूकसे बातचीत करनेपर रामको विदित हुआ कि, यह दंडकारण्य है, तब वे पूर्व वृत्तांतका स्मरण कर वहाकी शोभा देखने लगे । अनतर अगस्ति मुनिके यहासे सदेशा आनेपर उन ऋषिके दर्शनार्थ राम वहां गये। वहासे लौटकर अयोध्याको जातीवार रामने अपने पुष्पक विमानको उस दण्डका-

---

* संप्रति जिसे 'नासिक' कहते हैं उसीका आसन्नवर्त्ती प्रदेश प्राचीन कालमे 'जनस्थान' के नामसे पुकारा जाता था ।

रण्यमें पुनः ठहराया,और अपने विचार किया कि,पूर्व्वके स्थलोंका निरीक्षण कर सीताविरहके दुःखको किंचित् हलका करले।परन्तु यह तो कुछ नहीं हुआ उलटे जनस्थानके दर्शनद्वारा उनके वियोगानलकी ज्वाला अधिकतर धधक उठी और उसके योगसे वे मूर्च्छित हो गये। इस भावी अनर्थको पूर्व्वहीमें जानकर उसके निवारणार्थ गङ्गाने उपायभी सोच रक्खाथा। वह यह कि, अपने प्रभावसे सीताको अदृष्ट रहनेकी शक्ति प्रदानकर तमसाको उसके निकट रहने की आज्ञा दे रक्खी थी। अतः रामके मूर्च्छापन्न होतेही सीता अदृश्यरूपसे उनके पास गयी। उनके हाथ का परिचित स्पर्श होतेही रामकी मूर्च्छा टूटगयी। पर नेत्र उघाड़कर देखनेपर निकट कोईभी दृष्टिगत नहीं हुआ तब नितांत खिन्न हो उनने विचार किया कि, सीताके निदिध्यासके कारण मुझे यह योंही भ्रम हुआ। इतनेमें वनदेवी वासंती घबराई हुई रामके पास आयी, और कहनेलगी कि, सीताने पूर्वमे जिसे अपने हाथो पाल पोषकर बड़ा किया है उस अल्पवयस्क युवा हाथीपर एक विशालकाय हाथी आक्रमण कर रहा है। तब उसकी रक्षाके हेतु राम उधरको गये। पर वहां जाकर उनने देखा तो उसे जय प्राप्त कर अपनी स्त्रीके साथ जलविहार करते पाया।इसी प्रकारसे अन्य पशु पाक्षियोको भी उनने पूर्व्व परिचित पाया और वासंतीके भूतपूर्व्व अनेक घटनाओका स्मरण दिलानेपर औत्सुक्यादि वृत्तियां उनके मनमे प्रादुर्भूत हुई। बात चीत करते करते सीताकी चर्चा छेड़ वासंतीने उनके परित्यागार्थ हृदयभेदक शब्दोंद्वारा रामका उपालंभ किया। सीताकी चिरवियोग के कारण घोर अरण्यमे क्या अवस्था हुई होगी सो न विदित होनेके कारण रामका हृदय करुणाप्लावित होगया, और दुःख असह्य होनेके कारण वे संज्ञाशून्य हो गये। तब फिर पहिलेकी नाई सीताने उनके ललाटको अपने हाथसे स्पर्श कर उन्हे लब्धसंज्ञ किया, पर उन्हें वा वासंतीको वह दृष्टिगत नही हुई। अन्तमें अश्वमेधका समय न चूकने पावे इस अभिप्रायसे राम विमानासीन हो अयोध्याकी ओर निकलगये। इसके आगेका स्थल वाल्मीकिका आश्रम माना गया है। वहां वसिष्ठादि मण्डली थी ही

और जनकजीभी मुनिके दर्शनार्थ आगये हैं। वे सब सीताकी हृदयंविदारक भीषण अवस्थापर शोक प्रकाशित कर रहे थे कि,उतनेमें आश्रमके बटुगणो मेंसे एक उनके निकट आया। उसने अपना नाम लव और अपने जेठे भाईका नाम कुश बतलाया। मातापिताके नाम पूछे जाने पर उसने विदित किया कि, मुझे वह ज्ञात नहीं हैं। हा इतना अलबत्ते मैं जानताहूं कि, हम दोनों वाल्मीकिऋषिके हैं। उनकी चाल चलन और मुखाकृतिको देख जनकजी और कौसल्याको विश्वाससा होगया कि, इनमे राम और सीताके कुछ लक्षण पाये जाते हैं। इतनेमे उस लड़केके लंगोटिया मित्र दौड़कर उसके निकट आये और उससे कहनेलगे कि, अपने आश्रममें 'अश्व' नामका एक विलक्षण पशु आया है सो चल हम तुझे उसे दिखलाते है।ऐसा कहकर वह उसे उधर ले गये।आगे उसके उस अश्वको पकड़कर बांध रखनेके कारण अश्वरक्षकलोगोंने उसपर आक्रमण किया। पर रामके दिव्यास्त्र उसे आजन्मतः प्राप्त होनेके कारण उसने अकेलेही सब सैन्यको पराजित किया, उस संवादको सुन कुमार चंद्रकेतु उससे युद्ध करनेके लिये आया। यह सब घटना रामके शंबूकको मार दंडकारण्यसे लौट आनेके पूर्व्वही हुई। फिर रामने वहां पहुंचतेही दोनोको युद्ध बद करनेकी आज्ञा दे अपने समीप उपस्थित होनेकी आज्ञा दी। चन्द्रकेतुने लवकी बहुत प्रशंसा की और रामायणकथाके यह प्रधान पुरुष हैं यह ज्ञात होतेही लवनेभी रामको प्रणाम किया। आगे कुशभी वहां आया और अनेककारण ऐसे उपस्थित हुए कि, जिनके योगसे रामने अपने दोन पुत्रोंको पहिचानलिया, अंतमे वाल्मीकि ऋषिकी आज्ञानुसार लक्ष्मणने गंगाके तटपर बड़ा भारी समाज एकत्र बैठ सके ऐसी रंगभूमि प्रस्तुत की और वहांपर उक्त कवि प्रणीत छोटासा नाटक अप्सराओंद्वारा अभिनीत किया गया।सब लोगोंके समीप इस नाटकके अभिनीत करानेमें उक्त मुनिका अभिप्राय यह था कि, सीताको वनमें परित्यक्त करनेके पश्चात् जो जो घटनाएँ हुई सो सबपर विदित होजायँ। तदनुसार सीताने अपना शरीर गंगामे विसर्जित किया, उन्हें दो पुत्र हुए, अनंतर गंगा और

पृथ्वीने उनकी रक्षा कर दोनों पुत्रोंको क्षात्र संस्कार करानेके लिये वाल्मीकिके आधीन किया इत्यादि समस्त घटनाएँ उक्त दृश्यकाव्यद्वारा सब लोगोंको प्रत्यक्षसी करादी गयीं। अंतमें इस उपनाटककी सीताने पृथ्वीके गर्भमें स्थानप्राप्तिकी प्रार्थना की और उसमें वह समागयीं। अनंतर सब पडदेके भीतर गयीं। परंतु शीघ्रही सब प्रेक्षकोंके समीप सच्ची सीता, गंगा और पृथ्वी यह तीनों गंगासे निकलीं, उक्त प्रकारसे सबके सामने सीताकी शुद्धता प्रमाणित होजानेपर रामने पुनः उनका अंगीकार किया। और अंतमें वाल्मीकि मुनिने सबको आशीर्वाद दिया है।

उक्त संविधानकमें प्रधानतः दो बातें कुछ हेरफेर कर लिखी गयी हैं। एक यह कि, मूलकथामें यह बात वर्णित है कि, लवकुशने राम लक्ष्मणका पराभव किया, पर यहांपर केवल लव और लक्ष्मणके पुत्र चंद्रकेतुकाही युद्ध वर्णित किया गया है। वैसेही दूसरी बात यह कि, राम लक्ष्मण और सीताका अन्त नितांत दुःखके साथ हुआ है पर यहां वह उसके विपरीत प्रदर्शित कियागया है। प्रथम हेरफेर करनेका कारण स्पष्टही है कि,नाटकके नायकादि प्रधानपात्रोंको लघुताके दोषसे बचानेके हेतु वह किया गया है; और दूसरा तो अत्यन्त ही आवश्यक था, क्योंकि दुःखपरिणामी नाटकोंकी–जिन्हे अंग्रेजीमें 'ट्राजेडी' कहते हैं–प्रथा संस्कृतमे बिलकुलही नहीं है और इसप्रकारसे नाटकका अन्त न होना चाहिये ऐसी साहित्यशास्त्रकी स्पष्ट आज्ञा भी है। संविधानकके अपर अंगोंकी रचना भी ऐसी चतुराईसे की है कि, उसकी सहायतासे कवि प्रधान पात्रोंके उदात्तगुण स्पष्टतापूर्वक प्रदर्शित कर सका है। सीता रामको निज प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी तिसपर भी चित्रपटके दर्शनद्वारा भूतपूर्व्व घटनाओंका स्मरण होतेही उनका हृदय अत्यन्त सार्द्र हो प्रेमनिमग्न होगया था पर तो भी दुर्मुखद्वारा जनापवाद कर्णगत होतेही उसे उनने तत्क्षण वज्रकी नाई कठोर करलिया, और वसिष्ठके संदेश तथा अपनी कठोर प्रतिज्ञाको अनुसृत कर; गले लपटी हुई निद्रोन्मुख सीताको निपट निर्दयतापूर्व्वक अलगकर, अत्यन्त गद्गदित हो उन्हें उनने

विदा किया ! दूसरे और तीसरे अंकके प्रसंग भी ऐसेही हृदयभेदक हैं । तद्वारा हमारे कविने यह बात स्पष्टकर दिखलायी है कि, महाशय पुरुषोंके अन्तःकरण समयविशेषपर ही नहीं किंतु एकही समयमें वज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी मृदु कैसे हो जाते हैं । शंबूकवधकी कथा हमारे कविको अवश्यही लिखनी पड़ी क्योंकि विना कारण राजकाज छोड़ दंडकारण्यमें आनेकेलिये रामको कोई निमित्तही न था । वह काम रामकी सदयताका जैसाही घोर विरोधी है वैसाही रंगस्थलपर उसका खेलाजाना भी अशप्रस्त जान पड़ता है। एतावता थोड़ेसेमें ही कविने उस कथाको शेषकर शंबूकको दिव्यपुरुषके रूपमें शीघ्रही रंगभूमिपर उपस्थित किया है । तीसरे अंकमें तो करुणारस मानो साक्षात् अवतीर्णही हुआ है । दंडकारण्यकी वनश्रीको देख रामका मन करुणार्द्र हो गया, और वह स्थान चिरकालके अनंतर पुनः आलोकपथमें आनेके कारण जो जो पदार्थ दृष्टिगत होता वह सब भूतपूर्व्व घटनाओंका स्मारक हो सीताविरहके दु.खको अधिकतर जागृत करता । उसी समय सीताकी सखी वनदेवी वासंतीकी भेट होगई है । पर इस अंकके संविधानकमें कविने इससे भी अधिक चमत्कृतिजनक एक बात बड़ी चतुराईसे लिखी है । उसने इसके करुणारसको विशेषरूपसे अनुकूलता प्रदान की है। वह सीताकी अदृश्यता है । घोर काननमे जिसकी अवस्थाका बोध न होनेके कारण रामके हृदयमें दुःखकी तरंगें उठती हैं; स्वयं उसीके सामने उपस्थित होते उन्हें उसका ज्ञान न होना, और उसीका परिचित हस्तस्पर्श होनेके पश्चात् रामकी बातचीत सुन उन्हें उन्माद होनेका वासंतीको संदेह होना और रामका भी उसे व्यर्थ भ्रम मानना, आदि बाते नितांत हृदयद्रावक हैं, इसके सिवाय यह बाते ऐसी हैं कि, इनके योगसे सीतापरित्यागविषयक रामकी कठोरता अत्यंत विस्मृत हो जाती है । चौथे अंकके स्थलके लिये वाल्मीकि मुनिके आश्रमकी योजना अनेक कारणोंसे बहुतही समीचीन एवं समर्पक हुई है । राम और सीता दोनों बाल्यावस्थासे असामान्य गुणसंपन्न होनेपर भी उन्हें कदापि सुखका लेशमात्र न प्राप्त हुआ, और

उनका अंत और भी भयावना हुआ, यह देख कौशल्या और जनकको पराकाष्ठाका खेद हुआ उसके योगसे उनकी चित्तवृत्ति उदास एवं विरक्त हो गयी, उस समयकी उनकी उक्तियोका पाठक वा दर्शकोके चित्तपर स्थलौचित्यकी सहायतासे विशेष संस्कार करानेकेलिये ऋषिके आश्रमको छोड़ योग्य स्थान दूसरा और कहां मिल सकता है ? वैसेही इस असार-संसारके अनेकानेक दुःखोंको भोग, सशोक एवं चिताव्यथित हो शेष दिनोंको काटनेके हेतु एक ओर बैठा हुआ वृद्धसमुदाय, और आश्रमके दूसरे ओर अनाध्यायके कारण निश्चित हो स्वच्छंदतापूर्व्वक बालक्रीड़ामें निमग्नहुए वहांके बटुगणोका समूह, ये दोनों बातें एकके उपरांत दूसरी उल्लिखित होनेके कारण परस्परको नितांत शोभामद हुई हैं। क्योंकि संसारकी उक्त दोनों अवस्थाएँ परस्परसे नितांत विभिन्न होनेके कारण ऐसे स्थानपर उनका भेद अत्यन्त स्पष्टरूपसे दृष्टिगत हो विशेष शोभाको प्राप्त होता है। आगे सीताके विषयमे निराशहुए जनक और कौशल्याने जब लवको देखा तो उन्हे यह शंका हुई कि, स्यात् यह सीताका पुत्र हो आदि वृत्तांत; लवके लंगोटिया मित्रोंका कियाहुआ कौतूहलजनक घोड़ेका वर्णन, राजपुरुषोंके धमकानेपर अपर बटुगण और उस क्षत्रियकुलभूषणमे तत्क्षण दृग्गोचर होनेवाला अंतर, यह सब बातें बड़ी चतुराईसे लिखी जानेके कारण वे इस अंकको विशेष शोभामद हुई हैं। अस्तु, अगले तीन अंकोंका सविशेष वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, हमारे चतुर पाठकोको उनके विषयमें तर्कना करनेके लिये उक्त संविधानकही अलम् होगा।

'उत्तररामचरित' करुणरसप्रधान नाटक मानाजाता है। पहिले अंकमे करुणरस कहीं संभोग शृंगार और कहीं विप्रलंभ शृंगारमे मिला हुआ पाया जाताहै। दूसरे अंकमें पुनः विप्रलभ शृंगारमें मिल वहां उसका आरंभमात्र हुआसा देख पड़ता है। पर अगले अंकमे वह पूर्णरूपसे उपलब्ध होताहै। चौथेमें जनक और कौसल्या, तथा दूसरेके आदिमे वासंतीके संभाषणमें शुद्ध करुणरस पाया जाता है। पांचवें और सातवेंके

आदिमें उभय योद्धा, कुमार होनेके कारण परस्परके संवादमें वीररस विशेष शोभाप्रद बोध होता है, अंतिम अर्थात् सातवें अंकके आदिमें करुण और अंतमें अद्भुत रस है । कहनेका अभिप्राय यह है कि, इस नाटकमें कविने करुणारसको प्रधानता दे अन्य रसोंको प्रसंगानुरोधसे वा तदाश्रित वर्णित किया है । यहांलो इस नाटककी अंतर रचनाके विषयमे लिखा गया । पर जो कोई इसके पृष्ठ योंही उलटा कर देखेगा उसेभी हमारे कविके भिन्न भिन्न स्थानोंकी चमत्कारजनक प्रयोगविधिका ज्ञान सहजहीमे होजायगा । कही ऋषिका आश्रम, कही वनदेवताओंके रमणीक एवं भव्य वन, कही विद्याधरोंका दिव्यप्रदेश, कही सुरासुरादि सब भूतसृष्टिअधिष्ठित आश्चर्य्यसंपन्न रंगस्थळ, कहीं समरांगण ऐसे नानाप्रकारके चित्रविचित्र स्थानोंकी कल्पना कियेजानेके कारण प्रत्येक अंकका रस पाठकगण और विशेषतः दर्शकलोगोंके चित्तमे विशेष आनंद उपजाता है । वर्त्तमान नाटकमें सृष्टिवर्णनकोभी दूसरे और तीसरे अंकमें हमारे कवि ले आये हैं । उक्त उभय स्थानोंपर दंडकारण्यका जो वर्णन लिखा गया है वह अत्यंत सुन्दर है । उसी प्रकारसे और २ ठौरपरभी जहां कही लेखानुरोधसे वर्णन करना पड़ा है वहां वहांपरभी वह वैसाही परमोत्कृष्ट लिखा गया है । इसके पात्रगण प्रायः वही हैं जो रामायणमे प्रसिद्ध हैं; और इस नाटकमेंभी उनके उदात्तगुणको कविने समुचित संविधानक जोड़कर अधिक व्यक्त किया है । सारांश अनेक उत्तम गुणोंके सम्मेलसे ‘ उत्तररामचरित ’ परम रमणीक हुआ है । उसकी यह रमणिकताही प्रधान कारण है कि, वह सहसा रसिकप्रिय हो आजपर्य्यंत अपर दोनोंकी अपेक्षा भूतपूर्व पंडितोंमें विशेष प्रसिद्ध है । और इस बातमें तनिकभी संदेह नही है कि, उसकी यह समुज्ज्वल ख्याति कालगतिके साथ साथ संतत वृद्धिलाभ करते जायगी और भवभूतिका नाम दिगंतरमें सुप्रसिद्ध हो वह चिरस्थित रहेगा !

उनका अंत और भी भयावना हुआ, यह देख कौशल्या और जनकको पराकाष्ठाका खेद हुआ उसके योगसे उनकी चित्तवृत्ति उदास एवं विरक्त हो गयी, उस समयकी उनकी उक्तियोका पाठक वा दर्शकोके चित्तपर स्थलौचित्यकी सहायतासे विशेष संस्कार करानेकेलिये ऋषिके आश्रमको छोड़ योग्य स्थान दूसरा और कहां मिल सकता है ? वैसेही इस असार-संसारके अनेकानेक दुःखोंको भोग, सशोक एवं चिताव्यथित हो शेष दिनोंको काटनेके हेतु एक ओर बैठा हुआ वृद्धसमुदाय, और आश्रमके दूसरे ओर अनाध्यायके कारण निश्चित हो स्वच्छंदतापूर्व्वक बालक्रीड़ामें निमग्नहुए वहांके बटुगणोंका समूह, ये दोनो बातें एकके उपरांत दूसरी उल्लिखित होनेके कारण परस्परको नितांत शोभाप्रद हुई हैं । क्योंकि संसारकी उक्त दोनो अवस्थाएँ परस्परसे नितांत विभिन्न होनेके कारण ऐसे स्थानपर उनका भेद अत्यन्त स्पष्टरूपसे दृष्टिगत हो विशेष शोभा-को प्राप्त होता है । आगे सीताके विषयमे निराशहुए जनक और कौश-ल्याने जब लवको देखा तो उन्हे यह शंका हुई कि, स्यात् यह सीताका पुत्र हो आदि वृत्तांत; लवके लंगोटिया मित्रोका कियाहुआ कौतूहलज-नक घोड़ेका वर्णन, राजपुरुषोंके धमकानेपर अपर बटुगण और उस क्ष-त्रियकुलभूषणमें तत्क्षण दृग्गोचर होनेवाला अंतर, यह सब बातें बड़ी चतुराईसे लिखी जानेके कारण वे इस अंकको विशेष शोभाप्रद हुई हैं । अस्तु, अगले तीन अंकोंका सविशेष वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, हमारे चतुर पाठकोको उनके विषयमें तर्कना करनेके लिये उक्त संविधानकही अलम् होगा ।

'उत्तररामचरित' करुणरसप्रधान नाटक मानाजाता है । पहिले अंकमे करुणरस कही संभोग शृंगार और कही विप्रलंभ शृंगारमे मिला हुआ पाया जाताहै । दूसरे अंकमें पुनः विप्रलंभ शृंगारमें मिल वहां उसका आरंभमात्र हुआसा देख पड़ता है । पर अगले अंकमें वह पूर्ण-रूपसे उपलब्ध होताहै। चौथेमें जनक और कौसल्या, तथा दूसरेके आदिमे वासंतीके संभाषणमें शुद्ध करुणरस पाया जाता है । पांचवें और सातवेंके

आदिमें उभय योद्धा, कुमार होनेके कारण परस्परके संवादमें वीररस विशेष शोभाप्रद बोध होता है; अंतिम अर्थात् सातवें अंकके आदिमें करुण और अंतमें अद्भुत रस है । कहनेका अभिप्राय यह है कि, इस नाटकमें कविने करुणारसको प्रधानता दे अन्य रसोंको प्रसंगानुरोधसे वा तदाश्रित वर्णित किया है । यहांलो इस नाटककी अंतर रचनाके विषयमें लिखा गया । पर जो कोई इसके पृष्ठ योंही उलटा कर देखेगा उसेभी हमारे कविके भिन्न भिन्न स्थानोंकी चमत्कारजनक प्रयोगविधिका ज्ञान सहजहीमे होजायगा । कहीं ऋषिका आश्रम, कहीं वनदेवताओंके रमणीक एवं भव्य वन, कहीं विद्याधरोंका दिव्यप्रदेश, कहीं सुरासुरादि सब भूतसृष्टिअधिष्ठित आश्चर्य्यसंपन्न रंगस्थल, कहीं समरांगण ऐसे नानाप्रकारके चित्रविचित्र स्थानोंकी कल्पना कियेजानेके कारण प्रत्येक अंकका रस पाठकगण और विशेषतः दर्शकलोगोंके चित्तमे विशेष आनंद उपजाता है । वर्त्तमान नाटकमें सृष्टिवर्णनकोभी दूसरे और तीसरे अंकमें हमारे कवि ले आये हैं । उक्त उभय स्थानोंपर दंडकारण्यका जो वर्णन लिखा गया है वह अत्यंत सुन्दर है । उसी प्रकारसे और २ ठौरपरभी जहां कहीं लेखानुरोधसे वर्णन करना पड़ा है वहां वहांपरभी वह वैसाही परमोत्कृष्ट लिखा गया है । इसके पात्रगण प्रायः वही हैं जो रामायणमे प्रसिद्ध हैं; और इस नाटकमेंभी उनके उदात्तगुणको कविने समुचित संविधानक जोड़कर अधिक व्यक्त किया है । सारांश अनेक उत्तम गुणोंके सम्मेलसे 'उत्तररामचरित' परम रमणीक हुआ है । उसकी यह रमणीकताही प्रधान कारण है कि, वह सहसा रसिकप्रिय हो आजपर्य्यंत अपर दोनोंकी अपेक्षा भूतपूर्व पंडितोंमे विशेष प्रसिद्ध है । और इस बातमें तनिकभी संदेह नही है कि, उसकी यह समुज्ज्वल ख्याति कालगतिके साथ साथ संतत वृद्धिलाभ करते जायगी और भवभूतिका नाम दिगंतरमें सुप्रसिद्ध हो वह चिरस्थित रहेगा !

यहांलों भवभूतिके सब ग्रन्थोंके विषयमे अर्थात्–उसके तीनो नाटकोंके विषयमें आलोचना की गयी । अब उनमे स्थूलतया जो विशेषता देखपड़ती है उसका पहिले वर्णन कर तत्पश्चात् उसके कवित्वगुणका समासवर्णन करेंगे । भवभूतिके नाटकोमे संविधानकके संबंधसे प्रथम तो यह विशेषता लक्षित होती है कि, उसका विष्कंभक बहुत सरल रहता है । उसके प्रथम नांदी अर्थात् मंगलाचरणको ही न देखिये । अपर सब नाटकोंमें इसके संबंधसे यही बात पायी जाती है कि, इसे पूर्णरूपसे सजानेकेलिये कोई बात उठा नहीं रक्खीजाती अर्थात् शिखरिणी स्रग्धरादि दीर्घ वृत्तोंमेंसे किसी एकका प्रयोग कर अर्थ और पदोकी रचना बड़ी चतुराईसे की जाती है । किसी २ नाटकमे एक पद्यसे अभीष्ट सिद्ध न होनेके कारण अधिक पद्यभी लिखेहुए पाये जाते हैं । इस बातके उदाहरणस्वरूपमें 'वेणीसंहार' का नामेल्लेख किया जा सकता है; इस नाटकमे मंगलाचरण छः सात पद्योंमे शेष किया गया है । इसके योगसे प्रेक्षकजनोके कुतूहलका विघात होताहै, एतावता 'काव्यप्रकाश' नामक सुप्रसिद्ध साहित्यग्रंथमें यह दूषित निश्चित किया गया है । पर भवभूतिके 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित' इन दोनो नाटकोंके आदिकी नांदी अत्यंत सुबोध हैं और उनका छंदभी अनुष्टुप् है । अब यह बात सच है कि, 'मालती माधव' की नांदी तीन दीर्घवृत्तोंमे शेष की गयी है और उसमें अर्थभी चमत्कृतिजनक एवं प्रौढ़ लाया गया है; पर हम समझते हैं कि, भवभूतिने प्रसङ्गविशेषानुरोध वा नाटक खेलनेवाली मंडलीके अनुरोधसे वैसा किया हो । अपर सब नाटकोंमें पहिले पात्रोको रङ्गभूमिपर लानेके लिये कविगणोकी यह युक्ति पायी जाती है कि, सूत्रधार और नटी वा पारिपार्श्वकके संवादोंका प्रथमतः प्रवेश करनेवाले पात्रोंके साथ कुछ न कुछ संबंध जोड़ दियाजाता है । कई नाटकोंमें यह व्यवस्था प्रत्यक्ष नहीं रहती, पर श्लिष्ट पदोंके प्रयोगद्वारा उसका आभासमात्र होनेकी तजवीज की हुई लक्षित होती है । पर भवभूतिके नाटकोंमें यह बातभी नहीं पायी जाती । विष्कंभक और प्रथमगर्भांक

ये दोनो बिलकुल विलग रहते है। विष्कंभकमे सूत्रधार नांदीका वर्णन कर अगले संविधानकका दिग्दर्शन करता है। और पहिले आनेवाले पात्रोकी प्रेक्षकोंको सूचना देता है। अनंतर पात्रगण आ खेलका प्रारंभ करते हैं। अपर नाटकोंमेंभी कविका वर्णन आदिमही कियाहुआ पाया जाता है, पर इन दोनोमे एक बड़ाभारी अंतर दृष्टिगत होता है। भवभूतिके नाटकोंका सूत्रधार अपनी बाह्यताकी अतपर्य्यंत * रक्षा करता है; पर इस दूसरे नाटकमे वह बात नही दीखपडती, क्योंकि वह उसे तुरंतही भूलजाता है, और प्रथमतः प्रविष्ट होनेवाले पात्रोंसे मैं परिचित हूं ऐसा प्रदर्शित करता है। नाटकप्रणयनप्रथानुसार यह बात बड़ी विलक्षण है; पर ऐसा अनुमान होता है कि, इसे दोष मानकर इससे अपने नाटकोको बचानेकेलिये हमारे कविने विष्कभकको विशेष चमत्कृतिजनक करनेकेलिये अपनी चतुराई यत्किचित्भी खर्च नही की। और इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि, उक्त विपरितता यद्यपि यथार्थमें दोषरूप है तथापि बड़े बड़े नामी कविगणोनेभी ‡ अपने पाठक वा श्रोतागणों-

---

* यहा पर कोई कदाचित् यह आक्षेप करेंगे कि, सूत्रधारके इस बाह्यताकी 'उत्तररामचरितमें' निष्क्रातिपर्य्यंत रक्षा नहीं की गयी है, क्योंकि उसकी नटके साथ सीताके जनापवादके विषयमें बातचीत होनेपर वे दोनों रामकी ओर चले गये हैं। पर किंचित् विचाराश्र करनेपर यह बात ध्यानमें आती है कि, उस नाटकमें सूत्रधारकी सूत्रधारकता 'एषोऽहं कार्य्यवशादायोध्यिकस्तदानींतनश्च संवृत्तः' (देखिये मैं आजके अभिनयार्थ अयोध्यावासी एव तत्कालीन बनाहू) ऐसा कहते ही चली गयी; इसके अनतरका उसका नटोंके साथका संवाद रंगस्थ अपर पात्रोंकेसाही जानना चाहिये। नाटककी कथा प्रारंभ करनेका यह ढग बहुतही बढिया है, सो प्रसगवशात् अपने रसज्ञ पाठकोंको सूचित किये विना हमसे न रहागया।

‡ नाटकोंकी चर्चा करतीवार सामान्यार्थबोधक 'कवि' शब्द व्यवहृत करने का कारण यह है कि, उक्त प्रकार अन्यदेशीय कवि होमर और मिलटनके महाकाव्य के आदिमें पाया जाता है। उक्त दोनों कवियोंने स्वानुकूलताके हेतु कवित्व देवताकी प्रार्थना करतीवारही सहसा काव्यके कथानकका आरंभ करदिया है। ऐसा करनेमें यही खूबी है कि, जैसे अनंत जलराशि समुद्रमें, नदीमुखद्वारा प्रवेश होता है वैसे ही पाठकोंको हो, उन्हें यह विस्मय हो कि, हम मुख्य कथानकमें कैसे आपहुंचे।

के चित्तमे चमत्कार भासित करानेके हेतु उन्हें अपने काव्योंमें आश्रय प्रदान किया है, एतावता इस बातके कहनेमें कोई अनौचित्य नहीं बोध होता कि, चाहिये वह उसका प्रयोग सुखेन करसक्ता है; पर जब एकही युक्ति अनेक व्यक्तियोंद्वारा अनेक प्रकारसे प्रयुक्त होजाती है तब उसमें अणुमात्रभी रस नही रहता; और यदि श्लेष साधनार्थ यत्नकर भवभूति विष्कंभकको वैसा चमत्कारोत्पादक करही देता तोभी वह भूतपूर्व्व कवि· गणोंके अनुकरणकी नांईही दीखपड़ता। हम यह समझते हैं कि, इन्हीं दोनों कारणोंको विचार भवभूतिने अपने नाटकोंके विष्कंभककी ऐसी अकृत्रिम रचना की है; और यही आद्य प्रथा होगी ऐसा स्पष्ट बोध होता है। अँगरेजीके नाटकोमें मंगलाचरण, विष्कंभकादिकी प्रथा न होनेके कारण सहसा नाटक आरंभ किया जाता है और रङ्गभूमिपर आनेवाले पात्रोंके बोधार्थ एक हस्तपत्रके अतिरिक्त अपरसाधन नहीं रहता, उनके यहां यह प्रथा अलबत्ते पायी जाती है कि, आदि और अंतमें श्रोतागणो-को संबोधन दे सूत्रधार संभाषण करता है,पर इन संभाषणों और संस्कृ-त नाटकके विष्कंभक और भरतवाक्योमे (चर्चरीमें) बहुतही अंतर लक्षित होता है। नाटकाभिनयका आरंभ और अंत एक साथही किया जाय तो अच्छा नहीं दीखपडता, सो न दीखपडे; और श्रोतृगणोंके चित्त अगले नाटककी ओर संलग्न हों; वा नाटक शेष होजानेपर बहु-मानपूर्व्वक सधन्यवाद वे विसर्जित कियेजायँ; इसी अभिप्रायसे अंगरेज नाटकप्रणेतृगण उक्त भाषणोंको नाटकोंमें जोड़देते हैं, यही कारण है कि, उनके यह पुछल्ले उनसे बिलग रहते हैं, और कधी कधी तो ऐसा भी होता है कि, नाटकप्रणेता उन्हें किसी विख्यात कविसेभी लिखा लेते हैं। तात्पर्य्य विष्कंभकरचनाके विषयमें भवभूतिका अपर नाटक कर्ताओंकी अपेक्षा यद्यपि तृतीयपंथ दृष्टिगत होता है, तथापि यही बात निर्द्धारित होती है कि, वास्तवमें उसीकी प्रथा यथार्थ और आद्य है। इसके सिवाय हमारा एक यहभी विचार है कि जिस शिल्पीको निज

शिल्पके विषयमें यह दृढ़ विश्वास है कि, मेरे बनायेहुए मंदिरके जिस जिस भागको लोग देखेंगे उसकी ओर वे निहारतेही रहेंगे, वह द्वारपर वृत्तखंड मेहराब बनानेकेलियेही अपनी आधेसे अधिक शिल्पपटुता क्यों व्यय करदेगा ?

भवभूतिके नाटकोंके विषयमें ध्यानमे रखने योग्य दूसरी बात यह है कि, वे तीनों परमोत्कृष्ट होनेपर भी एकसे नही, है तीनोंके रस भिन्न भिन्न हैं और तदनुसार उनकी रचनाभी एक दूसरीसे निराली है। इसके सविसेष उल्लिखित करनेका कारण यही है कि, यह बात अपर नाटक रचयितागणोंके नाटकोंमेंसे किसीके नाटकमें दृग्गोचर नहीं होती। स्वयं कालिदासके विषयमें ही विचारांश कीजिये। कवि और नाटकप्रणेताओंके विसदृश गुण एकही व्यक्तिमें पूर्णरूपसे एकत्रित हुए हों ऐसा उदाहरण कालिदासके व्यतिरेक कदाचित् किसी भी देश वा कालमें उपलब्ध न होगा, तौ भी उसके तीनों नाटकोंकी परस्परमे यदि तुलना की जाय तो यह बात एक सामान्य पाठकको भी ज्ञात हो जायगी कि, पहिलेमें जो रंग ढंग है सो दूसरेमे नही है, और जो दूसरेमें है सो तीसरेमे नही है। इसके सिवाय रसके विषय आदिमें भी भवभूतिके नाटक परस्परमें जैसे विभिन्न हैं वैसे वे नही हैं। दूसरा उदाहरण श्रीहर्षका लीजिये। इसका पहिला नाटक 'रत्नावली' संविधानकचातुर्य्य, पदलालित्य और श्लेषादि गुणोंके योगसे रमणीक होगया है, पर उसीका दूसरा नाटक 'नागानंद' वैसा उपयुक्त न होनेकेकारण सामान्य नाटकोंमें परिणत किया जाता है। उसकी इस अवस्थाका कारण यह है कि, उसके कई स्थानों पर पहिले नाटकसे अत्यंत सदृशता पायी जाती है। इसी प्रकारसे और भी कवि उदाहृत किये जा सकते–पर अब ऐसा करना व्यर्थ है ? अनंत कालके उदरमें लीन होजानेके कारण कहो, वा दूसरे कारणके योगसे कहो, संस्कृत कवियोंके ग्रंथोका अनुसंधान किया जानेपर प्रायः यह बात पायी जाती है कि, काव्यके योगसे जिनकी ख्याति चली आ रही है उनके नाम नाटक लेखकोंकी श्रेणीमें नही पाये जाते;और बहुतेरोंने यद्यपि

अनेक उत्तम २ नाटक प्रणीत किये हैं तथापि उनके नामसे एक नाटक से अधिक ग्रंथही प्रसिद्ध नहीं है। भारवि, माघ, बाण, * मयूर, पंडितराजजगन्नाथ यह लोग पहिले प्रकारके हैं और दूसरे प्रकारमें शूद्रक (मृच्छकटिक), विशाखदत्त (मुद्राराक्षस), नारायणभट्ट (वेणीसंहार), कृष्णमिश्र (प्रबोधचंद्रोदय), रामभद्र दीक्षित (जानकीपरिणय) आदि हैं। उक्त दोनों प्रकारके ग्रंथ आजपर्य्यंत जिनके प्रसिद्ध हैं ऐसे कवि कालिदासके अतिरिक्त केवल दोही जानपड़ते हैं। एक तो श्रीहर्ष कि, जिसके नामसे पूर्वोक्त दो नाटकोंके सिवाय, अतिशयोक्तिरूप वर्णनादि दोष और मृदुतातिशयगुणसंयुक्त 'नैषध' नामक विख्यात काव्य प्रसिद्ध है; और दूसरा 'गीतगोविंद' और 'प्रसन्नराघव नाटक' का कर्त्ता जयदेव। सारांश उत्कृष्ट होकर परस्परमें अत्यंत विसदृश और एकसे अधिक ऐसे नाटक एकमात्र भवभूतिकेही पायेजाते हैं।

उक्त विसदृशताविषयक उल्लेख जैसाही सामान्यतः नाटककी रचनाके संबंधसे कियाजाता है वैसाही वह उसकी प्रत्येक उक्तिके विषयमें भी प्रायः किया जा सकता है; अर्थात् एक स्थानपर जो विचार प्रदर्शित किया गया है वही आगे अन्य स्थानपर प्रदर्शित किया हुआ भवभूतिके नाटकमें बहुधा नहीं पाया जाता। कालिदासके काव्य जिसने किंचित् ध्यानपूर्वक संपूर्ण पढ़े होंगे उसके चित्तमें यह बात अवश्यही आगयी होगी कि, उस कविके अनेक विचार अनेक ठौरपर बिलकुल

* बाण कविके नामसे प्रसिद्ध 'पार्वतीपरिणय' नामका एक नाटक हमारे देखनेमें औरभी आया है। यह नाटक उस भुवनविख्यात कविप्रणीत है वा किसी अन्यका लिखा हुआ है इसका निश्चय करना कोई कठिन बात नहीं है। क्योंकि जो इस नाटकके एकही अंकको पढेगा उसे ग्रंथकर्ताके साहस और अप्रयोजकताको देख बड़ा अचरज जानपड़ेगा। इस ग्रंथमेंसे बाण कविके नाम और कुमारसंभवसे चोराईहुई एक घटनाको ऋण करदेनेपर ग्रंथकर्ताकी मूर्खता और साहसकी सीमामात्र शेष रह जाता है।

एकसे वा थोड़े हेर फेरके साथ प्रदर्शित किये हुए उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ अगले श्लोकः देखियेगा–

प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याःस्वप्ने समागमः ।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥

शकुंतला २

वही पुनः

हृदयमिषुभिः कामस्यांतःसशल्यमिदं ततः
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् ।
न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियां समवाप्य तां
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति ॥

विक्रमोर्वशी २

उक्त श्लोकके उत्तरार्द्धका आशय पुनः मेघदूतमे भी वर्णित किया गया है ।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥

उत्तरमेघ ।

इस प्रकारके उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं।अभिप्राय यह है कि, उक्तकेसी अर्थकी एकता भवभूतिके ग्रंथोमे नही पायी जाती;तात्पर्य्य उसकी उक्तियां भिन्न २ एवं नूतन प्रकारकी पायी जाती हैं। इसके सिवाय उनके विषयमें यहां इस बातका उल्लेख अत्यन्त समुचित जान पड़ता है कि,भव-

भूतिके विचार संतत निजके ही पाये जाते है अन्य काव्यग्रंथोंका उन्हें यत्किंचित् भी आधार नही रहता। *

यहांलों भवभूतिके नाटकोंके विषयमे बाह्यतः और अपर कवियोंके संबंधसे आलोचना की गयी। अब उन्हींके विषयमें अर्थात् उनके गुणोंके विषयमें विचार करते हैं। पीछे कालिदासकी कविता और उसकी पदरचनाके विषयमें लिखतीबार हम यह लिख आये हैं कि, उसके सामान्य गुण अत्यंत मधुरता और कोमलता हैं। इन गुणोंका साधन भवभूतिने भी समय विशेषपर अर्थात् शृंगार और करुणारसके विषयमें लिखतीबार किया है, पर इस कविके लिखनेकी शैली अपने ढंगकी कुछ विलक्षणही है। यह शैली भवभूतिके नाटकोंमें क्या गद्य और क्या पद्य सर्वत्र पायी जाती है। संवाद उदात्त एवं गंभीर वा सामान्य विनोदका ही क्यों न हो पर उसमे इस गुणकी ऊनता कही भी लक्षित नही होती। जहां जहां वीर रस लाया गया है वहां तो।

धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् §

श्लोकपादमें वर्णित कुशकी वीरताके अनुसारही शब्दोंकी रचना

---

* पीछे कलिदासके समानार्थक तीन श्लोक लिखे गये हैं, उन्हींकैसा भवभूतिकाभी श्लोक नीचे लिखा जाता है:-

-वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्पपूर-
स्तत्सकल्पोपहितजडिमस्तंभमभ्येति गात्रम्।
सद्यःस्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलाङ्गुलीकः
पाणिर्लेखाविधिषु नितरां वर्त्तते किं करोमि॥

मालतीमाधव १

इस श्लोकको उक्त श्लोकोका आधार है या नहीं इस बातका निश्चय करना असंभव है। संप्रति इतनाही सूचित करना आलम होगा कि, यह भलेही मानलिया जाय कि, इस श्लोकको पिछले श्लोकका आधार है, पर तो भी हमे भरोसा है कि, जब कि, उसी उक्तिको उक्त श्लोकमे इतनी स्पष्टताके साथ व्यक्तकर गुरुकी अपेक्षा शिष्यने अधिक प्रशंसा प्राप्त की है तब ऊपर मूलग्रंथमें भवभूतिके विषयमे जो उल्लेख किया गया है उसमे किसी प्रकारकी बाधा नहीं उपस्थित हो सकती।

§ इसकी (कुशकी) धीरोंकैसी चाल मानो धरतीको नमाये दे रही है।

भी बहुतही अनुकूल है ! और उक्त चरणही भवभूतिकी पदरचनाका एक उदाहरण है।

भवभूतिने अपने नाटकोंमें भिन्न भिन्न प्रसंगोपर भिन्न २ रसोंका परिपाक उतार दिया है। उनमेंसे प्रथम शृंगारके विषयमें विचार किया जाता है। यह रस उक्त तीनो नाटककोंमें से प्रधानतया 'मालतीमाधव' मेही विशेषरूपसे पाया जाता है; और 'महावीरचरित'में वह योंही कहीं कहीं झलकता है, और 'उत्तररामचरित'में वह शुद्धरूपसे नही पाया जाता किंतु करुणारसमिश्रित पाया जाता है। अतः हमारे कवि उसे कहांलों प्रतपादित करसके हैं सो पूर्णतया देखनेकी यदि इच्छा हो तो उसे 'मालतीमाधव'मे ही देखना चाहिये। पीछे इस नाटकके विषयमें लिखती बार हम जो लिख आये हैं उसकी हमारे सचेत पाठकोंको बहुधाविस्मृति न हुई होगी; वही बात यहां किंचिव् सविस्तर लिखी जाती हैं। भवभूतिके नाटकोमें शृंगारका जो ढंग पाया जाता है वह किसी नाटक वा काव्यमे प्रायः नही पाया जाता। अपने कालिदासादि कवियोंको कविचूडामणि मान योरोपके कई पंडितोने उन्हें सहसा कीर्त्तिमंदिरके उच्चतम शिखरपर अटलरूपसे स्थित करदिया है, सो जिन अंगरेज ग्रंथ कर्त्ताओंको यह बात नही भाती वे समान्यतः संस्कृतकविताको यह दोष लगाते हैं कि, उसके शृंगारका उद्भव शुद्ध प्रेम रससे तादृश नही पाया ज्ञाता किंतु बहुतांशमें वह कामवासनासेही पाया जाता है। यह कथन हठवादियोके मतानुसार अर्थात् अंशतः मात्र यथार्थ है। संस्कृत कविताका आद्य शुद्ध स्वरूप जब भ्रष्ट होनेलगा तबके बहुतेरे काव्योमे और अब इधर जिनकी प्रवृत्ति विशेषरूपसे पायी जाती है वे बीभत्स भाणादि * अलबत्ते उक्त दोषसे दूषित हो सकते हैं।

पर इतनेही के कारण समस्त संस्कृतकविताको दूषित करना किस प्रकार युक्तिसंगत हो सकता है इसका विचार करना हम अपने विवेकी पाठकोंपरही समर्पित करते हैं ! भला यदि यही एक बात होती कि,

* भाण नामक नाटकका एक भेद है। उसमें पात्र एकही रहता है। वही उसका नायक माना जाता है। यह नायक कुछ आत्मगत और कुछ अन्योंको संबोधन दे कहता है। 'वसंततिलक' 'मुकुदानंद' प्रभृति लोगोंमें विशेष प्रसिद्ध है।

उक्त दोष अकेली संस्कृतकवितामे ही पाया जाता है तो भी कुछ कहना न था पर क्या उक्त दोष ग्रीक और रोमन लोगोंकी कवितामे नही पाया जाता ? अथवा इतने दूर जानेकी भी कोई आवश्यकता नही है। क्या यह कोई कह सकता है कि, अंगरेजी भाषाका रससर्वस्व जिसमें एकत्रित किया गया है वह शेक्सपियर कविकी कविता उक्त दोषसे सर्वथा मुक्त है ? यदि यह बात ऐसीही होती, तो कुटुंबके लोगोंके– अर्थात् पुरुष, स्त्री, लड़के आदि सबके एकत्र पढ़नेके योग्य उस कविकी संक्षिप्त आवृत्ति अलग अलग क्यों निकलती हैं ? अस्तु; संप्रति वर्त्तमान विषयके संबंधसे हमे इतनाही कहनाहै कि, पूर्व्वदेशीय अर्थात् फारसी, संस्कृत इत्यादि भाषाओंके कवियोंके काव्य और निबंधरहित शृंगार वर्णनका परस्पर नित्य संबंध है यह समझ जो परंपरासे चली आयी है वह सर्वथा सत्यही नही है इस बातका जिसे पूर्णरूप से प्रत्यय लेना हो उसे उचित है कि, वह हमारे भवभूतिके नाटकोंकी पर्यालोचना करे । उसके अवलोकनद्वारा तदंतर्गत शृंगार किस बहारका है, कैसा सुकोमल और प्रौढ़ है आदि बातें सहजही में लक्षित हो सकती हैं ।

शृंगारके कुछ उदाहरण उद्धृत करनेके पूर्व उनके विषयमें पाठकों को यहांपर एक बात सूचित करना अभीष्ट जान पड़ता है । वह यह है कि, पीछे कालिदासके ग्रंथोंसे जैसे वे पृथक्तापूर्व्वक थोडेसे में उद्धृत करते बने वैसे यहांपर उनका लिखा जाना, कई स्थानोंपर असंभव बोध होता है । क्योंकि पिछले उदाहरण प्रायः काव्यके होनेके कारण पूर्वापर संदर्भजन्य स्वारस्य हानि हुए विना वे अलग करते बन गये । पर नाटकोंकी रचना कृत्रिम एवं संविधानकप्रधान रहती है, अतः उसका कहींकाभी भाग पृथक् किया जातेही वह विलग दीख पड़ने लगता है; और यदि वह अलगही किया जाय तो उसके थोड़ेसे अलग करने में काम नही चलता । जैसे सुवर्णका पत्र कितनाही लंबा क्यों न हो पर उसमेंसे यथेष्ट टुकड़ा अलग करालिया जासकता है; पर वैसा टुकड़ा कीसी परमोत्कृष्ट मूर्ति वा चित्रमेंसे पृथक् नहीं किया जा सकता । एतावता भवभूतिकी भणि-

तके रसका जिन्हे अनुभव लेना हो उन्हे समुचित है कि, वे उसके तीनो नाटकोके उत्कृष्ट स्थलोको जो पीछे उल्लिखित होचुके हैं, ध्यानपूर्व्वक देखे—सारांश उन्हें उन नाटकोको आद्योपांत विचारना चाहिये । पर ऐसा करनेका जिन्हें अवकाश नही है, वा जिन्हे अवसर तो प्राप्त है पर ग्रंथोके गुणोकी यथावत् आलोचना करनेके योग्य जिनकी बुद्धिको रसास्वादनपटुता अद्यावधि प्राप्त नही हुई है उन पाठकोके लिये निम्न लिखित संग्रह जैसे बनपड़े किया जाता है ।

मदनोद्यानमे प्रथमतः माधव मालती के दृष्टिपथमे आतेही उसकी शृंगार चेष्टाओके योगसे उसकी (माधवकी) जो अवस्था हुई उसका वह स्वय मकरंदके प्रति वर्णन करता है:—

अत्रांतरे किमपि वाग्विभवाति वृत्त-
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममुत्पलाक्ष्याः ।
तद्भूरिसात्विकविकारमपास्तधैर्य्य-
माचार्य्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥

ततश्च,

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां
मसृणमुकुलितानां प्रांतविस्तारभाजाम् ।
प्रतिनयननिपाते किंचिदाकुंचितानां
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥

तैश्च,

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पंदमंदै-
रधिकविकसदंतर्विस्मयस्मेरतारैः ।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याःकटाक्षै-
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितञ्च ॥

मालती माधव १

वैसेही दूसरे दो प्रसंगोंका वर्णन—

सभ्रूविलासमथसोऽयमितीरयित्वा
सप्रत्यभिज्ञमिव मामवलोक्य तस्याः।
अन्योन्यभावचतुरेण सखीजनेन
मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुराः कटाक्षाः॥
यान्त्या मुहुर्वलितकंधरमाननं तत्
आवृत्तवृंतशतपत्रनिभं वहन्त्या।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या
गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः॥

मालतीकी बनाई हुई माधव की प्रतिकृति कलहंसने जब उसे दी तब मकरंदके अनुरोधवश उसने भी वहां मालतीकी तस्वीर निकाल दी और तुरंतही उसने एक श्लोक बनाकर नीचे लिख दिया—

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः
प्रकृतिमधुराः संत्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचनचंद्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः॥

मालती माधव १

हम नही समझते कि, अपनी हृदयवल्लभाके चित्रफलकपर अत्यंत सरस पद एवं अर्थसंपन्न सुभाषित जिस रसिकको लिखना होगा उसे वह उक्तकी अपेक्षा उत्कृष्ट और कही उपलब्ध हो सकेगा!

मालतीके कामदेवायतनसे सपरिवार प्रस्थित होनेपर उसकी एक सखी (लवंगिका) पुष्प बिननेके व्याजसे माधवके निकट आयी, और उससे बकुलहार मांगने लगी, सो वृत्तांत माधव मकरंदसे कथन करता है—

माधवः—सखे! श्रूयताम् । अथ तस्याः करेणुकारोहणसमय एव महतः सखीकदंबकादन्यतमा वारयोषिद्विलंघ्य बालवकुलकुसुमावचयक्रमेण नेदीयसी भूत्वा प्रणम्य कुसुमापडिव्याजेन मामेवमुक्त वती । " महाभाग सुश्लिष्ट **गुण** तया रमणीय एष वः **सुमनसां** सन्निवेशः कुतूहलिनीच नो भर्त्तृदारिका वर्त्तते तस्यामभिनवो विचित्रः **कुसुमेषु** व्यापारः । तद्भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य फलतु निर्माणरमणीयता **विधातुः** आसादयतु **सरस** एष भर्त्तृदारिकायां कंठावलंबनमहार्घ्यतामिति " । *

मकरंदः—अहो वैदग्ध्यम् !

लवंगिकाको संबोधन दे मकरंदने जो उक्त उक्ति प्रयुक्त की है उसी उक्तिका प्रयोग ऐसा कौन सहृदय पाठक है जो नाटककर्त्ताके विषयमे न करेगा !

उक्त समस्त संग्रह केवल प्रथम अंककेही है, और यह इस नाटकके शृंगारका आरंभमात्र है । पर यहीं जहां अत्यंत पूर्णताको पहुंचा है वहां इस कविकी शृंगारविषयक उक्त विशेषता स्पष्टरूपसे लक्षित होती है । यह अंक आठवां है। इसके स्थल, समय और घटना बहुतही उत्तम प्रयुक्त कीगयी हैं । स्थान वनप्रदेश, समय ऋतुराज वसंतमासकी मध्य रात्रि, और उसी समय चंद्रका उदय, और घटना भी तदनुकूल—नायक नायिका अथ च एक सखी इन्ही तीनोका वहांपर विद्यमान होना । इसके सिवाय उस दिन उत्तरोत्तर जो चमत्कारजनक घटनाएं हुई—अर्थात मदनोद्यानमें जो साक्षात्कार हुआ, बाघके छूटने और कपालकुंडलके मालतीके लेजानेकी भयावनी घटना, वैसेही दोनो अवसर पर प्रदर्शित कियाहुआ माधवका पराक्रम, ग्रामदेवीके देवालयमें कियेहुए विनोदका

* अवतरण चिह्नद्वारा जो वाक्य बद्ध किये गये हैं वे सब श्लिष्ट हैं अर्थात् बकुलहार और माधवके लिये उनके भिन्न २ अर्थ होसकते हैं । ऐसे द्व्यर्थी शब्द ऊपर स्थूलाक्षरोद्वारा प्रदर्शित किये गये है । 'विधातुः' और 'सरसः' शब्दको भी श्लिष्ट माना है यह सबको विलक्षण जान पड़ेगा, पर संवादकी ध्वनिकी ओर किंचित् विशेष ध्यान देनेसे तत्क्षण ज्ञात होताहै कि, उक्त वाक्यकलापमें श्लेषअत पर्य्यंत है ।

वृत्तांत–उस समयके श्रृंगारके उद्दीपनकी यह सब पूरी सामग्री होनेपर भी हमारे कविने अपनी सदातनकी प्रथा परित्यक्त नहीं की। श्रृंगारमे अत्यंत लीन न हो नायिकाको परम भूषणरूप जो शालीनता (लज्जा) सो इस चुटकुलेमे परमोत्कृष्टतापूर्व्वक दिखलायी गई है, और इस नाटकमें उक्त रस यद्यपि इसी स्थानपर पूर्णताको प्राप्त हुआ है तथापि और नाटकोमे वह जिसप्रकारका दीखपड़ताहै उससे यहांकी बात बहुतही भिन्न पायी जाती है। अस्तु, अंतमें उसके विषयमें हम अपने पाठकोंको इतनाही सूचित करना चाहते हैं कि, उक्त सग्रह यहां स्थानसंकोचवश उद्धृत नही हो सकता अतः जिन्हे अपनी इच्छा तृप्त करना हो उन्हे उचित है कि, वे मूलग्रन्थ वा उसके अनुवादका * अवलोकन करे।

पिछले सब संग्रह शुद्ध श्रृंगारके हैं। अब जहां वह रसांतरमिश्रित हुआ है वहांके कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते है।

इस नाटकका वर्णन करतीबार पीछे यह बात लिखही आये है कि, पांचवें अंकमें श्रृंगार उदात्तरूप होकर वीर करुणादि अपर रसोसे संयुक्त हुआ है। अतः अगले पद्योका विचार करनेकेहेतु पाठकोको उस अंकके संविधानकका स्मरण करना परमावश्यक है।

माधवः–महाभागे ! न भेतव्यम्।

मरण समये शंकां त्यक्त्वा प्रतापनिरर्गल-
प्रकटितनिजस्नेहः सोऽयं सखा पुरएव ते।

---

* अवधनिवासी श्रीयुत लाला सीतारामजी बी. ए. (उपनाम भूप) कविने अपनी प्राचीन नाटकमणिमालामे भवभूतिके तीनों नाटकोको हिंदीमे गुम्फित किया है। केवल भाषाजाननेवाले काव्यरसामृतपानपटुलोग इसकेद्वारा भी भवभूतिकी सर्वांग सुंदर अनूठी मूल उक्तिका अनुमानद्वारा आनंदानुभव करसकते है। 'उत्तररामचरित, को पंडित नंदलालजी दुबे बी. ए. ने भी अनुवादित किया है। इनके अनुवादमे यह विशेषता है कि, संस्कृतके श्लोक जिन छंदोमें है उन्हीं छंदोमे उनका भाषानुवाद किया गया है।

सुतनु ! विसृजोत्कंपं संप्रत्यसाविह पाप्मनः
फलमनुभवत्युग्रं पापः प्रतीपविपाकिनः ॥

मालती माधव ५

माधवः (सलज्जम्)

त्वत्पाणिपंकजपरिग्रहपुण्यजन्मा
भूयासमित्यभिनिवेशकदर्थ्यमानः ।
भ्राम्यन्नृमांसपणनाय परेतभूमा-
वाकर्ण्य भीरु ! रुदितानि तवागतोऽस्मि ॥

—दुरात्मन् ! पाषण्ड ! चांडाल !

असारं संसारं परिमुषितरत्नं त्रिभुवनं
निरालोकं लोकं मरणशरणं बांधवजनम् ।
अदर्पं कंदर्पं जननयननिर्माणमफलं
जगज्जीर्णारण्यं कथमसि विधातुं व्यवसितः ॥

चामुंडाको बलिप्रदान करनेकेलिये अघोर घट जब मालती को प्रस्तुत कर रहाथा तब वह बडे दीर्घ स्वरसे चिल्लाती थी । वह आर्त्त-नाद माधवको कर्णगत होतेही श्मशानमे तत्क्षण उसकी जो अवस्था होगयी सो—

माधवः—(साकूतमाकर्ण्य)

नादस्तावद्विकलकुररीकूजितस्निग्धतारः
चित्ताकर्षी परिचित इव श्रोत्रसंवादमेति ।
अंतर्भिन्नं भ्रमति हृदयं विह्वलत्यंगमंगं
देहस्तंभःस्खलति च गतिःकःप्रकारःकिमेतत् ॥

आगे उसके उस घोर प्राणसंकटको स्वयं देख और उसकी विलक्षण रक्षाका विचार कर वह कहता है:-

माधवः-अहो नु खलुभोः। तदेतत्काकतालीयं नाम।

संप्रति हि

राहोश्चंद्रकलामिवाननचरीं दैवात्समासाद्य मे
दस्योरस्य कृपाणपातविषयादाच्छिन्दतःप्रेयसीम्।
आतंकाद्विकलं द्रुतं करुणया विक्षोभितं विस्मयात्
क्रोधेन ज्वलितं मुदा विकसितं चेतः कथं वर्त्तताम्॥

उस अचिन्त्य अवसरपर माधवके मनमें जो नाना प्रकारकी तरंगें सहसा उद्भूत हुई उनका वर्णन उक्त श्लोकोमें कैसा उत्कृष्ट किया गया है! ऐसी घटनाओंकी कल्पना कर उन्हे पाठक वा प्रेक्षकोंके समीप यथावत् उपस्थित करदेनेकेलिये ग्रन्थकर्त्ताको मानवीस्वभावका अर्थात मनुष्यके हृदयस्थ विचारोका पूर्णज्ञान अत्यावश्यक है। उसे भवभूतिने इस स्थानपर इतनी उत्तमताके साथ प्रदर्शित किया है कि, इस नाटककी समालोचना लिखती बार बिल्सन् साहबने लिखा है कि, इस विषय में यह कवि, कलिदाससे भी कही बढ़गया है!

निम्नलिखित पद्य करुणामिश्रित शृंगारका उदाहरण है-

निकामं क्षामांगी सरसकदलीगर्भसुभगा
कलाशेषामूर्त्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी।
अवस्थामापन्ना मदनदहनोद्दाहविधुरा-
मियं नःकल्याणी रमयति मनः कंपयति च॥

मालतीमाधव २

मालतीका विवाह जब नन्दनके साथ निश्चित हो गया और माधवको उसके प्राप्तिकी अणुमात्र भी आशा नही रही तबकी उसकी दुःखोक्ति-

चिरादाशातन्तुस्त्रुटतु नलिनी सूत्रभिदुरो
महानाधिव्याधिर्निरवधिरिदानीम्प्रसरतु।
प्रतिष्ठामव्याजं व्रजतु मयि पारिप्लवधुरा
विधिः स्वास्थ्यं धत्तां भवतु कृतकृत्यश्च मदनः॥

अथवा।

समानप्रेमाणं जनमसुलभं प्रार्थितवतो
विधौ वामारम्भे मम समुचितैषा परिणतिः।
तथाप्यस्मिन्दानश्रवणसमयेऽस्याःप्रविगल-
त्प्रभं प्रातश्चन्द्रद्युतिवदनमन्तर्दहति माम्॥

मालतीमाधव ४

विनोदप्रधान शृंगारका उदाहरण—

लवंगिका।

वयं तथा नाम यदात्थ किंवदा-
म्ययं त्वकस्माद्विकलःकथांतरे।
कदम्बगोलाकृतिमाश्रितः कथं
विशुद्धमुग्धःकुलकन्यकाजनः॥

मालतीमाधव ७

चित्रपटको देख भूतपूर्व्व वृत्तान्तोंका स्मरण हो आनेपर भिन्न भिन्न स्थानोके पूर्व्वानुभूत सुखका राम वर्णन करते हैं—

अलसलुलितमुग्धान्यध्वसञ्जातखेदात्
अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्वलान्यङ्गकानि।
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता॥

उत्तररामचरित १

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥ *

पुष्पकाविमानारूढ़ हो अयोध्याको लौटतीबार रामको सीताके प्रथम अभिज्ञान (पहिंचान) दायक उत्तरीयके मिलने पर उन्हे जो हर्ष हुआ उसका वे वर्णन करते हैं—

दृशोः शरच्छीतकरप्रकाशः
कायेऽपि कर्पूरपरागपूरः।
स्वान्तेऽपि सान्द्रामृतकुम्भसेक-
स्तदा यदासीत्किल दृष्टमात्रम् ॥

महावीरचरित ७

इतने संग्रह बस होंगे।उक्त पद्योके मननद्वारा भवभूतिके शृंगारवर्णनका रूप पाठकोके ध्यानमे आही गया होगा। अब इसी बातके आधारसे भवभूतिकी जीवनयात्राके विषयम जो एक बात अनुमित होती है उसे यहांपर लिखकर इस रसके निरूपणको हम शेष करेंगे। संस्कृतके और कवियोंकी अपेक्षा भवभूतिके शृंगारवर्णनमे जो विशेषता दीख पड़ती है उसका कोई कारण अवश्य ही होगा। इसका प्रधान कारण कविका प्रकृतिजात मनोधर्म तो हैही पर जब कि, मनुष्यका स्वभाव अन्तलों एकसा प्रायः नही रहता किन्तु संसारकी अनेकभांति की घटना-ओके अनुसार न्यूनाधिक होता जाता है ऐसी अवस्थामे उनका विचार

*इस श्लोक के विषयमे पण्डितप्रसिद्ध जो आख्यायिका है सो पिछले "भवभूति" के ७० पृष्ठकी तेरहवी (१३) पंक्तिमें देखिये।

करना परमावश्यक है । भवभूतिके वंशका वर्णन आदिमें दियाही गया है उससे स्पष्ट बोध होता है कि, वह लक्ष्मीकृपापात्र न था ।

आगे उसकी कविताशक्ति प्रकटित हो चारो ओर कीर्ति विस्तृत हो भाग्योदय होता—अर्थात् प्राचीन राजालोगोंके सम्प्रदायानुसार कवित्व गुणपर मोहित हो वा केवल कीर्तिके प्रीत्यर्थही कोई राजा उसे अपने यहां टिकाकर उसकी मानमान्यता बढाता पर अपने कविको जनकीर्ति व राजसत्कार इन दोनोमेसे एकभी प्राप्त नही हुआ सो ऊपर कथित होही चुका है । अथवा उसे उक्त दुःखद अवस्था होनेका कारण वह स्वयं ही हुआ हो इसमेंभी यत्किञ्चित् शका नही जानपडती । अब इधर मात्र इंग्लैण्ड, फ्रान्स और अमेरिकादि ज्ञानसम्पन्न देशोमे गुणवान् मनुष्यको किसीकी ठकुरसुहाती न करते गुणको विशेष शोभा देनेवाली निःस्पृहताका उपयोग लेनेका अवसर हाथ लगा है। क्योकि सर्व्वसाधारणमें ज्ञानका अधिक फैलाव होनेके कारण गुणग्राही जनभी बहुत होगये है, अतः ग्रन्थप्रणेताको उसकी योग्यतानुरूप उक्त लोगोसे ही आश्रय मिलजाता है। पर ऐसी अवस्था आजपर्य्यन्त किसीभी देशमे न थी । यही कारण था कि, जिस किसीको प्रसिद्ध होना होता वह कैसाही गुणी क्यो न हो पर विना लज्जाको तिलाञ्जलि दिये और आत्मश्लाघाकी शरण लिये, वा अपने स्वामियोके मनोधारणार्थ वाग्देवीको नर्त्तकीकी नाई नचाये, निजेष्टलाभार्थ उसे उपायन्तर ही न था। सम्प्रति सारजलोग अधिक होनेके कारण मत्सरादि दुर्गुणोकी उपेक्षा हो गुणकी थोड़ी बहुत परीक्षा होही जाती है, एतावता गुणवान् लोगोकी सहसा अवहेलना नही होने पाती, पर पुराकालमे यह बाते कही कुछ न थीं । तबकी दुःखजनक अवस्थाका वर्णन महर्षि भर्तृहरिजीने आत्मानुभवसे बहुत ही यथार्थ लिखा है:—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ॥

"गुणपरीक्षक मत्सरी हो रहे हैं; राजालोग अभिमानके मारे मर रहे हैं; अपर लोगोंकी बातही क्या ! उन्हें कुछ बोधही नही है; एतावता कवित्वशक्ति उदयको प्राप्त न हो भीतरके भीतरही लुप्त हो जाती है ।" अस्तु; कहनेका अभिप्राय यह है कि, उक्त प्रकारकी अनेक बाधाएं प्राचीन कालमें ग्रन्थकर्त्ताकी प्रसिद्धिके मार्गमे आड़ी आती थी; और जो लोग ठकुरसोहाती न करसकते थे, वा वैसा करनेको जो नीचता एवं अधमता समझते थे, उन्हे निजकृपापात्र बनानेके हेतु उनके निकट जानेके लिये लक्ष्मीको कोई मार्गही न मिलता था। अनुमानसे जाना जाता है कि, भवभूतिकीभी यही अवस्था हुई होगी; क्योंकि उस समय संपूर्ण देश हिंदूराजाओंके अधिकारमेंही होनेके कारण भवभूति जैसे कविचूडामणिकोभी अवकृत कर घर पूछते आयेहुए भाग्यकी कोई उपेक्षा न करता ! पर अपने कविके गंभिर एवं उदार मनको राजाश्रित हो विभवानुभव करनेकी अपेक्षा दरिद्रावस्थामेंही स्वतंत्र रहकर अपनी वाग्देवीको निष्कलंका रखना अधिकतर अभीष्ट होगा ऐसा बोध होता है । उसका यह सुदृढ़ निश्चय निंदकोकी अवज्ञा वा अपने ग्रंथोकी यथेष्ट ख्याति न होनेके कारण आगे कदाचित् वे नष्ट होजायेंगे इस भयसे टुकभी नही हटा; आत्मकवित्वका उसे ऐसा दृढ़ विश्वास था, और उसमें ऐसी विलक्षण मंदता थी कि, अपने कालके लोगोंकी निंदासे हतोत्साह न हो उसने भावी कालपरही दृढ़ भरोसा रक्खा, और भविष्यत्‌में मत्कृति अभिनंदित होगी यह उसने भविष्यकथन किया, यह सब बाते परम आश्चर्य को उपजाती हैं, और साथही इनसे हमारे कविके मनकी अथाह गंभीरता का अनुमान हो सकता है ! सारांश भवभूतिको राजदर्बारका संपर्क कधीभी न होनेके कारण उसके मनकी आद्यावस्थामें कदापि अंतर नहीं पड़ा, और हम समझते हैं यही कारण है कि, उसके शृंगारवर्णनमें ऐसी अपूर्व शुद्धता दृष्टिगत होती है ।

भवभूतिने अपने तीनों नाटकोमें वीररसको पूर्णरूपसे लिखा है और 'महावीरचरित' में तो वह प्रधान ही है । शेष दोनोंमें वह कौन कौनसे

प्रसंगोंपर लाया गया है सोभी पीछे उनके संविधानकोंमे वर्णित होही चुका है। नीचे इस रसके उत्कृष्ट उदाहरण औरभी लिखेजाते हैं:—

जामदग्न्यः--अहो दुरात्मनः क्षत्रियबटोरनात्मज्ञता !

न त्रस्तं यदि नाम भूतकरुणासंतानशांतात्मन-
स्तेन व्यारुजता धनुर्भगवतो देवाद्भवानीपतेः।
तत्पुत्रस्तु मदांधतारकवधाद्विश्वस्य दत्तोत्सवः
स्कंदः स्कंद इव प्रियोऽहमथवा शिष्यः कथं न श्रुतः॥

एष मे प्रशमस्य कर्कशः पारिणामः॥

यत्क्षत्रियेष्वपि पुनः स्थितमाधिपत्यं
तैरेव संप्रति धृतानि पुनर्धनूंषि।
उन्माद्यतां भुजबलेन मयाऽपि तेषा-
मुच्छृंखलानि चरितानि पुनः श्रुतानि॥

महावीरचरित २

—आः क्षत्रियबटो अति नाम प्रगल्भसे।

प्रहर नमतु चापं प्राक्प्रहारप्रियोऽहं
मयि तु कृतनिघाते किं विदध्याः परेण।
धिगिति विततवह्न्युद्गारभास्वत्कुठार-
प्रविघटितकठोरस्कंधबंधः कबंधः॥
—एतस्य राघवशिशोः कृतचापलस्य
लूत्वा शिरो मयि वनाय पुनः प्रयाते।
स्वस्थाश्चिराय रघवो जनकाश्च सन्तु
माभूत् पुनर्वत कथंचिदतिप्रसंगः॥

महावीरचरित २

"महावीरचरित" में आदिसे अंतलों श्रीमद्रामचंद्रजीके पराक्रमकाही वर्णन प्रधान होनके कारण वह प्रायः वीररसमयही हो गया है । अतः उससे जितने श्लोक उद्धृत कियेजायँ उतने थोड़ेही हैं। अब इस वीररसको विशेष शोभादेनेवाला जो एक दूसरा गुण भवभूतिके नाटकांतर्गत संवादोंमे कहीं कहीं पायाजाता है उसका यहां पर उल्लेख किया जाता है। वह यह कि, निम्न लिखित वीरतोचित संवादोंमे उद्दंडता नाम मात्रको नही पायी जाती, बरन् वे विनय और चातुर्य्ययुक्त पाये जाते हैं ॥

वालिरामौ—(अन्योन्यमुद्दिश्य)

कामं त्वया सह श्लाघ्यो वीरगोष्ठीमहोत्सवः।
किं त्विदानीमतिक्रांते त्वय्यवीरा वसुंधरा ॥

महावीरचरित ५

वैसेही

चन्द्रकेतुः—भो भो, कुमार !

अत्यद्भुतादसि गुणातिशयात्प्रियो मे
तस्मात्सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव ।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चंद्रकेतुः ॥

उत्तररामचरित ६.

मालतीके अचित्य प्राणसंकटके समय माधव चामुंडाके मंदिरमें अचानक जब जा पहुंचा तब वह अघोरघटपर कृपाण उठाकर धिक्कारपूर्व्वक सक्रोध उसे कहता है ॥

माधवः—रे रे पाप !

प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाधिगतै-
र्ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत् ।

वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपाक्षिपतः
पततु शिरस्यकांडयमदण्ड इवैष भुजः ॥

मालती माधव ५

वैसेही और थोड़ासा आगे बढ़के,

-----अयि भीरु !

धैर्य्यं निधेहि हृदये हत एष पापः
किं वा कदाचिदपि केनचिदन्वभावि ।
सारंगसंगरविधाविभकुंभकूट-
कुट्टाकपाणिकुलिशस्य हरेः प्रमादः ॥

चन्द्रकेतु और लवकी भेट होनेपर परस्परमें वीरतापूरित वार्त्तालाप हुआ। उस समय लव असूयापूर्व्वक रामचन्द्रजीका उपहास करके कहता है:-

सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्य्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्य्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्यः
तस्मिन् दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः॥

उत्तर रामचरित ५

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्त्तते
सुंदस्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महांतो हि ते ।
यानि त्रीण्यकुतोभयान्यपि पदान्यासन् खरायोधने
यद्वा कौशलमिंद्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥

अब इसके आगे करुणारसके विषयम आलोचना की जाती है। उक्त दोनोंके मधानस्थळ यथाक्रम जैसे 'मालतीमाधव' और 'महावीरचरित'

हैं, वैसेही इस रसका मुख्यस्थान 'उत्तररामचरित' है। भवभूतिका ऐसा कुछ अभिप्राय दीख पड़ता है कि, आठ रसोंमेंसे मुख्य जो पहिले तीन हैं उनमेंसे प्रत्येककी छटा एकेक नाटकमें प्रदर्शित की जावे। उनमें से पहिले दोके संग्रह ऊपर उद्धृत होही चुके हैं; उन्हें पढ़ हमारे रसिक पाठकोको पूर्णतया ज्ञात होचुका होगा कि, उस उस रसको पाठकोके चित्तपर प्रतिम्बिबित करानेकी शक्ति हमारे कविमें कैसी विलक्षण थी। वैसेही वर्त्तमान रसकाभी परिपाक उतारनेमे वह कहांलों समर्थ हुआ है सोभी पाठकोंको भावी संग्रहद्वारा प्रत्यक्ष हो जायगा। परन्तु वैसा करनेके पूर्व्व पीछे कहीहुई एक बात पाठकोको पुनः एकबार सूचित करना आवश्यक जानपड़ता है। वह यह कि, नाटकके पद्यादि यदि अलग निकाले जायँ तो उनका पूर्व्वापर सन्दर्भ टूट जानेके कारण बहुधा वे नीरस हो जाते हैं; अर्थात् सम्पूर्ण नाटक वा अङ्क पढ़नेसे तदन्तर्गत भाषणादिका रसानुभव जैसा पूर्ण और यथार्थ हो सकता है वैसा केवल उसीके पढ़नेसे कदापि नही हो सकता, तथापि जब कि, यह निबन्ध एक प्रकारसे प्राक्कथन स्वरूप है—अर्थात् तत्तत् कविके ग्रंथमे पाठकका प्रवेश हो उसका कुछभी मार्म्मिकज्ञान पाठकको होजाय यही इसका प्रधान अभिप्राय है—तो पूर्व्वक्रमानुसार करुणारसकेभी कतिपय उदाहरण यहां लिखेजाने चाहिये। वे निःसन्देह अपूर्ण रहेंगे और तद्द्वारा पाठकोंको उक्त रसके स्वरूपका जो ज्ञान होगा सोभी वैसेही अंशतः मात्र होगा। अस्तु।

दुर्मुखके सीताविषयक जनापवाद रामके कानमे कहते ही वे बेसुध हो तुरन्त धरती पर गिरपड़े। फिर जब सचेतहुए तब मनोमन कहते हैं:—

रामः—(आश्वस्य)

हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।

एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्व्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्व्वतः प्रसृतम् ॥

इस मंदगतिछन्दका प्रयोग यहांकी घटनाको अत्यन्त अनुकूल बोध होता है । रामजीके चित्तपर जो सहसा आघात हुआ उसके योगसे उनका कण्ठ भर आया । क्योंकि उक्त उक्तिके श्रवणमात्रसे यह बोध होता है कि, वह अत्यन्त कष्टपूर्वक व्यक्त की गयी है ।

आगे निद्रादेवीकी गोदमें पड़ीहुई सीताजीको सम्बोधन दे रामचन्द्र-जी कहते हैं:--

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥

अनन्तर उन्हें वनमे परित्यक्तकरनेके कठोर निश्चयको स्थिरकर, उनने उस कार्य्यका भार दुर्मुखपर अर्पित किया, और मै घातक अपने कर-स्पर्शसे देवीको क्यों अशुद्ध करूं ऐसा कह रामचन्द्रजीने सीताजीका शिर उठाकर अपना हाथ खीच लिया और बोले:--

अपूर्वकर्म्मचाण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम् ।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ॥

तद्वत् ।

विश्रम्भादुरसि निपत्य लब्धनिद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य शोभाम् ।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्व्वीं
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव निर्घृणः क्षिपामि ॥

उत्तररामचरित १

प्रजाराधनके निमित्त रामन्द्रजीने साहसमुख सीताजीका भी परित्या-ग तत्क्षण कर तो सच दिया पर आगे वह बात सन्तत उनके चित्तमे ख-

टकतीही रही। उनका विरह प्रथमसेही दुःसह था तिस परभी उनके साथ उन्होंने जो जो धोखेबाजी की उसक योगसे वह अत्यन्त तीव्र हो उनके हृदयमे भिदगया। रामचन्द्रजीकी निम्नोक्त उक्ति कैसी स्वभावसुलभ एवं हृदयभेदक है सो पाठक स्वयं विचार लें।

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य गात्रमसि दुर्वहगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते॥

उत्तररामचरित २

जिस दंडकारण्यके रम्य प्रदेशोमे अभी कुछ वर्षोंके पूर्व्व रामचंद्रजीने जनकनंदिनीके साथ आनन्दपूर्वक दिवस बिताये थे उन्ही के पुनः प्रसंगवश दृष्टिपथमे आनेपर उनकी जो अवस्था हुई सो अगले पद्यमें कितनी उत्कृष्टताके साथ लक्षित की गयी है!

रामः--हंत परिहरंतमपि मामितः पंचवटीस्नेहो बलादपकर्षतीव। (सकरुणम्)

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्संबंधिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयते।
एकः संप्रति नाशितप्रियतमस्तामद्य रामः कथं
पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसंभाव्य वा॥

——२

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बंधवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुनिर्झरकंदराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि॥

——२

उक्त कथनानुसार रामचन्द्रजी दडकारण्यके पूर्वपरिचित भिन्न २ स्थलोका अवलोकनकरते फिर रहेहीथे कि, वहांकी वनदेवी सीताकी सखी वासंती उन्हे आ मिली। उसे सीता विवासनका संवाद ज्ञात हो चुका था। अतः वनसंबधीय इधर उधरकी बातें प्रथम होजाने पर उसने आंखोमे पानी ला रामचन्द्रजीसे पूछा महाराज! कुँवर लक्ष्मण जी कुशल तौ है न ?, परंतु रामचन्द्रजीका चित्त उन पूर्व्वपरिचित स्थानोके अवलोकनमे नितांत मग्न होगया था, अतः वासतीसे बात चीत हो रही थी तोभी उसके उक्त प्रश्नको बिलकुल अनसुनासा कर वे मनोमन कहते हैं:--

करकमलवितीर्णैरंबुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरंगान् मैथिली यानपुष्यत्।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रव इव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेदयोग्यः॥

उत्तररामचरित ३

वासंतीने वही प्रश्न फिर किया। उसे सुनतेही उसका आशय × जानकर रामचन्द्रजी अतीव करुणार्द्र होगये, और विलाप करनेलगे।

आगे रामजीने सीता सतीके साथ जो कठोरता की तदर्थ वासती उनका उपालंभ करती है:--

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।

× वास्तवमें वासंतीको अपनी प्रिय सहेली सीताके विषयमें पूछताछ करनी चाहिये थी पर उनकी बातही शेष होगयी ऐसा समझकर उसने लक्ष्मणजी के विषयमेंही प्रश्न किया। इस बातनें रामचन्द्रजीके चित्तपर ऐसी गंभीर चोट की कि, उन का कण्ठ करुणासे भरआया। इसके सिवाय दूसरी बात यह कि, पूर्व्वका अत्यन्त स्नेहभाव होनेपर भी उसने अपरिचितकी नाई बहुमानप्रमुख उन्हे महाराज संबोधन किया!

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शांतमथवा किमिहोत्तरेण ।
अयि कठोर ! यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः प्रियम् ।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ ! कथं बत मन्यसे ॥

उत्तररामचरित ३

पछि कालिदासके विषयमे लिखती बार 'शकुन्तला' के चौथें अङ्कान्तर्गत करुणा और वत्सलरस चुहचुहाते हुए, अतः प्राचीनकाल से रसिकप्रिय बनेहुए चार श्लोकोंका हमने उल्लेख किया था, उन्हींकी समताके उक्त दो श्लोक हैं। इनके योगसे तीसरे अंकको, 'उत्तररामचरित' नाटकको भवभूतिके ग्रन्थोको सुतरां संस्कृतभाषाको परम शोभा प्राप्त हुई है !

दुःख अत्यन्त असह्य होनेपर रामजीका हृदयोद्गार—

हा हा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमंतर्ज्वलामि ।
सीदन्नंधे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विश्वङ्मोहः स्थगयति कथं मंदभाग्यः करोमि॥

उत्तररामचरित ३

सीताजीका वनमें वध होगया ऐसा समझकर जनकराजा शोक करते हैं:—

जनकः—हा वत्से !

नूनं त्वया परिभवश्च नवश्च घोरं
तां च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य !

क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
सन्त्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽस्मि ॥

उत्तररामचरित ४

इतने संग्रह बहुधा अलं होंगे । पर औरभी एक चमत्कृतिजनक है । अतः वह यहांपर उद्धृत किया जाता है । जनकात्मजाके दुःसह विरहका दुःख कुछ हलका हो इस अभिप्रायसे रामचन्द्रजी भूतपूर्व्व वृत्तांतस्मारक अनेक स्थलोका निरीक्षण कर रहे थे, उसी समय वासंतीने पुराकालमें एक लताभवनमे जो घटना हुई थी उसका सानुनय निवेदन किया है:–

वासंती–देवदेव !

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरीरोधसि ।
आयांत्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्य्यादरविंदकुड्मलनिभो मुग्धःप्रणामांजलिः॥

उक्त पद्यमे हमारे कविने कितनी उत्कृष्टता और उत्तमताके साथ उक्त घटना कल्पित की है ! और समस्त जीवनयात्रामें अत्यंत मनोहर जो मुग्धावस्था सो उक्त दपतीकी कैसे हृदयग्राही शब्दोद्वारा वर्णित की है । *

* ऐसेही एक नितात हृद्य प्रसगकी कल्पना कालिदासने शकुतला' नाटकमे की है। उसका यहापर उल्लेख किये विना हमारी लखनी आगेको नही चलती । वह यह है कि, जव शकुन्तला दुष्यतराजाके समीप भेजी गयी थी और वह उसका अगीकार नही करता था तव शकुतलाने राजाको स्मरण दिलानेके लिये उसके छापकी अगुठी अपनी अगुलीसे निकालनेकेलिये यत्न किया। पर उसे वहा न पा उसने तत्सबधीय भूतपूर्व, ध्यानमें धारण करने योग्य एक घटना राजाके समीप निवेदनकी वह यह है:–

"नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामडपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदक तव हस्ते सन्निहितमासीत् । तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः । त्वयाय तावत्प्रथमं

भवभूतिने करुणरसके विषयमें पराकाष्ठा प्रदर्शित की है ऐसी प्राचीन कालसे उसकी कीर्ति चली आ रही है। हमारे पुराने पंडितोंकी मंडलीमे प्रसिद्ध २ संस्कृतके कवियोके विषयमे एक न एक पद्य वा वाक्य सबके जिह्वाग्र पर पायाही जाता है। भवभूतिके विषयमें भी निम्नोक्त पद्यांश पाया जाता है—

कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते ‡

"करुणरसका प्रतिपादन करना अकेले भवभूतिकाही काम है।" और यथार्थमे सस्कृतके सब कवियोमें इसके सबंधसे उसकी समता करनेवाले दो तीन स्यात्‌ही निकलें, पर उससे श्रेष्ठ तो कोई भी नही है। एतावता पीछे जिस प्रकारसे कालिदासके कवित्व गुणविशेषके विषयमे उदात्त रसका नामोल्लेख किया गया है वैसेही भवभूतिके विषयमे करुणारसका उल्लिखित करना युक्तिसंगत बोध होता है।

इस रसका यथार्थ निरूपण करनेकी अनोखी हथौटी अपने कविको क्योकर प्राप्त हुई सो जान लेनेकेलिये गंभीर विचारोंकी उलझनमे फंसनेकी कोई आवश्यकता नही है। कविताका तत्त्व सहृदयता है; अर्थात् सर्व्व साधारण और कविमें इतनीही विशेषता है कि, हृदयकी नाना प्रकारकी वृत्तियां (जिनकी पारिभाषिक संज्ञा रस है) कवि को प्रकृतितः अत्यंत सूक्ष्मता एवं स्पष्टतापूर्व्वक भासित होती हैं। भवभूतिमें यह शक्ति प्रकृतिदत्त थी और उसके सहायक और भी दो गुण उसमें थे। वे उसके मनकी कोमलता और शुद्धता हैं। उसके इन गुणोका सविस्तर वर्णन

पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्यासमुपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि। सर्व्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।"

अंक ५

‡ यह एक वाक्य है वा किसी समूचे श्लोकका अंश है सो निश्चयपूर्व्वक नही कहा जा सकता। हां इतना अलबत्ते कहा जा सकता है कि शार्दूलविक्रीडित वृत्तकी नाई इसकी रचना है।

पीछे बहुत कुछ हो चुका है, इसके सिवाय वे उसके कैसे आधीन थे इसके उत्कृष्ट प्रमाण शृंगार और वीर रसमे स्पष्ट रूपसे पाये जाते हैं । तो फिर करुणा रसकी बातही क्या पूछना है ? यहां पर वे परमावश्यक होनेके कारण उनके योगसे यह रस परमोत्कर्षको प्राप्त हुआ है ।

पूर्व्वोक्त तीन रसोके अतिरिक्त औरभी जो रस भवभूतिके नाटकोमे उपलब्ध होते है उनके उदाहरण यहांपर उद्धृत करना अनावश्यक जान पड़ता है । क्योंकि उनमेंसे बहुतेरे तो केवल गौण अर्थात अप्रसंगवशात् सिद्ध कियेहुए है, और अपर स्वरूपतया शुद्ध नहीं दीख पड़त किंतु अन्य रसांतर्गत बोध होते है । यह कहां कहा पर लाये गये हैं सो प्रत्येक नाटकके वर्णनके साथ पीछे लिखा जा चुका है, हमे भरोसा है कि, उस वर्णनको पढ हमारे जिज्ञासु पाठकगण उक्त स्थानाका ढूंढ ले सकेंगे ।

पीछे एक स्थानपर संस्कृत कवितामे सृष्ट पदार्थोंका वर्णन किस ढगका पाया जाता है सो लिखकर उसम और आधुनिक अंगरेज़ी कवितामें प्रधान भेद क्या पाया जाता है आदि दिखलाया गया था । तौभी भवभूतिके विषयमे यहांपर यह लिखना अनावश्यक न समझा जायगा कि, वहांपर सस्कृतके प्रायः सब कवियोपर जो आक्षेप किया गया है वह केवल अकेले भवभूतिके विषयमेही चरितार्थ नही होता । आधुनिक अंगरेजी कवियोकी सजावटके ढगपर कियेहुए सृष्टिविभवके वर्णन केवल भवभूतिकेही ग्रंथोमें पाये जाते है । इस कथनका यह अभिप्राय कदापि नही है कि संस्कृतके और कवियोंने सृष्ट पदार्थोंका वर्णन लिखाही नही, हा इतना अवश्य कहा जासकता है कि, उनका ढंग निराला है । उनके वर्णनमे कतिपय अत्यंत प्रसिद्ध * एवं निश्चित

* आनंदका विषय है कि,भाषा काव्यकी उन्नति करनेके अभिप्रायस आजकल बहुतेरे नगरोमे कविसमाज, कविसभा, और कविमण्डलप्रभृति स्थापित किये गये हैं, जो यथावसर समस्या दे उत्तम पूरकोको उपहारद्वारा पुरस्कृत करते रहते है । उक्तसभाओंद्वारा दी हुई समस्याओकी पूर्त्तियोमेंसे जो जो पूर्त्तिया हमारे दृष्टिपथमें आयी हैं उन सबमें सिवाय परम प्रसिद्ध एव निश्चित उपमा और उत्प्रेक्षादिकोके पिष्टपेषणके अतिरिक्त कोई नई

बाते कभी छूटही नहीं सकती; जिन्हे पढ़ यह शंका उपस्थित होती है कि--उनमेसे बहुतेरोंने--निदान आधुनिक लोगोंने निजवर्णित प्रकृति दृश्योका स्वयं अनुभव कदापि नही लिया किंतु प्राचीन ग्रंथोको पढ वैसा लिख दिया है। अस्तु, तो हम समझते हैं कि, भवभूति ऐसे कवियोमेंसे न था, हमें यहभी विश्वास है कि, इस विषयमे और सब लोग भी हमारा अनुमोदन करेंगे। वर्डस्वर्थ कविके विषयमें यह बात प्रसिद्ध है कि, उसने अपनी आंखोसे सृष्टिके जिस दृश्य, पदार्थ, वा चमत्कारको देखा नही उसका वर्णनही उसने नही किया। यही बात बहुधा हमारे कविके विषयमें भी घटित हो सकती है; क्योंकि संस्कृतके सब कवियोमे विशेषकर उसीने जो ठौर ठौरपर प्रकृतिके उत्तमोत्तम वर्णन लिखे हैं उन्हे कविकपोलकल्पित वा अयथार्थ कहना युक्तियुक्त नही बोध होता। संस्कृतके शेष कवियों और भवभूतिके वैसेही अंगरेज कवियोके प्रकृति वर्णनोमे दूसरा एक महद्भेद यह स्पष्ट रूपसे दृग्गोचर होता है कि, पहिलोका वर्णन प्रायः अलंकाररूप--अर्थात् उपमा रूपक और उत्प्रेक्षादिगर्भित--रहता है; पर दूसरोका वैसा न रहकर बहुतही सादा रहता है--अर्थात तत्तत् सृष्ट पदार्थोंके केवल स्वरूपका वर्णन रहता है। इससे यही प्रतिपादित हुआ कि, प्रकृतिदेवीके भांति भांतिके मनोहर दृश्योंका अवलोकन करनेका भवभूतिको प्रकृतिजात परमोत्साह था। हमारे इस अनुमानका परिचय हमारे मननशील पाठकोको निम्नोद्धृत उदाहरणोद्वारा सहजहीम मिल जायगा।

एवं अनूठी उक्ति, कि जिसके द्वारा लोकोत्तर आनद उपजता है, देखनेमें नही आती। तिसपर भी तुर्रा यह है कि, उनके सचालकगण उन्हींमें कृतार्थता मानलेते है। हम समझते हैं कि, उक्त कवितारसमर्मज्ञ एव सहृदय सचालकगणोको सोचना चाहिये कि, जिस प्रकारकी पूर्त्तियां आजकल होती है उनकी भाषा काव्यमें ऊनता नही है किंतु वे आवश्यकतासे कही अधिक हैं। अतः उन्हे समुचित है कि, वे निज प्रतिज्ञानुसार भाषाकाव्यको उन्नत एव चिरस्थित करनेके हेतु सृष्ट पदार्थवर्णनादि अकृत्रिम काव्यरचनाकी ओर वर्त्तमान कवियोंका चित्त आकृष्ट करें और उन्हें वैसे काव्य प्रणीत करनेकी उपयुक्त सामग्री वर्त्तमाना उन्नत भाषाओंसे लेकर प्रदानकरे।

दंडकारण्यांतर्गत सृष्टिविभवका वर्णनः–

इह समदशकुंताक्रांतवानीरवीरुत्–
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंज–
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥

उत्तररामचरित २

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा–
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि ।
आमंजुवंजुललतानि च तान्यमूनि
नीरंध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥

———२

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालंबितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणाः ।
अन्योऽन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै–
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः ॥

———२

रामः-देवि ! रमणीयमेतत्पंपासरः ।

एतस्मिन् मदकलमल्लिकाख्यपक्ष–
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः ।
बाष्पांभःपरिपतनोद्गमांतराले
संदृष्टाः कुवलयिनो भुवो विभागाः ॥

उत्तररामचरित १

'मालती माधव' का नवम अङ्क प्रकृतिके भिन्न २ दृश्योंके वर्णनसे भरा हुआ है। हमारे पाठकोंमेंसे जिन्हें काव्यपरिचयके योगसे तादृश काव्यरसिकता प्राप्त होगयी हो उन्हें उचित है कि, वे उसे मननपूर्वक पूर्णरूपसे पढें। संप्रति सर्व्वसाधारणके अवलोकनार्थ कतिपय पद्य नीचे प्रकाशित किये जाते हैं।

सौदामिनी- भोस्तथाहमुत्पतिता यथा सकल एष गिरिनगर ग्रामसरिदरण्यव्यतिकरश्चक्षुषा परिक्षिप्यते।

(पश्चाद्विलोक्य) साधु साधु।

पद्मावतीविमलवारिविशालसिंधु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति।
उत्तुंगसौधसुरमंदिरगोपुराट्ट-
संघट्टपाटितविमुक्तमिवांतरिक्षम्॥

अपि च।

सैषा विभाति लवणा ललितोर्मिपंक्ति-
र्यश्चागमे जनपदप्रमदाय यस्याः।
गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारि-
सेव्योपकंठविपिनावलयो विभांति॥

(अन्यतोऽवलोक्य)

अयमसौ भगवत्याः सिंधोर्दारितरसातलप्रायस्तटप्रपातः।

यत्रत्य एष तुमुलो ध्वनिरंबुगर्भ-
गम्भीरनूतनघनस्तनितप्रचण्डः।
पर्य्यन्तभूधरनिकुञ्जविजृंभमाण-
हेरंबकंठरसितप्रतिमानमेति॥

एताश्चंदनाश्वकर्णसरलपाटलप्रायतरुगहनाः परिणतमालूरसुरभयोऽरण्य-गिरिभूमयः स्मारयंति खलु तरुणकदंबजंबूवनावनद्धांधकारगुरुनिकुंजगभी-रगह्वरोद्गारगोदावरीरवमुखरितविशालमेखलाभुवो दक्षिणारण्यभूधरान्। अयं च मधुमतीसिंधुसंभेदपावनो भगवान् भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्ण-बिंदुरित्याख्यायते—

मकरंदः--सखे प्रसीद। पश्य।

वानीरप्रसवैर्निकुञ्जसरितामासक्तवासं पयः
पर्यंतेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृंभितं जालकैः।
उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालंब्य सानूनितः
प्राग्भारेषु शिखंडितांडवविधौ मेघैर्वितानायते॥

श्रीरामसीताप्रभृति पुष्पकारूढ़ हो जब अयोध्याको लौटे हैं तब मल-याचलकी ओर तर्जनी दिखलाकर रामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे कहते हैं:--

रामः [अंगुल्या निर्दिशन्] वत्स।

एता भुवः परिचिनोषि मिलत्तमाल-
च्छायांधकारिततुषारनिकुञ्जपुञ्जाः।
उन्मूच्छदच्छमलयाचलतुंगशृंग-
प्राग्भारनिष्पतितनिर्झरपूरभाजः॥

महावीरचरित ७

लक्ष्मणजीको भी वहांकी एक भूतपूर्व घटनाका स्मरण हो आया अतः वे उसका वर्णन करते है। यह घटना पावसकी एक रात्रिको उनकी जो अवस्था हुई थी सो है।

गर्ज्जाजर्ज्जरितासु दिक्षु बधिरे तत्स्फूर्जथुस्फूर्जिते
व्योम्नि भ्राम्यति दुष्प्रभञ्जनजवादभ्रेऽभ्रदभ्रे मुहुः।

आक्षिप्यान्धयति द्रुमांधतमसे चक्षुः प्रविश्य क्षपा
यत्रासीत् क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते ॥

महावीरचरित ७

उक्त समस्त संग्रह बाह्यसृष्टिवर्णनप्रधान हैं। अब अन्तः सृष्टिके अर्थात् अतःकरणकी भिन्न भिन्न वृत्तियोका वर्णन भवभूतिने जहां जहां किया है उनके थोडेसे उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं--

श्रीरामजी सीताजीके हाथको स्वयं निज गलेमे डाल तज्जन्य सुखानुभव करतेहुए कहते हैं.--

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेंद्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ॥

उत्तर रामचरित १

श्रीरामचंद्रजीके मूर्च्छित होजानेपर सीताजी अदृश्य रूपसे उनके ललाटको छूती है, और उनके करस्पर्शके योगसे सचेत हो पुनः वे कहते है:--

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एष
संजीवनश्च मनसः परिमोहणश्च।
सन्तापजां सपदि यः प्रतिहत्य मूर्च्छा-
मानंददेन जडतां पुनरातनोति ॥

उत्तररामचरित ३

श्रीरामजीको देखतेही लवकी शत्रुता और उद्धतताबुद्धि सहसा लुप्त होगयी और तत्क्षण उसके मनकी जो अवस्था हुई उसका वह वर्णन करता है--

लवः--आश्चर्यम्।

विरोधो विश्रांतः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयःप्रह्वयति माम् ।
झटित्यस्मिन् दृष्टे किमपि परवानस्मि यदि वा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यातिशयः ॥

उत्तर रामचरित ६

भवभूतिने इनके अतिरिक्त और भी प्रसंगोंके वर्णन लिखे हैं । वे सब वर्णन भिन्न २ रसोंके है, विषयक्रमानुरोधसे पाठकोंके अवलोकनार्थ हम उनके भी थोड़ेसे उदाहरण नीचे लिख देते हैः—

(मालतीका वर्णन)

(शृंगारप्रधान)

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौंदर्यसारसमुदायनिकेतनं वा ।
तस्याः सखे नियतमिंदुसुधामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥

मालतीमाधव १

(मालतीने लवंगिकाके धोखे माधवका आलिगन किया उनका वर्णन)

एकीकृतस्त्वचि निषिक्त इवावपीड्य
निर्भुग्न पीनकुचकुड्मलयाऽनया मे ।
कर्पूरहारहरिचन्दनचन्द्रकांत—
निष्यंदशैवलमृणालहिमादिवर्गः ॥

————————६

(मालती मूर्च्छित होकर पुनः सचेत होती है ।)

भवति विततश्वासा नासा प्रसन्नपयोधरं
हृदयमपि च स्निग्धं चक्षुर्निजप्रकृतौ स्थितम्।
तदनु वदनं मूर्च्छाच्छेदात् प्रसादि विराजते
परिगतमिव प्रारंभेऽह्नः श्रिया सरसोरुहम्॥ *

१०

(लवकुशको देख श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको पहचाना है सो प्रसंग)

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो-
रभिनवशतपत्रश्रीमदास्यं प्रियायाः॥

उत्तर रामचरित ६

(श्रीसीताजी जब वनवासमे थी तबके उनके अलंकारादिरहित मुखकी मुग्ध शोभाका श्रीरामचन्द्रजी स्मरण करते हैं।)

श्रमांबुशिशिरीभवत्प्रसृतमंदमंदाकिनी-
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचंद्रद्युति।

* ठीक ऐसीही बात विक्रमोर्वशीमें भी वर्णित है —

आविर्भूते शशिनि तमसा रिच्यमानेव रात्रि.
नैशस्यार्चिर्हुतभुजइव छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनातर्वरतनुरियं दृश्यते मुच्यमाना
गगा रोध पतनकलुषागच्छतीव प्रसादम्॥

अक १

जान पडता है इसी श्लोकको सामने रख उक्त श्लोक लिखा गया है। तोभी यह भवभूतिके पूर्वोक्त दो गुणोकी विशेषता उत्कृष्टतया प्रमाणित करता है। एक तो उसकी स्वतंत्र काव्यरचनाकी दृढ प्रतिज्ञा, और दूसरा अभी ऊपर जो कहा गया है कि उसके वर्णन उपमाद्यलंकारस्वरूप नही होते हैं किन्तु वे यथावत रहते हैं।

अकुंकुमकलंकितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुन्दरश्रवणपाशसौम्यं मुखम् ॥

——————६

(वीररसप्रधान)

(कुशका वर्णन)

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव ॥

उत्तर रामचरित ६

(चन्द्रकेतुके युद्धार्थ ललकारने पर लवका वर्णन)

व्यपवर्तत एष बालवीरः
पृतनानिर्मथनात् त्वयापहूतः ।
स्तनयित्नुरवाद्गिभावलीना-
मवमर्दादिव दृप्त सिंहशावः ॥

——————५

(वात्सल्यप्रधान)

(सीताजीकी बाल्यावस्थाका वर्णन)

अनियतरुदितस्मितं विराजत्
कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि

स्खलदसमंजसमंजुजल्पितं ते ॥ *

उत्तर रामचरित ४

[हास्यप्रधान]

(अश्वका वर्णन)

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्त्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिंडकानाम्रमात्रान्
किंवा ख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥

३——————४

अब केवल एकही रसके उदाहरण लिखनेको रह गये हैं । पीछे कालिदासके विषयमें लिखतीबार उदात्त रसके बहुत कुछ उदाहरण लिखे गये हैं, क्यों कि, वे उसके ग्रंथोंमें ठौर२ठौरपर पाये जाते हैं । पर भवभूतिके नाटकोंकी बात उससे भिन्न है । 'मालती माधव' के नवम और 'महावीरचरित' के पांचवें और सातवें अंकके अतिरिक्त उक्त रसके उदाहरण अन्यत्र स्यातही पाये जाते हैं । और इसका कारण भी स्पष्टही है । काव्यरचयिताको जिसप्रकार स्वेच्छानुसार अपने ग्रन्थमें विषय सन्निविष्ट करनेकेलिये अवकाश मिलजाता है उस प्र-

* संस्कृतकाव्यरसिकोंको यह श्लोक पढ़ 'शकुंतला' अतर्गत एतत्समानार्थक श्लोकका स्मरण हुए विना न रहेगा । वह श्लोक यह है'—

आलक्ष्यदंतमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन् ।
अंकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहंतो
धन्यास्तदगरजसा मलिनीभवति ॥

अक ७

इस श्लोककी विशेष प्रसिद्धिका कारण पीछे उल्लिखित होही चुका है कि, श्लेझी नामक फरासीस विद्वानको इस श्लोकने नितांत तल्लीन करडाला था ॥

कारसे नाटक प्रणेताको नहीं मिलता, आख्यायिकामे हेरफेर कर नूतन रचना करनेका अधिकार उसे यद्यपि प्राप्त है तथापि पात्र प्रसंग और स्थलादि औचित्यकी ओर उसे अवश्यमेव ध्यान देना पड़ता है--अर्थात् पात्रविशेष, प्रसंगविशेष और स्थलविशेषको जहां जितनी बात शोभाप्रद हो वहां उतनीही प्रयुक्त करना पडती है । इस के सिवाय नाटक तो संसारकी घटनाओंका चित्र है ! एतावता सर्व साधारणमें बोलचाल और रहनसहनका ढग जैसा प्रचलित होता है वैसाही लिखना पड़ता है । यही सब बाधाएँ है कि, जिनके योगसे नाटककर्त्ता अपने समस्त गुण एकही नाटकमे प्रदर्शित नहीं कर सकता । सारांश, कवियोंके विशेषतः नाटकप्रणेतृगणोंके एक दो ग्रन्थो को देख भालकर उनके गुणोंकी सीमा निश्चित करना अत्यंत अनुपयुक्त है । अस्तु; अब ऊपर कहे हुए रसोंके कतिपय उदाहरण रसिक पाठकोंकी सेवामें भेंट किये जाते हैं, उन्हें पढ़ उनको विश्वास होजायगा कि, यह रस यद्यपि बहुत थोडे स्थानोंपर लाया गया है तथापि इसे लिखनेकी अपने कविकी हथौटी बडी विलक्षण थी ।

संपातिः--नूनमद्य वत्सजटायुरभिवादनाय मलयकंदरकुलाय-मुपासीदति ।

तथाहि--

पर्य्यायात्क्षणदृष्टनष्टककुभः संवर्त्तविस्तारयो-
र्नीहारीकृतमेघमोचितधुतव्यक्तस्फुरद्विद्युतः ।
आरात् कीर्णकणात्कणीकृतगुरुग्रावोच्चयश्रेणयः
श्यैनेयस्य बृहत्पतत्रधुतयः प्रख्यापयंत्यागमम् ॥

महावीरचरित ५

जटायुः--तदयमार्यो मन्वन्तरपुराणगृध्रराजः संपातिः ।
अहो भ्रातृस्नेहः !

पुराकल्पे दूरोत्पतनखुरलीकेलिजनिता-
द्दतिप्रत्यासंगात् परितपति गात्राणि तपने ।
अनष्टाभ्यासौ मामुपरि ततपक्षः शिशुरिति
स्वपक्षाभ्यां श्लोषाद्विकलमरक्षत् करुणया ॥

—५

जटायुः--उत्पत्य । गगनगमनमभिनीय)

एषोऽहं प्रलयमरुत्प्रचंडरंहः
संक्षिप्तप्रथिमपिबन्निवांतरिक्षम् ।
क्षेपीयो मलयगिरेर्निवासभूभृत्
संसक्तक्षितिरुहजालमभ्युपेतः ॥

(लंकादहनके समयका श्लोक)

॥ नेपथ्ये ॥

भ्रांतीः सप्ताधिकानां प्रविदधदरुणैरर्चिषां चक्रवालै-
र्द्रग्वीराणामलक्ष्यप्रसृतिरतिसमुत्तालरौक्म्यालयेषु ।
अर्द्धप्लुष्टापसर्पद्रजनिचरभटोद्गाढकल्पांतशंकं
लंकांप्रोढोहुताशःसहपरिदलितोऽभ्येत्रिकूटेनलीढे ॥

महावीरचरित ६

चंद्रकेतुद्वारा युद्धार्थ निमन्त्रित हो लव उसकी ओर जानेको निकला; पर अपनेको पुनः सैन्यद्वारा आवेष्टित देख सक्रोध कहता है

लवः—धिग्जाल्मान् ।

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्
प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे ।

बाणभट्ट।

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत्किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

विदग्धमुखमंडन।

संस्कृत कविताकी मध्यावस्थामे प्रायः अनेक कवि हुए है। उन सबका यथार्थ वर्णन करना कोई सामान्य कार्य्य नही है, उसके संपादनार्थ बहुत परिश्रम और दीर्घ काल आवश्यक है। एतावता उनमे जो २ प्रमुख होगये है उनमेसे तीन कविमात्रके विषयमे यहांपर लिखतेहैं। यह तीन कवि बाणभट्ट–सुबंधु और दंडी हैं।

मध्यमकालीन कविगणोंमेसे इन्ही तीन कवियोका प्रधानतया वर्णन करनेका कारण यह है कि, संस्कृतभाषामे गद्यकाव्यरचनाकी*प्रथा इन्ही कवियोंने प्रचलित की। वास्तवमें गद्यकाव्यकी सृष्टि पद्यकाव्यके पश्चात् होनी चाहिये, यह नियम सर्वभाषासाधारणकेलिये घटित होताहै, और इसका कारणभी स्पष्टही है। यह बात प्रायः सब मनुष्योंको निजके अनुभवसे ज्ञात होगी कि, बाल्यावस्थामे मनुष्यकी कल्पनाशक्ति जैसी तीव्र रहतीहै वैसी वह आगे उसकी युवावस्थामें नही रहती, जैसे २ मनुष्यको ज्ञानलाभ होतेजाताहै वैसे २ इस कल्पनाशक्तिका ह्रास हो विचारशक्तिका उदय होनेलगताहै। यही बात जातिके विषयमेभी चारितार्थ होती है। उसके सज्ञानदशामे पदारोपण करतेही प्रथम उसकी कल्पनाशक्ति कविताके रूपसे प्रकाशित होने लगती है। ऐसा होते होते कुछकालके अनतर इसी कल्पना-

* हमारे बहुतेरे पाठक कदाचित् ' गद्यकाव्यका ' नाम पढ़ बडी उलझनमें पड़जायँगे उनकी शंकाके निवारणार्थ यहांपर संक्षेपमे कुछ लिखनेकी अपेक्षा हम यही उचित समझते है कि, वे काशी नागरीप्रचारिणी सभाके मंत्रीसे भारतरत्न साहित्याचार्य्य पंडित अंबिकादत्तव्यास प्रणीत "गद्यकाव्यमीमासाको" मगाकर विचारें तो इस विषयका उन्हें बहुत बोध हो जायगा।

शक्तिके गर्भसे तत्त्वजिज्ञासा—अर्थात् आसन्नवर्त्ती सृष्टिमें जो अनेक चमत्कारिक और आश्चर्योत्पादक पदार्थ संतत और जो थोडे़काल क्रमानुसार आलोकपथमे आते रहते हैं उनका तत्त्व अर्थात् यथार्थस्वरूप जाननेकी इच्छा स्वभावतः उद्भूत होती है । पर इस दूसरी मानसिकशक्तिका पहिलीसे प्रकृतिजात विरोध रहताहै । क्योंकि कल्पना अर्थात् असत्यभासका सर्वस्व, ऐसी अवस्थामे उसका तत्त्वजिज्ञासाके साथ कि, जिसका सर्वस्व एक सत्यही है कैसे मेल पट सकताहै? सारांश तत्त्वजिज्ञासा जैसी २ हृष्टपुष्ट एवं बलिष्ठ होती जाती है वैसी २ कल्पनाशक्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक हीन क्षीण होती जाती है—अर्थात् कवित्वानुकूलमनकी पहिली कोमल अवस्था लुप्त हो सत्यासत्याविवेचनारूप कटोर मानसिक शक्तिका अधिकार बढते जाता है । इस अधिकारके होते ही काव्यग्रंथोकी अधिकता मद हो उत्तरोत्तर प्रतिपाद्य विषयोकी ओर लोगोकी मनःप्रवृत्ति होती जाती है ऐसे विषयोंके ग्रथोंको छन्दोबद्ध रचना यत्किचित्भी शोभाप्रद नही होती; सर्वसाधारणकी भाषाही उन्हे अनुकूल होती है; अतः गद्यकाव्यकी प्रथा प्रचलित होती है यह परिपाटी प्रचालित हो ग्रंथरचनाकी इसी प्रथाका निश्चित हो जाना भी विद्यावृद्धिका एक शुभ लक्षण है; क्यों कि, स्वरसंयोग शद्बालंकार और अर्थालंकारादि भिन्न २ बहिरग साधन जो काव्यको मनोहर एवं हृदयग्राही करनेके हेतु काममें लाये जाते हैं उनमेंसे एकभी गद्यग्रंथोमें नही पाये जाते हैं पर तोभी उनके भावोंकी मनोहरता एवं सुंदरताके द्वारा मनका रंजन हो सकता है; अस्तु यह सब प्रतिपादन वर्त्तमान विषयानुमोदित न होनेपरभी उसके यहांपर इतने विस्तृत करनेका कारण यही है कि, इस रमणीक विषयका हमारे केवल भाषा जाननेवाले पाठकोको प्रसंगवशात् कुछ दिग्दर्शनहोजाय । " काव्यकेलिये अज्ञानावस्था विशेषरूपसे अनुकूल है" "ज्ञानसंपन्नताके समयमे उसका क्रमशः ह्रासहोते जाता है"आदि जो सिद्धांत सहसा बडे विलक्षण जान पडते हैं उनका भी उन्हें कुछ भेद विदित हो जाय । उक्त सिद्धांतका वर्त्तमान विषयके साथ केवल व्यतिरेकसंबंध है—अर्थात् उक्त

बातोंमेसे एक भी उसके विषयमें चरितार्थ नही होती । पूर्वोक्त तीन कवियोने गद्यकाव्यरचनाकी परिपाटी प्रचलित की है तौभी उनकी वह रचना केवल नाममात्रके लियेही वैसीहै;और वास्तवमें तो वह पहिली काव्यरचनाकाही रूपांतर है। पुरा कालीन ग्रीक और रोमनलोगोंमे जिसप्रकारके गद्यकाव्यकी प्रथा प्रचलित हुई, और संप्रति अंगरेजी आदि योरोपकी भाषाओमे उसका जो रूप पाया जाता है वैसा संस्कृतमे कदापि किसीकालमें उसने ग्रहण कियाहो सो नही जना पड़ता। उसके गद्यकाव्यका ढंग कुच्छ निरालाही है। वैसा और किसीभाषामे स्यातही होगा। इस भाषाकी विलक्षण मधुरता एवं प्रौढता और रचनावैचित्र्यकेलिये शब्दप्रचुरता, समासबनानेके विलक्षण प्रकार और उनकी दीर्घताका अनिर्बंध प्रभृति समाग्री अनुकूल होनेके कारण अकेले छदको छोडकर कविताकी पूरी सजावट गद्यकाव्यको देना नितांत सुकर कार्य्य होगया; यही कारण है कि उक्त तीनों ग्रंथरचायितृगण कवियोमे परिगणित किये गये हैं।

अपर दोनोकी अपेक्षा बाणभट्टही विशेष प्रसिद्ध है। अतःप्रथम उन्हीका वर्णन प्रारंभ किया जाता है ।

पिछले दो कवियोमेसे एकका केवल कुलवृत्त ज्ञात हुआ था, पर उसके स्थान और कालके विषयमे कुछभी ज्ञात नही हुआथा; और दूसरेका परिचय उसके नामके अतिरिक्त और अधिक कुछभी उपलब्ध नही हुआथा परतु यहांपर यह लिखते परम हर्ष होता है कि, वर्त्तमान कविके विषयमें पाठकोकी जिज्ञासा अंशतः परिपूर्णकरनेकी सामग्री बहुतकुछ संप्राप्त है ।

बाणभट्टने अपने परम प्रसिद्ध कादंबरी सज्ञक ग्रथकी भूमिकामें अपने पूर्वपुरुषाका नामोल्लख मात्र कियाहै ! इससे अधिक और परिचय उसमे कुछ नही प्राप्त होता । वह त्रुटि उसके अब इधर प्राप्तहुए हर्षचरित नामक ग्रंथद्वारा पूर्ण होसकती है । इस ग्रंथके प्रथम उच्छ्वासके अंतमे निम्नलिखित वृत्त पाया जाता है:-

बाणभट्टके पिताका नाम चित्रभानु और माताका नाम राज्यदेवी

था, बाण जब चौदह वर्षका था तभी उसका पिता मृत्युको प्राप्त होगया था। भद्रनारायण, ईशान और मयूरक उसके बालमित्र थे। शोण(सोन) नदीके पश्चिमको प्रीतिकूट नामक ग्राममें उसका घरथा।इसी नदीके परले किनारे पर यष्टिगृहनामका एक ग्राम था। इस गांवसे तनिक आगे बढ़तेही श्रीकंठनामक देशकी सीमा लगतीथी। हर्षकी राजधानी यहांही थी।

तौ उक्त प्रकारसे अपने कविकेही ग्रंथद्वारा उसके वसतिस्थानका निर्णय हो जाता है और साथही थोड़ासा कुलवृत्तांतभी ज्ञात हो जाता है; पर समय जाननेके हेतु कोई साधन हस्तगत नही होता। इस देशके प्राचीन कालका पूरा इतिहास यदि हमारे पास होता तौ वह इस समय अत्यंत उपयोगी होता, पर क्या कियाजाय ! उस साधनका हमारे पास सर्वथा अभावहै ऐसा कहना कदाचित् अनुचित न होगा।और सब विषयोमें प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगोसे समता प्राप्त करनेवाले और कही कही तौ उनसे भी बढ चढ गये हुए हमारे भूतपुर्वपुरुषोके हाथसे न जाने विद्याका यह एक प्रधान अंग क्यो छूट गया। इसका कारण चाहे यह मान लिया जाय कि, ग्रीकलोग जैसे परराज्यदलित हुए और उन्हे उनकी वीरता प्रदर्शित करनेका अवसर प्राप्त हुआ वैसा अवसर यहांके लोगोको कभीभी प्राप्त नही हुआ; वा हिरॉडटस्, जिनोफन् और थुसीडिडीजके समान हमारे देशके विद्वान्लोग प्रवासविमुखताके कारण देशपर्य्यटन कभीभी न करतेथे; वा वे लोग नरस्तुतिको मिथ्या मानते थे, वा ग्रंथ लुप्तहोजानेके कारण, इनमेसे कारण चाहे जो हो पर यह बात तौ स्पष्ट बोध होतीहै कि, हमारे देशका प्राचीन इतिहास सर्वथा लुप्त हो गया। यह असामान्य हानि केवल उसीके संबंधसे शोचनीय नही है किंतु ग्रंथोके संबंधसेभी वह वैसीही शोचार्ह है। जैसे निबिड अंधकारमे रंग, रूप, आकार और अंतरादिका ज्ञान सब नष्ट हो जाता है, वैसेही एक इतिहासके अभावके कारण समस्त ग्रंथसमूहके विषयमे गड़बड पायी जाती है। कौनसा ग्रंथ पहिले लिखा गया, कौनसा पीछे लिखागया, कौनसा ग्रंथ अपने जन्मदाताके जीवनकालमें किस प्रकारसे समादृत हुआ इत्यादि अनेक बाते जाननेकेलिये मन

अत्यंत उत्कंठित एवं लोलुप होता है, और उनका बोध होनेमेंभी बडा कौतूहल है, कभी २ तौ यह सब आनंद उन बातोमेंही पाया जाता है। आथेन्स नगरके आरिस्तोफेनीज् नामक एक प्रहसनकर्त्ताका 'मेघमाला' संज्ञक एक प्रहसन अद्यावधि प्रसिद्ध है। वह यदि अपने 'प्रबोधचन्द्रोदय' की नाई इतिहास–प्रसिद्धिशून्य होता तौ क्या आश्चर्य्य है कि, उसका सब रस विनष्टसा न हो गया होता? सारांश जैसे किसी मृत स्त्रीके मुखद्वारा उसके अपरअंगोका आकार, उसका वर्ण आदि मात्र दृश्यमान रहतेहैं, पर जीवितकालका सौदर्य और मुखमडलकी शोभा एकबार जो अस्त होजाती है सो होही जातीहै, उसकी पुनः कल्पनातक नही होसकती, उसी प्रकारसे संस्कृतभाषाके ग्रथोकी नूतन शोभा अपने २ समयके साथही प्रायः कभीकी लयको प्राप्त होगयी ऐसा कहनेमे कोई बाधा नही बोध होती। पर यदि वही शोभा इतिहास–रूप चित्रमे आजादिन ज्योकी त्यो बनी रहती, तौ सूर्य्योदय हो सब दिशाओके प्रफुल्लित होनेपर नदी, वृक्ष, पर्वतादिद्वारा चित्रविचित्ररूप धारणकरनेवाली प्रकृतिदेवीकी जैसी अपूर्व्व शोभा आलोकपथमे आती है और उसके समस्त दृश्य रमणीक दीख पडते है, उसी प्रकारसे पूर्वोक्त ग्रथसग्रह संप्रतिकी नांई उलझनमे न फसकर यथाक्रम हस्तगत होता, और उससे संप्रतिकी अपेक्षा कही बढके आनद और लाभ प्राप्त होता। तात्पर्य्य यह है कि, अपने देशका पुरातन इतिहास उपलब्ध न होनेके कारण अपनी और सब जगकी बडी भारी हानि हुई है।

अब यह बात सच है कि, प्रसंगवशात् 'राजतरंगिणी'। * जैसे ग्रंथद्वारा

---

* यह बृहद्ग्रथ चारभागोंमें शेष हुआ है। कह्लण पडितने इसके पहिले भागमें काश्मीर देशका ई० सन ११४८ पर्य्यंतका इतिहास लिखाहै। दूसरे भागमे जोन राजाने ई० सन १४१२ पर्य्यंतका वृत्त लिखाहै। तीसरे भागमे (जोन राजाके शिष्य) श्रीवरपंडितने ई० सन १४७७ पर्य्यंतकी घटनाओंको लिपिबद्ध किया है। और चौथे भागमे प्रजयभट्टने अकबरके काश्मीरविजयका वृत्तांत और आगे शाह आलमबादशाहपर्य्यन्तका वृत्तान्त लिखाहै। काव्यरीतिके अनुसार भी यह ग्रथ अत्यत प्रशंसनीय है।

काम निकल जाता है, पर उसे इतिहासके नामसे पुकारना युक्तियुक्त बोध नही होता। क्योंकि पहिले तो उसकी लेखप्रणाली शुद्ध इतिहासकैसी नही है किंतु वह केवल काव्यकैसी है और दूसरे इतिहासके जो दो सुदृढ़ आधारस्तंभ कालक्रम और भूगोल (देशज्ञान) है उनकी ओर लेखकगणोने वैसा कुछ ध्यान दियासा नही देखपडता । भारतवर्ष अत्यंत विस्तीर्ण देश होनेके कारण भिन्न २ प्रांतोके राजालोगोने भिन्न शक प्रचलित कियेहैं एतावता कालका निश्चय करनेमें बहुत् आपत्ति उपस्थित होतीहैं । इसके अतिरिक्त हमलोगोके यहां पूर्वसे एक ऐसी भद्दी चाल पड़ गयी है कि, कोई शक वा संमत लिखतेही नही । आजदिनभी बहुतसे पुरानेग्रंथ विद्यमान हैं पर उनमेंसे ऐसे ग्रंथ स्यात ही होगे कि, जिनमे उनका शक लिखा हुआ है । पर इतने दूरजानेकी भी कोई अवश्यकता नही है। आजदिनभी केवल भाषा जाननेवाले वा पुरानेपंडित लोग अपने पत्रोमें केवल तिथि और महीनेकाही नाम लिखतेहैं वर्षका शक वा संवत् कदापि नही लिखते । कहनेका अभिप्राय यह है कि, अपने भूतपूर्व ग्रंथप्रणेतृगणोके समयका खोज लगानेके साधनोंका अपने पास प्रायः अभावही है, तौभी यहां पर एक बड़ी आश्चर्य्यजनक एवं लज्जोत्पादक बात पाठकोको सूचित की जाती है— वह यह कि, बाणकविका समय जाननेकी अपनी जिस उत्कट उत्कंठाको स्वयं अपने ग्रंथ तृप्त नही कर सके उसे एक चीनके ग्रंथने पूर्ण किया है !!

यह महदाश्चर्य्यसंयुक्त घटना क्योंकर हुई, और चीनके ग्रंथ और हमारे बाण कविके कालका क्या संबन्ध है आदिका यथावत् बोध होनेके हेतु यहांपर थोडेसे ऐतिहासिक वृत्तका उल्लिखित होना आवश्यक जानपड़ताहै । हमारे पाठकोंमेसे सारज्ञ पाठकोंको यह बात अवश्यमेव विदित होगी कि, मुसलमानोका अधिकार हमलोगोकी बुद्धिप्रबलताका बाधक हो उसकी अवनतिका कारण होनेके पूर्व सैकड़ो वर्षलों धर्म्मके संबंधसे इसदेशमें कई बड़े२ उलटफेर हो गयेथे आर्य्यलोगोके मूल वैदिकधर्म्मपर आक्षेपकर पहिला मतभेद बुद्धने प्रचलित किया। कालक्रमानुसार बहुतेरे लोग

उसके मतका अनुधावन करनेलगे। और इस प्रकारसे धर्ममें दो भेद होगये। और यह नूतनधर्मावलबी लोग अपनेको बौद्ध कहानेलगे। इनके नवीन मत कैसे थे इनका उदय, विस्तार और लय कब और क्यों हुआ आदि बाते इतिहासलेखकोके बडे मनोहर विषयकी सामग्रीथी, पर अब उसकी चर्चा करनेसे लाभही क्या है? पिछली ही खेदकारक बातका यहांपर पुनःएक-बार उल्लेख करना चाहिये कि,इतिहासके अभावके कारण हमको समस्त जगके साथ इस महल्लाभसे हाथ धो बैठना पड़ाहै। अस्तु, बुद्धके विषयमे यद्यपि हमे कुछभी ज्ञात नही है * तौभी यह बात तो स्पष्ट ही है कि, उनकी बुद्धि लोकोत्तर होगी। क्योकि स्वय उनके विपक्षी ब्राह्मणोने भी उन्हे ईश्वरका साक्षात् नवम अवतार माना है। जयदेवस्वामी अपने गीत गोविदके आदिमे लिखते हैः—

निंदसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥

(ध्रुवपद)

इसमे बुद्धके मुख्य प्रतिपाद्य मतका कथन किया है "वेदाज्ञानुसार यज्ञमे जो पशुहिसा की जाती थी उसका उनने सदय अतःकरण हो निषेध किया" इस धर्म्मसंस्थापकका मरणकाल अंगरेजग्रंथकर्त्ताओंने ईसवीसनके पूर्व ६४३ वर्ष कहा है। इसके अनंतर इस धर्म्मने परमोन्नति प्राप्त की थी। ईसवी सनके पूर्व अनुमान ३००वर्षउस धर्म्मका परम प्रसिद्ध अशोकसंज्ञक राजा शासन करता था। सुना जाता है कि, उसने अपने सपूर्ण राज्यमे पश्वा-दिकोके वधका निषेध कर दिया था इस समयकी साक्षी देनेवाले अक्षर खुदेहुए कई स्तभ प्रभृति आजादिनभी कही कही पायेजाते है। अस्तु, पर बुद्धका

* आनदका विषय है कि, केवल भाषा जाननेवाले लोगभी अब यदि वह चाहें तो, काशी निवासी श्रीयुत बाबू श्यामसुंदरदास बी ए. लिखित 'शाक्यवंशीयगौतमबुद्ध' नामक ग्रंथद्वारा बुद्धके विषयमे बहुतकुछ परिचय प्राप्त करसकते है।

यह समस्त विभव आगे कुछकालके अनंतर समूल विनष्ट होगया। ईसवी सनके आरंभके लागपर बौद्ध और ब्राह्मणोमे प्रचंड वादविवाद हुआ था; श्रीमच्छंकराचार्य्यने बौद्धधर्म्मका खंडन कर ब्राह्मणधर्म्म स्थापित किया था। * इस प्रकारसे बौद्धोका पराजय होनेपर स्वेच्छानुसार कहो वा राजाज्ञानुसार कहो उनलोगोने देशत्याग किया और कोई तिब्वत, कोई चीन और कोई लकामे जा बसे। आगे चिरकालपर्यंत उन्हे अपने आदिके देशका स्मरण बना रहा था और बीच बीचमे कोई कोई लोग स्वधर्म्मीलोगोंके पूर्वके स्थान और विशेषतः अपने धर्म्मोत्पादककी धरतीका निरीक्षण करनेके हेतु भारतमें आया करतेथे। इस प्रकारका एक चीनी हुएनसंग नामका यात्री पिछले दिनों भारतमे आया था। उसने ईसवीसन ६२९से६४५पर्यंत अर्थात् अनुमान १६ वर्ष लो भारतमे भ्रमण कियाथा। उसने अपने ग्रंथमे उस समयके हिंदू राजाओंका तथा उसने जितना देश देखाथा उसका वर्णन इतना परमोत्कृष्ट कियाहै कि, योरोपके वर्त्तमान भुवनविख्यात संस्कृतज्ञ पंडित मोक्षमूलर महोदयने उसकी अत्यंत प्रशंसा की है। संप्रति यहांपर हमे यही बात प्रदर्शित करना अभीष्ट है कि, इसी हुएनसगने अपने ग्रंथमें हर्षराजाका वर्णन किया है। इससे यह बात निश्चित होतीहै कि, ईसवी सन ६५०के लागपर बाणकवि जीवित था। इस गुरुतापूरित शकके खोज लगानेकी प्रतिष्ठा सुयोग्य डॉक्टर हॉल साहिबको, कि जो पिछले दिनों कलकत्तेकी ओर थे, प्राप्त हुई है। इस छोटीसी बातसे हमारे आधुनिक विद्वान् यदि यह शिक्षा ग्रहण करें कि,विद्याकी सफलता पल्लवग्राहिपांडित्य और शुष्क तर्कनामे नही है, वैसेही जीवनका प्रधान अभिप्राय विलासप्रियता एवं तंद्रिलता नही है, जैसा कि वे अपने आचरणद्वारा लोगोको प्रायः प्रदर्शित किया करतेहैं, तौ बहुतकुछ लाभकी आशा की जा सकती है।

* सर्वसाधारणकी यह सम्मति विलसन साहिबको स्वीकृत नहीं है। आपने अपने कोशको-भूमिकामे एक स्थानपर यह लिखा है कि माधवाचार्य्यके शंकरविजय ग्रथ और आचार्य्यके ग्रंथाद्वारा इस मतके लिये कहीं कुछ आधार नहीं मिलता है, उक्त ग्रथ उनके स्वभावकी सौम्यता अवश्य प्रदर्शित करतेहैं।

बाणकविका अत्यंत प्रसिद्ध ग्रंथ कादंबरी है, और आजपर्य्यंत यही एक उसके नामसे विख्यात था पर अभी पीछे लिखही आये हैं कि, अब इधर 'हर्षचरित' नामका उसका एक दूसरा ग्रंथभी प्राप्त हुआ है। यह ग्रंथ अभी चारों ओर तादृश प्रसिद्ध नहीं हुआ है। तथापि उसके अभिधानसे यह बात स्पष्ट बोध होता है कि, जिस हर्षराजाने बाणभट्टको निज आश्रय प्रदान किया था उसका उसने इसमे वर्णन किया होगा। 'चडिकाशतक' नामक ग्रंथके विषयमेभी अब इधर सुना जाता है कि, वहभी बाणभट्टका लिखा हुआ है। इसके विषयमें एक अचरजकी बात कही सुनी जाती है। अभी ऊपर उल्लिखित होही चुकाहै कि, बाणभट्टके बालमित्रोमे मयूरभी था यह आगे बड़ा नामी कवि हुआ, इसने अपने महारोगनिवारणार्थ सूर्य्यस्तवरूप सूर्य्य-शतक* नामका एक काव्य प्रणीत कियाहै। इस पुण्यकर्म्मानुष्ठानद्वारा उसका महारोग दूर होगया और वह पूर्ववत् पुनः सुंदरकाय होगया। इस सूर्य्यप्रसादका बाणकविको बड़ा डाह हुआ और उसने अपने हाथ [illegible] टलिये! वे उसे पुनः उक्त काव्यद्वारा प्राप्त होगये। पीछे [illegible] भवभूतिविषयक आख्यायिकाओंके संबंधमे लिखतात्[illegible] विषयमे हम अपना मत प्रदर्शित करहीचुके हैं. [illegible] बात लिखेबिना लेखेनी आगेको सचालित नहीं हो[illegible] युक्तिसंगतता और सुंदरता इन दोनों गुणों[illegible] है। बाण कविके नामसे पार्वतीपरिणय नामका एक [illegible] है। इस नाटकके विषयमें हम अपनी संमति पीछे लिखचुके [illegible] और कुछ अधिक लिखना अभीष्ट नहीं [illegible] अपेक्षा और एक ग्रंथकी कर्तृता अपने [illegible] है। वह [illegible] ऐसा वैसा सामान्य ग्रंथ नहीं है [illegible] नाटिका [illegible] यह मत पूर्वोल्लिखित [illegible] है।

'रत्नावलीका' सुप्रसिद्ध रचयिता श्रीहर्ष हैं, पर अपना कवि जिसका आश्रित था वह हर्ष और यह यदि एकही हो तो इस प्रसिद्धिका कारण सहजहींमें कहा जा सकता है। वह कारण यही हो सकता है कि, राजाने बाणकविको द्रव्य दे उससे उक्त नाटिका लिखा ली है, और एकवार वह प्रसिद्ध हो वही प्रसिद्धि आजलो चली आती हो। उक्त साहेबको यह शंका उपस्थित होनेकेलिये यह कारण हुआहै कि 'रत्नावली' के कतिपय श्लोक हर्षचरितके श्लोकोंसे मिलते हैं। हमने 'हर्षचरित' देखा नही है, अतः इसके विषयमें हम दृढ़तापूर्व्वक यहांपर कुछभी नही लिखसकते। तौभी इतना लिखदेना आवश्यक समझते हैं कि, जब यह मत आज सैंकड़ो वर्षोंसे चलीआतीहुई प्रसिद्धिका विरोधी होगा तब जबलो विश्वासपात्र एवं दृढ़प्रमाण नही प्राप्त होतेहैं तबलों उक्त विवादका निर्णय करना अनुचितहै।

एक 'काम्दबरी' मात्र बाणकविका अत्युत्तम ग्रंथ है; इस ग्रंथका जितना भाग स्वयं बाणकविने लिखा है, उतनाही यदि उसका ग्रंथ माना जाय तौभी वह ग्रंथ बहुत कुछ बडा है, एतावता यह कहनेमे कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती कि, उसका कवित्त्वगुण उसमें बहुत समाविष्ट हुआहै। अतः उसके औरभी जो ग्रंथ होगे उनकी ओर दत्तचित्त न होकर संप्रति उक्त ग्रंथकोही समीप रखकर उसके कवित्वगुणकी परीक्षा लिखतेहैं। भरोसा तो है कि, इस कार्य्यमें हम धोखा न खाने पावेगे।

विषयवर्णनक्रमानुरोधसे तो यह समुचित था कि, यहांपर वर्त्तमान ग्रंथके संविधानकका (कथासूत्रका) उल्लेख किया जाता पर संप्रति यहांपर उसे लिखनेके लिये हम असमर्थ हैं। इसका कारण यही है कि, वह संक्षेपमे नहीं लिखा जा सकता और उसका योंही थोड़ा बहुत लिखा जाना केवल निरुपयोगी है। अतः इसकथानकके लिखनेको एक स्वतंत्रग्रंथ लिखना समझकर हम उसे यहां पर नहीं लिखते; और इस ग्रंथके विषयमे पूर्व्वक्रमानुसार सामान्य तथा हमें जो कुछ लिखना है उसका सहसा प्रारंभ करते हैं।

अंगरेजीमें जिस अद्भुत कथासमूहको, "रोमन्स" के नामसे पुकारते हैं,

समन्तादुत्सर्पन् घनतुमुलसेनाकलकलः
पयोराशेरोघःप्रलयपवनास्फालित इव ॥ ❋

उत्तररामचरित ५

भवभूतिके तीनो नाटकोंमेसे इतने श्लोकोंका यहांपर लिखाजाना वस्तुतः अधिक बोध होता है। पर यह अभीष्ट न होनेके कारण एतदर्थ हमारा पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी होना हमें आवश्यक नही बोध होता। हमारे देवोपम पूर्व्वपुरुषोंकी विशाल बुद्धिका ज्ञापक प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप जो विद्याका महान् भंडार हमारे पास है—कि, जो इस देशमात्रकी अति प्राचीन एवं अक्षय संपत्ति है; जिसे इसके पूर्व्व अपर देश निवासी राजागण अपहृत नहीं कर सके; और जो जगत्प्रलयपर्यंत हमारे नामकी प्राणपणसे रक्षा करनेके लिये बद्धपरिकर है; वर्त्तमान निकृष्ट अवस्थाके कारण हमलोग समस्त जगकी दृष्टिमे कैसेही दीन हीन दीख पड़तेहों, पर तौ भी जिसकी ओर देख अभीलो लोग हमें समादृत करते हैं, और इतःपर सुदैववशात् यदि हमलोगोंका उत्कर्ष पुनः हुआही तौ जिसके बीजस्वरूप हुए विना वह होही न सकेगा—उसके विषयमे केवल अंधपरंपराद्वारा सामान्यतः शुष्क अर्थवाद करनेकी अपेक्षा उसका यथार्थरूप और उसकी योग्यता सर्वसाधारणको प्रत्यक्ष करादेनेके लिये जो यत्न करता हो उसका पाठकोंके पठनपरिश्रमार्थ पद पदपर क्षमाप्रार्थी होना हम अत्यन्त अनुचित समझते हैं। जिस प्रकार किसी अबोध मनुष्यको उसके पिताका धरतीमें गडाहुआ अतुल धन पुनः दृग्गोचर करादेनेवाले पुरुषको उसे परिश्रम देनेके हेतु सकोच माननेकी कोई अवश्यकता नहीं है; उसी प्रकारसे अपने प्राचीन कविवरोंके वाग्रत्नोंकी सुन्दरताको अपने सर्व्वसाधारण पाठकोंके बुद्धिक्षेत्रमें लादनेकेलिये जो यत्न करता है उसे भी वारंवार अपने पाठकोंसे क्षमा मांगनेकी वैसी कुछ आवश्यकता बोध नहीं होती। अस्तु; हमारा अभिप्राय इतनाही है कि, जिस

❋ इसका अर्थ आगे चलकर लिखेंगे।

प्रीति एवं उत्साहके साथ हमने यह गुरुतर काम हाथमें लिया है, उसी भावको हमारे पाठक गणोंको अपने चित्तमें धारण कर हमारी सहायता करनी चाहिये, हमे भरोसा है कि, हमारे रसिक पाठकगण हमारी प्रार्थनाका सानंद स्वीकार करेगे।

संस्कृतके कवियोंमें परमविख्यात जो कालिदास और भवभूति उनके विषयमें हमें जो जो उचित जानपड़ा सो हमने अपने विवेकी पाठकोंकी सेवामें सानुनय भेट किया। अब यहांपर लेखके आदिमें जो प्रस्ताव कियाहै उसके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक जानपड़ता है। कालिदास और भवभूति की समानता करनेवाला तीसरा कोई कवि नहीं है अतः संस्कृतके परमोत्कृष्ट कविवृन्दमें यह दोही परिणत किये जाते हैं। इन दोनोंकी जैसी ही उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृतिजात थी वैसेही भाषाभी इनके आधीन अर्थात् अभिप्रायानुसारिणी थी। दोनोंकी कल्पना और पदरचनामें * नितांत सरलता, प्रौढ़ता रसिकतादि जो महाकवियोंके गुण हैं सो पूर्णरूपसे दृष्टिगत होतेहैं। दोनोका जीवनकाल एकही था वा कुछ २ निकटवर्ती था आदिके विषयमे ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। तौभी अत्यंत प्राचीन कालसे लोगोंकी दंतकथाओंके कारण दोनोंके कालकी ऐसी कुछ गुत्थमगुत्था हो गयी है कि, इतःपर उसका सुरझजाना असंभवसा बोध होता है, अनुसंधानप्रिय पंडितगण उसे नष्ट करनेके लिये प्रबल प्रमाणोंको भलेही उपस्थित करें, पर ये उभय कविमणि भोजराजाकी सभाके कवियोंमें शिरोरत्न थे, उस गुणिजनैकपक्षपाती राजाने उनका कण्ठमणिकी नाई संतत बड़े लाड़चावसे भरण पोषण किया है, घटना कैसीही क्षुद्र क्यों न हो—विषय तुच्छ भलेही हो, पर तौभी अपनी अस्खलित सरस्वतीके रससे वे लोग उसे भूषित करते, दोनोंकी प्रवचनपटुता तथा उक्ति प्रत्यु-

---

* हां, यह बात अवश्य देखी जाती है कि, पूर्वोल्लिखानुसार भवभूतिके ग्रथोंमें लबे २ समासघटक पद पाये जाते हैं, पर साथही वे सुबोध हैं और बहुत थोड़े स्थानोपर प्रसंगानुरोधके कारण व्यवहृत किये गये है। अतः वह उक्त उल्लेखके विरोधी नहीं हो सकते।

किमें सदैव झटापटी हुआही करती, और परस्परकी रसपूरित कृतियोंको देख क्षणभरकेलिये स्पर्धाको भूल हृदयोल्लास भरित हो उनका अभिनंदन करना, आदि असत्यमय भावनाओंमें ही रंग जाना मनको प्यारा लगता है; और जिन वृथासत्याभिमानी निठुर अनुसन्धानशील लोगोने उक्त मनोहर भ्रमोंको नष्ट करनेके हेतु अपनी बुद्धिको कष्ट दिया है, उन्हें शतश शाप देनेके लिये उद्यत हो उनके सर्वथा निर्द्धारित सत्यकी उपेक्षा करनेको वे तनिकभी नहीं हिचकते !



तदंतर्गत, "कादंबरी" परिणत की जा सकती है। इसग्रंथकी नायिका कादंबरी है। यह एक गंधर्वकी कन्या है। उज्जैनके राजपुत्र चंद्रापीडके साथ इसका विवाह हुआ है। यह राजपुत्र दिग्विजयकी अभीलाषासे प्रस्थित हो हिमालयपर कैलासके बगलमे डेरा डाले पड़ा हुआ था। एक दिन आखेटकी खोजमे फिरते फिरते वह एकाकी गंधर्वोंके देशमे जा निकला। आगे महाश्वेता और कादंबरीसे उसकी भेट हुई। महाश्वेता कादंबरीकी सखी और इस उपन्यासकी उपनायिका है। इसने पुंडरीक नामक ऋषि-कुमारसे विवाह किया था। जन्मांतरमे यही चंद्रापीडका मित्र वैशंपायन हुआ, और आगे महाश्वेताके शापार्थ पुनः तोता हुआ। कथाके आदिमे अंत्यजकन्या जिस सुग्गेको लेकर शूद्रक राजाके निकट आयी है वह यही कीर है। शूद्रकभी जन्मांतरका चंद्रापीड है। अस्तु इस समासकथानकद्वारा हमारे विज्ञ पाठकगण इस उपन्यासके संविधानक तथा उसके बृहत्काय एवं आश्चर्योत्पादक होनेका अनुमान सहजहीमे करसकते है। संविधानकचातुर्यही वस्तु है कि, जिसके द्वारा आख्यायिकाके प्रायः पर्यवसानपर्यंत आगे क्या क्या होगा उसकी पाठकोंको थाह न मिलने पावे और उनका कौतूहल सतत जागृत बना रहे। इस विशेषताको बाणकविने वर्त्तमान ग्रंथमे बड़ी निपुणतासे सन्नि-विष्ट किया है। आदि आदिमेही नही किंतु कथाके बीचोबीच आजाने परभी दीर्घ काललो उसके अवसानके विषयमे कुछभी अनुमान नही किया जा स-कता। आजपर्य्यंत सहस्रो मनुष्योंने यह कथा पढ़ीहोगी, पर हम नही सम-झते कि, उनमेसे कितने लोग इस मर्मको समझे होगे कि, शूद्रक और तो-ता इस कथाके यथाक्रम नायक और उपयनायक है। जो इसग्रंथके अभि-धानका प्रधान कारण है उसी मुख्य नायिकाका आधेसे कही अधिक ग्रंथ पढ़जानेपर परिचय मिलने लगता है, तबलो पाठकोको यह रहस्य यत्किंचित् भी नही विदित होता कि, इसग्रंथका नाम कादंबरी क्यो विहित किया गया है। आगे कथा जसी जसी बढ़ती जाती है वैसा२ उसमे यह संदेह उत्पन्न होता जाता है कि। निदान एककी वह अवस्था हुई—ग्रंथकार कथाके आरंभको

अर्थात् तोता राजासे और जाबालिमुनि शिष्योंसे बोल रहा है सो भूल तो नही गया? आदिआदिमे अंत्यजकी कन्यका एकबार आकर जो चपत हो जाती है सो अंत२के पृष्ठोमे जा पुनः दृष्टिगत होनेलगतीहै, वह जातिकी पतित होनेपरभी आदिमे उसके निरुपम सौंदर्य्यका इतना वर्णन क्यो किया गया है, उसने तोतेको राजके आधीन क्यों किया आदि बातोंका रहस्य बिलकुल अंतअंतमें जाकर ज्ञात होता है। तात्पर्य यह संविधानक अत्यंत निपुणताके साथ जोडा गया है, अब हिंदी आदिभाषाओमें इसकाव्यकी जो मधुरता लायी जायगी उसका इस संविधानककी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होना सर्वथा असंभवसा बोध होताहै।

पर यह संविधानक उक्त भव्यभवनकी नीवमात्र है। इसकी मधुर एवं प्रौढ वर्णरचना, श्लेषोकी खूबी, भिन्न२ स्थानोके चित्र विचित्र एव मनोहर वर्णन, आलापका प्रवाह आदिके गुणसमुच्चयद्वारा इसग्रंथको जो विलक्षण शोभा प्राप्त हुई है सो वर्णन शक्तिसे परे है। प्रथम तो गीर्वाणभाषाही अनेकगुणसंपन्न होनेके कारण नितांत मनोहर है तिसपर फिर उसका बाणभट्टजैसे सहृदय चतुर एवं कल्पनाशील कविके साथ मेल हो, उसके वह केवल आधीन होजाने पर पूछनाही क्या है? जो जो चमत्कार हों वे सब थोडे ही हैं। इसमें तनिकभी संदेह नहीं है कि, जिन जिन लोगोंने अपने कविके अपने पाठकोंको अपने प्रकृतिसुलभ वाग्विलासद्वारा आश्चर्यित करदेनेकी और उनके मनको ठौर ठौरपर चमत्कृत करनेकी शक्तिका स्वयं अनुभव लिया होगा उनमेसे ऐसा कौनसा रसिक है जो निम्न लिखित गोवर्द्धनोक्तिको यथार्थ मान शिरः प्रकंप न करेगा और उक्त आचार्यजीको न असीसेगा?

जाता शिखंडिनी प्राक् यथा शिखंडी तथाऽवगच्छामि
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥

"हम समझते हैं कि, जैसे पुराकालमें शिखंडिनी शिखंडी हुई वैसे-

ही अधिक प्रगल्भता प्राप्त करनेके हेतु वाणी (सरस्वती) बाण हुई" * आचार्य्यकी इसआर्य्याको पढ हम इस बातको निश्चित नही करसकते कि, यहांपर हम आचार्य्यके सहृदयताकी अधिक प्रशंसा करै वा उनकी चतुरताकी अधिक प्रशंसा करै !

सारांश यह ग्रंथ उक्त प्रकारसे अनेकगुणसंयुक्त होनेके कारण परम रणीक हुआ है । जिस किसीको हिंदूलोगोकी कल्पनाशक्ति, संस्कृतभाषाका शब्दार्थरूप अक्षय भंडार, उसका श्लेषादि विचित्रतोत्पादक असामान्य सामर्थ्य, उसके काव्यका नितांतोज्वलस्वरूप, आदिगुणोको एकत्रित हुए देखनेकी इच्छा हो उसकी इच्छा वर्त्तमानग्रंथ पूर्ण करसकता है। और इसके अतिरिक्त इस ग्रंथके अवलोकनद्वारा प्राचीनकालकी रीति भांति लोगोकी रहन सहन आदिकाभी परिचय मिलसकता है। परस्थ विजातीय लोगोद्वारा पद दलितहोनेके पूर्व्व इस सुवर्णभूमिके अपार विभवका जो दुंदुभी नाद दूर-दूरके देशोमें सुनाई पडता था उसका परिचय इस ग्रंथद्वारा जिस प्रकारसे प्राप्त हो सकताहै, वैसा कदाचित् और ग्रंथद्वारा न हो सकेगा ।

कादंबरीकी रचनाके विषयमें एक चमत्कृतिजनक घटना हुई है उसका भी उल्लेख यहांपर आवश्यक बोध होता है । इस ग्रंथके दो भाग है– पर वे कविकृत नही हैं किंतु कालकृत है । बाणकवि इस काव्यको अनुमान आधेतक लिख चुकेहोंगे कि, सहसा कराल कालने इन्हें कवलित करलिया पूर्व्वार्द्धके अंतमे अर्थात् जहांपर कथा-विच्छेद हुआ है वहां प्रारंभ किया हुआ (कादंबरीका) भाषण वैसाही अधूरा रह गया है सो वह अगले भागमे पूरा किया गया है । इस अनूठेकाव्यकी जिसने मनमें सृष्टि निर्म्मित की उसीके हाथसे वह अंतपर्य्यंत

* भारतांतर्गत उद्योगपर्वके अंतमें शिखंडीकी कथा वर्णितहै । काशीराजाकी कन्या अंबा भीष्मसे बदला लेनेकेलिये दूसरे जन्ममें पहिले शिखंडिनी हुई। आगे एक यक्षने आजन्मके लिये उसे अपना पुंस्त्व दिया तब वही शिखंडी हुई। अनंतर भीष्मके वधका कारण यही शिखंडी हुआ। अब इस कथाका अनुधावनकर हमारे आचार्य कहतेहै कि, ऐसेही वाणीका बाण (बवयोरभेदः) हुआ ऐसा हमस मझते हैं ।

पूर्ण नही होने पाया, इस बातको देखकर मनको बहुत खेद होताहै, और जानपडताहै कि, एतद्द्वारा संस्कृतभाषाको विषम हानि पहुची है । अस्तु, अब जो बात होगयी सो तो होही गयी पर आजदिन इस घटनाको देख परम संतोष होताहै कि, अधूरे रह गये हुए सुंदर भवनको देख दर्शकोको युगपत् आनद और शोक सर्वथा न होने देनेकी तजवीज बाणभट्टके पुत्रने कर-रक्खीहै । उसका रचा हुआ यह उत्तरार्द्ध यद्यपि पूर्वार्द्धकी योग्यताका नही हो सकता है तथापि इसमे अणुमात्रभी सदेह नही है कि, रसिकलोगोकी यह सेवा तदतिरिक्त कविद्वारा होना सर्वथा असभव था । सतत पिताके साथ रहनेके कारण और विशेषतः बाल्यावस्थासे उसकी शिक्षा पिताद्वा-राही हुइ होगी एतावता उसके कवित्वगुणकी झलकका उसपर पडना जैसा सभव था वैसा वह अपर कविके लिये सभव न था सो स्पष्टही है* सारांश दूसरे कविकी बुद्धि कैसोही विशाल क्यो न होती, और उसका ' कादबरी ' के साथ कैसाही घनिष्ठ परिचय क्यो न होता. पर तोभी

---

* संस्कृतके पडितोमे एक आख्यायिका प्रसिद्ध है कि, बाणकविने पञ्चत्वको प्राप्त होनेके पूर्व अपने ज्येष्ठपुत्रसे पूँछा कि, क्या तू मेरे इस अधूरे (कादबरी) ग्रथको पूरा कर-देगा ? उस ज्येष्ठपुत्रने जो कि, वैयाकरणकेसरी था, उत्तरमे कहा कि, हा मैं आपके इस अधूरे ग्रथको पूरा करदूगा । पुत्रके उत्तरको सुनकर बाणने अपने उस पुत्रसे कहा कि, तू इस समीपस्थ सूखे पेडका वर्णन कर । तेरे उस वर्णनको सुनकर मैं समझसकूगा कि, तुझसे यह ग्रथ पूरा होसकेगा वा नही । पिताकी आज्ञाके पाते ही उस पुत्रने नीचे लिखी-हुई पक्ति अपने मृत्युकी शय्यापर पडेहुए पिताको कहसुनाई ।

'शुष्को वृक्षास्तिष्ठत्यग्र'

इस पक्तिको सुन बाणकविको तादृश मनस्तुष्टि नही हुई । तब उसने अपने छोटे पुत्रसे कहा कि, तू तो इस सूखे पेडका वर्णन कर पिताकी आज्ञा पातेही उसने उसी पेडका वर्णन यो कह सुनाया ।

'नीरसतरुरिह विलसति पुरतः'

इस कर्णप्रिय रचनाको सुन पिताका (बाणका) चित्त प्रसन्न होगया और उसे तत्क्षण विश्वास होगया कि, मेरे अधूरे ग्रथको यह वास्तवमें पूर्णकरसकेगा । बाणने प्रसन्न होकर अपने छोटे पुत्रको आशीर्वाद दिया कि, तू मेरे इस ग्रथको पूराकरसकेगा। और तदनुसार उसने उसे पूरा भी किया ।

वह बाणपुत्रकी नांई कादंबरीको पूर्ण कदापि नहीं करसकता। स्वयं बाणकविही यदि इस अपूर्वकाव्यको शेष करपाते तो आजदिन उसका जो आकार है उसकी अपेक्षा डेवढ़ा तो वह अवश्य ही हो-जाता; साथही यहभी निःसंदेह बात है कि, संप्रति उत्तरार्द्धमे जितना रस पाया जाता है उससे वह कही अधिक पाया जाता तौभी यह बात कुछ सामान्य नही है कि, मृत्युकालके समय पिताने जो अल्पमात्र संविधानक बतलादिया था उसीके आधारसे पुत्रने उस कथाको ऐसी उत्तमतापूर्व्वक परिशेष किया कि, उसमें ऐसी कोई बात नही पायी जाती जो मूलग्रंथका विरोध करती हो। महान् महान् ग्रंथकारभी अपने समस्त काव्योंमेही नही किंतु, कभी कभी एकही काव्यमें एकसा रस लानेके लिये असमर्थ हुए हैं—क्योंकि शिल्पकार्यकी सफलता जितने समयके गुणसे संबंध रखती है उतना शिल्पीके परिश्रमसे नही रखती। विचारका स्थल है कि, विशालबुद्धिसंपन्न मिल्टनकवि जिस उत्तमताके साथ अपने 'प्यारांडेजूलास्ट' संज्ञक काव्यको पूर्णकरसके हैं उस उत्तमता-के साथ वह उसी काव्यके उत्तरभाग 'प्यारांडेजूरिगेड' को नही लिखसके उसी प्रकारसे यह बातभी अनेक बार दृष्टिगोचर हुई है कि, ग्रंथकारोंने अपनी प्राप्तपूर्व कीर्त्तिको अधिक बढानेके अभिप्रायसे अपने मूलग्रंथोमें हेरफेर किये, पर उनका परिणाम कुछ औरही हुआ, यही कारण है कि, चतुर-लोग काव्यादिग्रंथोंके एकबार उत्कृष्ट संपादित होजाने पर पुनः उनमे परिवर्त्तन नहीं करते। यह सब निजके ग्रंथोंके विषयमें कहा गया। फिर दूसरेके ग्रंथमे हाथ डाल उसमें उलटफेर करना वा कुछ काट छाँट करना कैसा दुरूह एवं गुरुतम कार्य्य है सो सब रसमर्मज्ञलोगोपर विदि-तही है! जैसे प्रत्येक मनुष्यका स्वभाव स्वरूप और स्वर एक दूसरेसे कदा-पि नही मिलते वैसेही परस्परके बुद्धिगुणभी परस्परके एकसे नही पाये-जाते। और इसके सिवाय एक बात यहभी देखनेमे आती है कि, बडेबडे कुशाग्रबुद्धिवाले मनुष्यकोभी दीर्घकाललों संतत परिश्रम करनेके कारण गुणपुंजमेंसे किसी एकहीमें अधिकतर निपुणता प्राप्त होती है और शेष

सब गुण योंही रहते हैं। किसीका चित्त गद्यकी ओर, किसीका पद्यकी ओर, किसीका इतिहासकी ओर, किसीका भिन्न २ शास्त्रोंकी ओर, जैसा २ आकृष्ट होता है और उसमे जैसा २ उसका प्रवेश होता जाता है उसी प्रकारसे वह उस विषयका पूर्ण वेत्ता होजाता है। एकही व्यक्तिमे अनेक गुण एकत्रित हुए हो ऐसे उदाहरण कालिदास, सीझर और आरस्टॉटल कैसे लाखोमे एकही दो पाये जाते है। सामान्यतः एकही गुण पूर्णतया प्राप्त करनेके हेतु कई जन्म बिताने पड़ते हैं। अभिप्राय यह है कि, जब एकका मन दूसरेके मनसे सर्वथा मेल नही खाता तब एककी कृतिमे (कवितामे) दूसरेका हाथ डालना प्रचंड साहसका कार्य्य है।

इस विषयमे प्राचीनकालका एक उदाहरण अत्यंत समर्पक है। उक्त चतुर चूडामणि सीझर बड़ा रणधुरंधर था, उसके विषयमे यह बात प्रसिद्ध है कि, लडाईमें उसे जो समय लिखने पढ़नेको मिल जाता था उसमे उसने अपनी चढ़ाइयोकी संक्षिप्त टिप्पणी लिखरक्खी हैं कि, जो आज दिन प्रसिद्ध हैं। उन टिप्पणियोके लिखनेमे उसका अभिप्राय यह था कि, मेरे पीछे कोई महान् इतिहासकार उस समयका इतिहास लिखतीबार मेरे लेखको आधार मानकर उसपर विस्तार करै, पर अचरजकी बात है कि, उक्त टिप्पणी आजदिनभी ज्योकी त्यो पायी जाती है और उस समयके इतिहासका परमोत्कृष्ट एवं विश्वासपात्र ग्रंथ वही माना जाता है सीझरबादशाहके अनंतर कई नामी इतिहासलेखक हुए पर उनमेसे एककोभी भरोसा न हुआ कि, मै उसकी उत्कृष्ट मूलरचनामें कुछ हेरफेर कर कुछ विशेषता प्राप्त करसकूंगा। सारांश निजकी नूतन रचना करना तादृश कठिन कार्य्य नही है पर दूसरेके ग्रंथमे जोड लगा दोनोका एक जी कर देना प्रतिसृष्टि निर्म्मित करनेकैसा प्रायः दुःसाध्य है सारांश ऐसे प्रचंड साहसकार्य्यमे यशलाभ करना सामान्य बात नही है। हम समझते हैं कि, "कादंबरी" परिशेषके विषयमें बाणतनय उक्त श्लाघ्य यशलाभ करसके हैं।

सुनाजाता है कि 'कादंबरी' के शेष भागको बापके पहिले श्राद्धके

पूर्वही अर्थात् एकसालके भीतर पूर्णकरनेकी उसने प्रतिज्ञा की थी और वैसाही किया भी।

बाणपुत्रका नाम क्या था सो विदित नही है। और उसका उसने कादंबरीके उत्तरार्द्धमे उल्लेखभी नही किया है, इसका कारण स्पष्टही है, उसने अपने पिताके अंतिम नियोगकी पूर्त्तिमात्र की है, उसमे कोई बात नई और निजकी नहीं है, इसके सिवाय जैसे चंद्रकांतका द्रवित होना चंद्रके आधीन रहता है उसी प्रकारसे बाणभट्टके पूर्वार्द्धकी शैलीका अनुधावन कर उसने उत्तरार्द्ध रचाहै अतः हम समझते हैं कि, पूरा ग्रंथ बापके नामसेही प्रसिद्ध हो इस उद्देशसे उसने अपना नाम जान बूझकर प्रगट नही किया। यह बात उसकी पितृभक्तिका प्रत्यक्ष प्रमाण बोध होती है इसके अतिरिक्त उत्तरार्द्धके आदिमे उसने जो थोड़ीसी प्रस्तावना लिखी है उससे उसका प्रकृतिसुलभ एवं बुद्धिसस्कारजन्य विनयभी स्पष्टतया बोध होताहै। इस प्रस्तावनाको पढ़ती बार मनकी कुछ विलक्षणही अवस्था हो जाती है। पाठकोको कथाकी नायिकापर्य्यंत पहुँचाके अपना कवि उन्हे भरकथामे लानेकेलिये उद्योग कर ही रहाथा कि, निठुर कालने उसके आयुष्यकी डोर काट दी, अतः यह अद्वितीय ग्रंथ ऐसाही अधूरा रह गया यह देखकर मन नितांत उदासीन हो जाता है। और अगला मंगलाचरणभी अमंगलवत् जान पडने लगताहै। अगले पद्य प्रस्तावनास्वरूप होने परभी ऐसे जान पडते है मानो वे कविविषयक विलापके है, और मनमें इस वृत्तिका संचार होनेका प्रधान कारण तदतर्गत वृत्तोंकी मंदता बोध होतीहै। वशपरंपरागत बिरलेही स्थानमे पाये जानेवाले बुद्धिगुणको इन पितापुत्रमे एकत्रित पा और इस अभूतपूर्व घटनाको देख मन कौतूहलसमुद्रमें मग्न हो जाता है-अर्थात् बापकी कृतिका बेटेके हाथसे पूरा होना देखकर मन नितांत आश्चर्यित होता है; और मन वहीसे भयचकित होने लगता है कि, ऐसे प्रचंड साहसकार्य्यमें हमारे होनहार कविको क्योकर यशलाभ हो सकेगा. पर ग्रंथ आगेको जैसाजैसा पढ़ते जावो वैसा वैसा वह भय दूर होते जाता है और अंतमें उसे प्राप्तयश देख प्रसन्नता होती है।

'कादंबरी' शृंगाररसप्रधान ग्रंथ है। इस रसकी अपेक्षा इसमें किंचिदून कहीं कही अद्भुत और करुणारस भी पाये जाते हैं; और अपर रसोंकी तो योहीं कही २ प्रसंगवश झलकमात्र देख पड़ताहै। इस ग्रंथके पदरचनाकी विशेषता अर्थात् लंबे २ समास प्रयुक्तकरनेकी रीति इसके प्रत्येक पृष्ठमें स्पष्टरूपसे दीख पडती है। यह रीति कालिदास, भर्तृहारि प्रभृति प्राचीन कवियोंके ग्रंथोंमे बिलकुल नही देख पड़ती। उनके ग्रंथोंमें चारपांच पदोंके समाससे अधिक पदके समास बहुतही कम पाये जाते हैं, परंतु कालक्रमानुसार जबसे यह प्राथमिक सरल रीति उठकर कविताको सजानेकेलिये यत्न किया जाना प्रारंभ हुआ, तबसे बड़े २ समासप्रयोगद्वारा रचनाको विचित्रकरनेकी प्रथा चल निकली, यह प्रणाली पद्यकी अपेक्षा गद्यमे अधिकतर स्वल्पकष्टसाध्य एवं विशेष शोभाप्रद होनेके कारण गद्यरचनाकी परिपाटी चल निकली होगी ऐसाभी अनुमान किया जा सकता है। सम्प्रति संस्कृतके लभ्यमानग्रंथोंको देख यह अनुमान होता है कि, इस नई परिपाटीका उत्पादक सुबंधु कवि होगा। उसीको आगे बाणभट्ट और दंडीने अनुसृत किया *। पीछे यह बात उल्लिखित होही चुकीहै कि, भवभूतिनेभी प्रसंगानुरोध वश ऐसी सजावट कही कही की है।

अब यह रचना सदोष है वा निर्दोष है इसके विषयमें यहांपर कुछ लिखना आवश्यक बोध होता है। आजकल इस बातका अनुमान कर लेना किंचित् कठिन जान पड़ता है कि, जिस समय चारों ओर संस्कृत भाषाका पूर्ण अधिकार था उस समय ऐसी रचना कैसी विलक्षण जान पडती होगी। तथापि उसकी ओरसे पाठकोंको थोड़ासा वृत्तांत सूचित करना आवश्यकीय जान पड़ता है। प्रथम तौ यह बात सिद्धहीसी बोध होती है कि, जब बाण और भवभूति जैसे सुप्रसिद्ध कविगणोनेभी उसका अपने ग्रंथोमे प्रयोग किया है तो निदान इस बातके मानलेनेमे क्या हानि है कि, उक्त रचनाको तत्कालीन पंडितोने सदोष नही माना। क्योंकि उक्त बात

* यह लेख जब प्रथम लिखा गया तब हमारी यही सम्मति थी पर अगले दंडीके निबंधद्वाराज्ञात होजायगा कि, यह हमारी भूल थी।

यदि वैसी न होती तो इन लोगोकी कीर्तिही कदापि न होने पाती। यह बात अवश्य मानी जा सकती है कि, उस समय संस्कृत भाषाका प्रचार न्यून होकर वह केवल उच्चपदाभिषिक्त तथा विद्वान् लोगोद्वाराही व्यवहृत की जाती होगी, तौ भी इसमे अणुमात्रभी संदेह नही है कि, उक्त पद रचनाको विलक्षण निश्चित करनेकेलिये उक्त लोग थोड़े बहुत अधिकृतथे। पर उनके अनंतर और कुछदिन बीत जानेके कारण अब हमलोगोको वह अधिकारभी नहीं रहा। ऐसी अवस्थामें इसके विषयमे संमति और भविष्यत्मे केवल बाह्यतः मात्र मत देनेका अधिकार रहगया है अर्थात् यह पदरचना कानोको कैसी लगती है, इसके योगसे मन चमत्कृत हो अनंदानुभव करता है वा नहीं। अब इस दूसरी बातके संबधमे नूतन मत प्रकाशित करनेकी वैसी कुछ आवश्यकता नहीं दीख पड़ती। बाणकविका यह ग्रंथ आज बारा सौ वर्षसे विद्वान्लोगोके समीप विद्यमान है और गोवर्द्धनाचार्यप्रभृति सहृदयधुरीण रसिकलोगोने उसे कसोटी लगाकर परमोत्कृष्ट निर्द्धारित कियाहै। एतावता हम समझते है कि,हमारा निम्नलिखित मत उन्हीके पुनरुच्चारणकैसा है। कादंबरीमे शृंगाररसही प्रधान होनेके कारण कवि*उसकी पदरनाको मार्दव एवं लालित्यादिगुणोद्वाराविशेषरूपसे अलंकृत करसका है। साथही प्रसादगुणकी इसकाव्यमे प्रचुरता पायी जाती है।यह बाते यहांपरस्पष्टरूपसे उल्लिखित करनेका कारण स्पष्टही है कि, इसमे बड़े २ समास और बीचबीचमे बहुतसी वक्रोक्ति यद्यपि लायी गयी तौभी ग्रंथके पढ़ते ही वे सब समझमे आजातीहै। अर्थकी तिलमात्रभी हानि वा क्लिष्टता न होनेदेते बाणभट्टने श्लेषादि विचित्र रचना की इससे संस्कृतभाषा उसके वशमे किस प्रकार थी सो स्पष्टरूपसे जाना जा सकता है पीछे लिखी हुई गोवर्द्धनाचार्य्यकी आर्य्या और "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्व्वम्"। इतिप्रसिद्ध वाक्यका मुख्यार्थभी वही है। यह ग्रंथ पढती बार के

उठाने पडते है, एक तो

ठीक प्रकारसे ध्यानमे आनेके लिये उसके भिन्नटप्पोंकी ओर दत्तचित्त रहना पडता है, और दूसरे यह कि, ऐसे वर्णनोमें अनेक कल्पनाओकी एकही स्थानमें गुत्थमगुत्था होनेके कारण उनमेंसे प्रत्येकके ठीक ठीक समझमे अततक ठहरना पड़ताहै । पर यह श्रम ऐसे हैं कि, पढनेके आनन्दमें इनका ज्ञानलों नही होने पाता ।

अब इस ग्रंथके कतिपय परमोत्तम संग्रह पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत किये जाते हैं ।

प्रथमतः शृंगारके उदाहरण लिखे जाते हैं । यही रस वर्त्तमानकाव्यमे प्रधान है सो पीछे लिखहीचुके हैं,और यह रस अपने कविको कितना प्रिय था सो उसकी प्रस्तावनामात्रसे ज्ञात हो सकता है । दुष्टोकी निंदा और सज्जनोकी स्तुति करना यह कवियोका संप्रदाय प्रायः निश्चितही हो गया है सो उसका अनुधावन कर हमारे कवि लिखते हैं:-

कटु क्वणंतो मलदायकाः खला-
स्तुदन्त्यलं बंधनशृंखला इव ।
मनस्तुसाधुध्वनिभिः पदेपदे
हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥

"दुर्जनलोग पांवोंकी बेडियोंकी नांई कर्णकटु शब्द (भाषाण) बोलतेहैं । और मलके (पापके) भागी बना देते हैं । पर सज्जनलोग मणिनूपुरकीनाई मंजुल शब्दोंद्वारा(मधुरभाषणद्वारा) पदपदपर मनको रिझाते है ।

'हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः'
अर्थात्-

उक्त पद्यके उत्तरार्द्धमे कविके मनकी झांई कैसी स्पष्ट दीखपड़तीहै । जयदेवस्वामीने जो कहा है कि, कवितावृधके हृदयमें वास करनेवाला

साक्षात् पंचबाण (मदन) ही बाण कवि है उसकाभी अभिप्राय यही है। *

इन उक्त पदोंकी सार्थकता अगले संग्रहोंद्वारा प्रत्यक्ष होजायगी:—

आदिके शूद्रक राजाके स्नान समारोहका वर्णन—

अवतीर्णस्य जलद्रोणीं वारविलासिनीकरमृदितसुगंधामलकोपलिप्तशिरसो राज्ञः समंतात् समुपतस्थुरंशुकनिबद्धस्तनपरिकराः दूरसमुत्सारितवलयबाहुलताः समुत्क्षिप्तचरणाभरणाः कर्णोत्संगोत्सारितालकाः गृहीतजलकलशाः स्नानार्थमभिषेकदेवता इव वारयोषितः। ताभिश्च समुन्नतकुचमंडलाभिः वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षणं रराज राजा। द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिकधवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह। ततस्ताः काश्चित् मरकत कलशप्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्ति-

---

* धर्मदास नामके कविने अपने 'विदग्धमुखमंडन' संज्ञक ग्रंथमे ऐसेही आशय की, एक छेकापह्नुति लिखी है। वह यह है.—

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत्किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

कोई कहता है "अहाहा! उसके स्वर वर्ण और पदोंका सौंदर्य्य कैसा अनोखा है, रस और भावसे चुहचुहाती हुई होनेके कारण वह सबके मनपर बड़ी गंभीर चोट करती है।" यह सुनकर दूसरा उससे पूछता है कि, भाई क्या यह कोई नायिका है? ॥ उत्तरमें वह कहता है "नहीं नहीं वह नायिका नहीं है" मैंने यह मधुरशील बाण कविकी वाणीका वर्णन किया है॥

उक्तआर्य्याके 'स्वर' 'पद' 'रस' और 'भाव' श्लिष्ट हैं। इनके अपर अर्थभी स्पष्ट ही हैं।

मत्यः पत्रपुटकैः काश्चिद्रजतकलशहस्ता रजन्य इव पूर्णचंद्रमंडलविनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण काश्चित् कलशोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्रशरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलशैस्तीर्थजलेन काश्चित् मलयसरित इव चंदनमिश्रेण सलिलेन काश्चिदुत्क्षिप्तकलशपार्श्वविन्यस्तहस्तपल्लवाः प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः प्रत्यंगुलिविवरविनिर्गतजलधाराः सलिलयंत्रदेवता इव काश्चिज्जाड्यमपनेतुमाक्षिप्त बालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलश हस्ताः कुंकुमजलेन वारांगनाः क्रमेण राजानमभिषिषिचुः ॥

कादंबरी और चंद्रापीड़की पहिली भेंट होनेके अनंतर उसे रहनेके लिये क्रीडापर्वतस्थ बंगला दिलाकर महाश्वेता कादंबरीके पितासे मिलनेके लिये निकल गयी । यह क्रीडाशैल कादंबरीके महलके बगलमें ही था । पार्श्ववर्त्ती उपवनोंकी शोभा देखनेके हेतु चंद्रापीड बाहर आये हुए हैं यह देखकर मदनविवश कादंबरी कुलीनतोचित लज्जाको तिलांजलि दे उन्हें देखनेके लिये अपनी अटारीपर आ उपस्थित हुई । उस समयका वर्णनः—

कादंबरी तु तं दृष्ट्वा चिरयतीति महाश्वेतायाः किल वर्त्मावलोकयितुं विमुच्य तं गवाक्षं अनंगाक्षिप्तचित्ता सौधस्योपरितनं शिखरमारुरोह । तत्र च विरलपरिजना सकलशशिमंडलपांडुरेणातपत्रेण हेमदंडेन निवार्यमाणा-

तपा चतुर्भिर्बालव्यजनैश्च फेनशुचिभिरुद्धू-
यमानैरुपवीज्यमाना शिरासि कुसुमगंधलु-
ब्धेन भ्रमता भ्रमरकुलेन दिवापि नीलावगुंठ-
नेव चंद्रापीडाभिसरणवेशाभ्यासमिव कुर्वती
कैलासशिखर इव गौरी मुहुश्चामराशिखां समा
सज्य, मुहुश्छत्रदंडमवलंब्य, मुहुस्तमालिका
स्कंधे करौ विन्यस्य, मुहुर्मदलेखां सखीं परि
ष्वज्य, मुहुः परिजनांतरितसकलदेहा नेत्र-
त्रिभागेण मुहुरावलितत्रिवलीवलया परि-
वृत्य मुहुः प्रतिहारीवेत्रलताशिखरे कपोलं
निधाय, मुहुर्निश्चलकराविधृतामधरपल्लवे
वीटिकां विनिवेश्य, मुहुरुद्धूर्णकर्णोत्पलप्रहा-
रपलायमानपरिजनानुसरणदत्तकतिपयपदा
विहस्य, तं विलोकयन्ती तेन च विलोक्य-
माना महांतमपि कालमतिक्रांतं नाज्ञासीत् ॥

वही घटना फिर—

अनतिदूरं गतायां च तस्यां क्रीडापर्वतकगतं
उदयगिरिगतमिव चंद्रमसं, चंदनदुकूलहार-
धवलं चंद्रापीडं द्रष्टुमुत्सारितवेत्रछत्रचामर-
चिह्ना निषिद्धाशेषपरिजनानुगमना तमा-
लिका द्वितीया चित्ररथसुता पुनरपि तदेव

सौधशिखमारुरोह । तत्रस्था च पुनस्तथैव विविधविलासतरंगितैर्विलोकितैर्जहारास्य मनः । तथा हि मुहुर्नितंबबिंबन्यस्तवामहस्तपल्लवा अंसप्रावृतांशुकानुसारप्रसारित दक्षिणकरा निश्चलतारका लिखितेव मुहुर्जृंभिकारंभदत्तोत्तानकरतलतया तद्गोत्रस्खलनभिया निरुद्धवदनेव मुहुरंशुकपल्लवताडितनिश्वासामोदलुब्धमधुकरमुखरतया प्रस्तुताह्वानेव मुहुरनिलगलितांशुकसंवरणसंभ्रमद्विगुणीकृतभुजयुगलप्रावृतपयोधरतया दत्तालिंगनसंज्ञेव मुहुः केशपाशाकृष्टकुसुमपूरितांजलिसमाघ्राणलीलया कृतनमस्कारेव मुहुरुभयतर्जनीभ्रमितमुक्ताप्रलंबतया निवेदितहृदयोत्कलिकोद्गमेव महुरुपहारकुसुमस्खलनविधुतकरतलतया कथितकुसुमायुधशरप्रहारवेदनेव मुहुर्गलितरशनानिबिडनियमितचरणतया संयम्यार्पितेव मन्मथेन, मुहुश्चलितोरुविधृतशिथिलदुकूला क्षितितलदोलायमानांशुकैकदेशाच्छादितकुचा चकितपरिवर्त्तनत्रुटच्चत्रिवलीलता अंसस्रस्तचिकुरकलापसंकलनाकुलकरकमला, कटाक्षक्षेपधवलीकृतक-

गौत्पलं विलक्ष्य च स्मितसुधाधूलिधूसरित कपोलं साचीकृतवदनमनेकरसभंगिभंगुरं विलोकयन्ती तावदवतस्थे, यावदुपसंहृतालोको दिवसो बभूव ॥

उक्त उभय संग्रहोमे कादंबरीकी मुग्धलीलाओंका वर्णन कितनी उत्तमताके साथ किया गया है। इसीप्रकारके औरभी संग्रह यथेष्ट उद्धृत होसकते है, पर वर्तमान ग्रथके शृंगारका रसिक पाठकोको परिचय करा उन्हे उसका प्रेमी बनादेनेके लिये उक्त तीनही संग्रह अलम् होंगे। तथापि यहांपर औरभी एक स्थानका विशेषरूपसे निर्देश किये विना हमसे नही रहा जाता। पीछे यह तो लिखही आये है कि, चंद्रापीड मृगयाकी चिता करते करते गंधर्वोंके प्रदेशको अकेलाही पहुंच गया। आगे कविने तदर्थ एकसे एक अद्भुत घटनाएं घटित की है। पहिली घटना अच्छोदनामक विस्तृत एवं रम्य सरोवरका दर्शन, दूसरी उस निर्जनवनमे दूरपर्य्यंत श्रवणगत होनेवाला मधुर गायनस्वर। और तीसरी शिवालयमे बैठ शिवगीत गानेवाली दिव्य कन्याका दर्शन। यह कन्या महाश्वेता है, आगे उस कन्याने जब राजाको आदरातिथ्यद्वारा समादृत किया तब राजाने उसका परिचय चाहा। उत्तरमें उसने अपना गधर्वकुलका जन्म निवेदन कर पुंडरीक नामक एक दिव्य ऋषिकुमारके साथ उसकी अचानचक भेट कैसे हुई, दोनोमें तत्क्षण प्रेम किसप्रकार अंकुरित हुआ, और अंतमें रात्रिके समय तदर्थ अभिसरण करनेपर उसे मदनव्यथाद्वारा गतप्राण देखकर वह कैसी विषम अवस्थाको प्राप्त हुई, आदि सब अपनी कथा उसने उसे पूरी पूरी कह सुनायी, यह कथाभाग अत्यंतही हृदयभेदक है। इसमे शृंगार, करुणा और अद्भुत ये तीनों रस मिश्रित पाये जाते है। यहांपर शृंगारका अंश अत्यत शुद्ध होनेके कारण और साथही महाश्वेताके मनकी गंभीरता दिखलायी जानेके कारण इस कथाभागको विशेष शोभा प्राप्त हुई है। स्थानौचित्यकीभी यहांपर किसी प्रकारकी ऊनता नही है—हिमालयके

गगनभेदी उत्तुंग प्रदेश यहांके स्थान हैं। सारांश जिस प्रकारसे चंद्रापीडको इस प्रदेशमें प्रथम पदार्पण करतेही नितांत विस्मय एवं हर्ष हुआ, वैसेही पाठकोंकोभी होता है; और अगला वृत्तांत जाननेके हेतु उनका रसिक मन परमोत्कंठित होता है, पर उनके कल्पनाकी दौड यथार्थ घटनाओं नहीं पहुंचपाती। अस्तु; इस स्थलके वर्णनको यहांपर उद्धृत करनेके लिये स्थलाभाव होनेके कारण हम विवश हो अपने रसिक एवं विवेकी पाठकोंको मंत्रणा देते हैं कि, वह मूलग्रंथद्वारा अपनी मनस्तुष्टि करलेवें।

शृंगारके अतिरिक्त औरभी रस इस ग्रंथमे कहीं कही पाये जाते हैं, पर वे अप्रधान होनेके कारण उनके उदाहरण यहांपर लिखना अभीष्ट नही जान पडता। अतः यहांपर अब इस ग्रंथमे ठौर ठौर पर जो रसपूरित वर्णन उपलब्ध होते है उन्हे अपने पाठकोको भेंट करते हैं।

कथाके आदिमे तोता जिस विशाल शाल्मलीवृक्षपर रहता था उसका वह वर्णन करता हैः—

तस्यैव पद्मसरसः पश्चिमे तीरे राघवशरप्रहारजर्जरितजीर्णतालतरुषंडस्य च समीपे दिग्गजकरदण्डानुकारिना जरदजगरेण सततमावेष्टितमूलतया बद्धमहालवाल इव तुंगस्कंधावलंबिभिरानिलवेल्लितैरहिनिर्मोकैर्धृतोत्तरीय इव दिक्चक्रवालपरिमाणमिव गृह्णता भुवनांतरालविप्रकीर्णेन शाखासंचयेन प्रलयकाल ताण्डवप्रसारितभुजसहस्रमुडुपतिशकलशेखरमिव विडंबयितुमुद्यतः पुराणतया पतनभयादिव गगनस्कंधलग्नः निखिलशरीरव्यापिनीभिरतिदूरोन्नताभिर्जीर्णतया शिराभिरिव परिगतो व्रततिभिः जरातिलकबिंदुभिरिव कं-

टकैराचिततनुः इतस्ततः परिपीतसागरसलिलै-
र्गगनागतैः पत्ररथैरिव शाखांतरेषु निलीयमानैः
क्षणमंबुभारालसैरार्द्रीकृतपल्लवैर्जलधरपटलैरप्य-
दृष्टशिखरदेशः तुंगतया नंदनवनश्रियमिवाव-
लोकयितुमभ्युद्यतः समीप वर्त्तिनामुपरि संच-
रतामंबरतलगमनखेदायासितानां रविरथतुरंग-
माणां सृक्कपरिस्रुतैः फेनपटलैः संदेहिततूलरा-
शिभिर्धवलीकृतशिखरशाखः वनगजकपोलकं-
डूयनलग्नमदनिलीनमत्तमधुकरमालेन लोहशृं-
खलाबंधनिश्चलेनेव कल्पस्थायिना मूलेन समु-
पेतः कोटराभ्यंतरनिविष्टैः स्फुरद्भिः सजीव
इव मधुकरपटलैः दुर्योधन इवोपलक्षितशकु-
निपक्षपातः नलिननाभ इव वनमालोपगूढः
नवजलधरव्यूह इव नभसि दर्शितोन्नतिः अ-
खिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवताना-
मधिपातिरिव दण्डकारण्यस्य नायक इव सर्वेव-
नस्पतीनां सखेव विंध्यस्य शाखाबाहुभिरुपगू-
ह्येव विंध्याटवीमवस्थितो महान् जीर्णः शाल्म-
लीवृक्षः ।

प्रथम तो तोते का इतिहासही बडा विलक्षण है। तिसमेंभी जब वह शा-
ल्मलीवृक्षपर था तबका वृत्तांत अर्थात् शबरोंने उस वनमें आखेट की, अतमें
एकने उस पेड़पर चढ अनेक सुग्गोंको मारकर नीचे डाल दिया उस अचित्य

एवं विषम आपत्तिसे इसने अत्यंत विलक्षणतापूर्वक अपनी रक्षा की आदि घटनाएं बहुतही चमत्कृतिजनक हैं और साथही उनका वर्णनभी परमोत्तम है। उन्हें पढ़तेही मन कौतूहलमग्न हो जाता है और जान पडने लगता है कि, मानों वे अगले ग्रंथकी उत्तमताका आश्वासन दे रहे हैं। उक्त वर्णन उन्हीका एक छोटासा अंश है। इसका रस उदात्त है। इस रसके औरभी उदाहरण इस ग्रंथमें कई स्थानपर पाये जाते हैं। उनमेंसे एक निम्नलिखितभी है कि, जिसमें उक्त अच्छोदसंज्ञक सरोवरका वर्णन किया गया है:—

प्रविश्य च तस्य तरुषंडस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याःस्फटिकभूमिगृहमिव वसुंधरादेव्याः निर्गमनमार्गमिव सागराणां निष्यंदमिव दिशामवतारमिव जलाकारं गगनतलस्य कैलासमिव द्रवतामापन्नं तुषारगिरिमिव विलीनं चंद्रातपमिव रसतामुपेतं हराट्टहासमिव जलीभूतं त्रिभुवनपुण्यराशिमिव सरोरूपेनावस्थितं वैदूर्य्यगिरिजालमिव सलिलाकारेण परिणतं शरदभ्रवृंदमिव द्रवीभूयैकत्र निष्यंदितमादर्शभवनमिव प्रचेतसः स्वच्छतया मुनिमनोभिरिव सज्जनगुणैरिव हरिणलोचनप्रभाभिरिव मुक्ताफलांशुभिरिव निर्मितनापूर्णपर्य्यंतमप्यन्तःस्पष्टदृष्टसकलवृत्तांततया रिक्तमिवोपलक्ष्यमाणमनिलोद्धूतजलतरंगशीकरधूलिजन्मभिः सर्वतः समुत्थितैः संरक्ष्यमाणमिवेन्द्रचापसहस्रैः प्रतिमानिभेनांतःप्रविष्टसकलकाननशैलनक्षत्रग्रहचक्रवालं त्रिभु-

विक्षिप्तफेनपिंडं क्वचिदैरावतदशनमुसलखंडित-कुमुदखंडम् यौवनमिवोत्कलिकाबहुलम् उत्कं-ठितमिव मृणालवलयालंकृतं महापुरुषमिव मीनमकरकुम्र्मचक्रप्रगटलक्षणं षण्मुखचरितमिव श्रूयमाणक्रौंचवनिताविलापं भारतमिव पांडुधा-र्त्तराष्ट्रकुलपक्षकृतक्षोभममृतमथनसमयमिव ती-रावस्थितशितिकंठपीयमनविषं कृष्णबालच-रितमिव तटकदंबशाखाधिरूढहरिकृतजलप्रपा-तक्रीडं मदनध्वजमिव मकराधिष्ठितं दिव्यमिवा-निमिषलोचनरमणीयमरण्यमिव विजृंभमाणपुं-डरीकमुरगकुलमिवानंतशतपत्रपद्मोद्भासितं कं-सबलमिव मधुकरकुलोपगीयमानकुवलयापी-डं कद्रुस्तनयुगलमिव नागसहस्रपीयमानपयो-गंडूषं मलयमिव चंदनशिशिरवनं असत्साधन-मिवादृष्टांतमतिमनोहरमाल्हादनं दृष्टेरच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्।

विंध्याटवीमें उक्त शबरोंके मृगयार्थ धूमधाम मचा देनेपर उनका सेना-पति उक्त सेमरके पेडके नीचे श्रमनिवारणार्थ बैठगया उस समयका वर्णनः—

ततः स शबरसेनापतिरटवीपरिभ्रमणसमुद्भवं श्रम-मपनिनीषुरागत्य तस्यैव शाल्मलितरोरधश्छा-यायामवतारितकोदण्डस्त्वरितपरिजनोपनीते प-

ल्लवासने समुपाविशत्। अन्यतमस्तु शबरयुवा ससंभ्रममवतीर्य तस्मात् करयुगलपरिक्षोभितांभसः सरसो वैदूर्यद्रवानुकारि प्रलयदिवसकरकिरणोपतापादंबरैकदेशमिव विलीनमिंदुमण्डलादिव प्रस्यंदितं द्रुतामिव मुक्ताफलनिकरमत्यच्छतया स्पर्शानुमेयं हिमजडमरविंदकोपरजःकषायमंभः कमलिनीपत्रसंपुटेन प्रत्यग्रोद्धृताश्च धौतपंकनिर्म्मला मृणालिकाः समुपाहरत्। आपीतसलिलश्च शबरसेनापतिस्ता मृणालिकाः शशिकला इव सैंहिकेयः क्रमेणादशत्। अपगतश्रमश्चोत्थाय परिपीतांभसा सकलेन तेन शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैरभिमतं दिगंतरमयासीत् ॥

चंद्रापीडका विद्याध्ययन पूर्ण होजानेपर उनके पिता उन्हें उज्जयिनीको लौटा लाये और उन्हें उनने युवराजपदाभिषिक्त करना विचारा। तब एक दिन उनके पिताके मंत्री शुकनासने उन्हे उस प्रसंगानुकूल उचित उपदेश प्रदान किया। यह उपदेश सामान्यपुस्तकके आठ दश पृष्ठोमे समाविष्ट होसके इतना है। इसमे तारुण्य, राजलक्ष्मी, ठकुरसोहाती करनेवाले नरपिशाच एवं धूर्त्तलोग आदि द्वारा राजपुत्रोंको जो जो अनर्थकारक आपत्ति होती है उनका कविसंप्रदायानुरूप अलंकारिक वर्णन किया गया है। इस स्थलपर बाणकविने अपने शब्दार्थके अक्षय कोशको पूर्णरूपसे प्रगट किया है। इसमेंसे राजलक्ष्मीके वर्णनको हम अपने रसिकपाठकोंके पठनार्थ यहांपर उद्धृत करतेहैं।

आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इयं हि सुभटखड्गमंडलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरीलक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागमिंदुशकलादेकांतवक्रतामुच्चैःश्रवसश्चंचलतां कालकूटान्मोहनशक्तिं मदिराया मदं कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्य्यमित्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वेवोद्गता । न ह्येवंविधमपरमपरिचितमिव जगति किंचिदस्ति । यथेयमनार्य्या लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते दृढगुणपाशसंदाननिष्पंदीकृताऽपि अपक्रामति उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापंजरविधृताऽपि अपक्रामति मदजलदुर्दिनांधकारगजघटितघनघटाटोपपरिपालिताऽपि प्रपलायते न परिचयं रक्षति नाभिजनमीक्षते न रूपमालोकयते न कुलक्रममनुवर्तते न शीलं पश्यति न वैदग्ध्यं गणयति न श्रुतमाकर्णयति न धर्म्ममनुरुध्यते न त्यागमाद्रियते न विशेषज्ञतां विचारयति नाचारं पालयति न सत्यमनुबुध्यते न लक्षणं प्रमाणीकरोति गंधर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति । अद्याप्यारूढमंदरपरिवर्त्तावर्त्तभ्रांतिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकंटकक्षतेव न क्वचिन्नि-

र्भरमाबध्नाति पदं अतिप्रयत्नविधृताऽपि परमेश्वरगृहेषु विविधगंधगजगंडमधुपानमत्तेव परिस्खलति पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति विश्वरूपत्त्वामिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्त्तिं अप्रत्ययबहुला च दिवसांतकमलमिव समुपचितमूलदंडकोषमंडलमपि मुंचति भूभुजं लतेव विटपकानध्यारोहति गंगेव वसुजनन्यपि तरंगबुद्बुदचंचला दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रांतिः पातालगुहेव तमोबहुला हिडिंबेव भीमसाहसैकहार्य्यहृदया प्रावृडिव अचिरद्युतिकारिणी दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति सरस्वतीपरिगृहीतं ईर्षयेव नालिंगति जनं गुणवंतमपवित्रमिव न स्पृशति उदारसत्वममंगलमिव न बहुमन्यते सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति अभिजातमहिमिव लंघयति शूरं कंटकमिव परिहरति दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति विनीतं पातकिनामिव नोपसर्पति मनस्विनमुन्मत्तमिव हसति परस्परविरुद्धं च इंद्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथाहि सततमुष्माणमारोपयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति उन्नतिमादधानाऽपि नीचस्वभावतामाविष्करोति तोयराशिसंभवाऽपि तृष्णां संवर्द्धयति

ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति बलोप-
चयमाहरंत्यपि लघिमानमापादयति अमृतसहो-
दरापि कटुविपाका विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना
पुरुषोत्तमरताऽपि खलजनप्रिया रेणुमयीव स्वच्छ-
मपि कलुषीकरोति यथा यथा चेयं चपला दीप्य-
ते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म
केवलमुद्वमति ॥ ”

चंद्रापीडके दिग्विजयार्थ प्रस्थित होनेपर उसके सैन्यकी पद-रज उडी थी उसका वर्णन नीचे उद्धृत किया जाता है—

शनैः शनैश्च बलसंक्षोभजन्मा क्षितेरनेकवर्णतया
क्वचिज्जीर्णशफरक्रोडधूम्रः क्वचित् क्रमेलकसटा-
सन्निभः क्वचित् परिणतरल्लकरोमपल्लवमलिनः
क्वचित् पत्रोर्णतंतुपांडुरः क्वचिज्जरठमृणालदंडध-
वलः क्वचिज्जरतकपिकेशरकपिलः क्वचिद्धरवृषभ-
रोमंथफेनपिंडपांडुरः त्रिपथगाप्रवाह इव हरि-
चरणप्रभवः कुपित इव मुंचन् क्षमां आरब्धपरिहा-
स इव रुंधन्नयनानि तृषित इव पिबन् करिकरशी-
करजलानि पक्षवानिवोत्पतन् गगनतलं अलि-
निवह इव चुंबन्मदलेखां मृगपतिरिव रचयन् करि-
कुंभस्थलीषु पदं उपा त्तविजय इव गृह्णन् पताकाः
जरागम इव पांडुरीकुर्वन् शिरांसि मुद्रयन्निव प-
क्ष्माग्रसंस्थितो दृष्टिं आजिघ्रन्निव मकरंदमधुबिंदु-

लग्नः कर्णोत्पलानि मदकलकरिकर्णतालताडन-
त्रस्त इवाविशन् कर्णशंखोदरविवराणि पीयमान
इव उन्मुखीभिरवनिपातिमुकुटमणिभंगमकरिका-
भिः अच्र्यमान इव तुरगमुखविक्षेपविद्युतैः फेन-
पल्लवकुसुमस्तबकैः अनुगम्यमान इव मत्तगजघ-
टाकुंभभित्तिसंभवेन धातुधूलिवलयेन आलिंग्य-
मानइव चलच्चामरकलापविधुतेन पटवासपांशु-
ना प्रोत्साह्यमान इव नरपतिशेखरसहस्रपरि-
च्युतैः कुसुमकेसररजोभिः उत्पातराहुरिव दिवस-
करमंडलमकांड एव पिबन् नृपप्रस्थानमंगलप्रति-
सरवलयमालिकासु गोरोचनाचूर्णायमानः क्रक-
चकृतचंदनक्षोदधूसरो रेणुरुत्पपात अपरिमाणब-
लसंघट्टसमुपचीयमानश्चशनैः शनैः संहरन्निव
विश्वमशेषं अकालकालमेघपटलमेदुरो विस्तार-
मुपगंतुमारेभे ॥

उक्त वर्णनप्रधान संग्रहोको पढ़ अपने कविकी वर्णन करनेकी शैली श्लेष उत्प्रेक्षा प्रभृति अलंकार चमत्कृति आदिकी कल्पना हमारे पाठकोंके चित्तमें बहुत कुछ आगयी होगी। अब भिन्न प्रकारके दो संग्रह और उद्धृत कर इस लेखको शेष करते है।

महाश्वेताके उक्त दुःखवृत्तांतको सुन कादंबरीने यह निश्चय करलिया था कि यावत्कालपर्य्यंत महाश्वेता पतिविरहित रहेगी तावत्कालपर्य्यंत मै विवाह कदापि न करूंगी। उसके इस हठसे उसके चित्तको हटानेके लिये उसके मातापिताने पराकाष्ठा की पर उसने एक न सुनी अंतमे उन लोगोने

महाश्वेताकोही यह संदेसा भेजा कि तू तौभी कुछ कहसुनकर उसे अनुकूल कर। उनकी आज्ञानुसार उसने अपनी सखी तरलिकाको उसके पास भेजा था सो उसके संदेसेका उसके साथ वहांसे आया हुआ वीणावाहक केयूरक कादंबरीका संदेशा कहता हैः—

भर्त्तृदारिके महाश्वेते! देवी कादंबरी दृढदत्तकंठग्रहा त्वां विज्ञापयति। "यदियमागत्य मामवदत्तरलिका तत्कथय किमयं गुरुजनवचनानुरोधः? किमिदं मच्चित्तपरीक्षणं? किं गृहनिवासापराधनिपुणोपालंभः? किं प्रेमविच्छेदाभिलापः? किं भक्तजनपरित्यागोपायः? किंवा प्रकोपः? जानास्येव मे सहजप्रेमनिष्यंदनिर्भरं हृदयम् एवमतिनिष्ठुरं संदिशन्ती कथमसि न लज्जिता? तथा मधुरभाषिणी केनासि शिक्षिता वक्तुमप्रियं परुषमभिधातुं वा?स्वस्थोऽपि तावत् क इव सहृदयः कनीयस्यवसानविरसे कर्मणीदृशे मतिमुपसर्पयेत्? किमुतातिदुःखाभिहतहृदयोऽस्मद्विधो जनः? सुहृदुःखखेदिते हि मनसि कैव सुखाशा? कैव निर्वृतिः? कीदृशाः संभोगाः? कानि वा हसितानि? येनेदृशीं दशामुपनीता प्रियसखी कथमतिदारुणं तमहं विषमिवाप्रियकारिणं कामं सकामं कुर्य्याम्? दिवसकरास्तमनाविधुरासु नलिनीषु सहवासस्नेहेन चक्रवाकयुवतिरपि समागमसुखानि परित्यजति किमुतना-

र्य्यैः। अपि च यत्र भर्त्तृविरहविधुरा अपहृतपरपुरुषदर्शना दिवानिशं निवसति प्रियसखी कथमिव तन्मम हृदयमपरः प्रविशेज्जनः। यत्र च भर्त्तृविरहविधुरा तीव्रव्रतकर्शितांगी प्रियसखी महत् कृच्छ्रमनुभवति अत्राहमवगणय्यैतत् कथमात्मसुखार्थिनी पाणिं ग्राहयिष्यामि ? कथं वा मम सुखं भविष्यति। त्वत्प्रेम्णा चास्मिन् वस्तुनि मया कुमारिकाजनविरुद्धं स्वातंत्र्यमालंब्यांगीकृतमयशः समवधीरितो विनयः गुरुवचनमतिक्रामितं न गणितो लोकापवादः वनिताजनस्य सहजमाभरणमुत्सृष्टा लज्जा सा कथय, कथमिव पुनरत्र वर्त्तते ? तदयमंजलिरुपरचितः प्रणामोऽयं इदंच पादग्रहणं अनुगृहाण मां वनामितो गतासि मे जीवितेन सहेति माकृथाः स्वप्नेऽपि पुनरिममर्थं मनसि इत्यभिधाय तूष्णीमभूत ॥

उक्त संग्रहकी स्वतंत्ररूपसे यहांपर प्रशंसा करना अनावश्यक है। यहांपर हमारे कविने कथाकी नायिकाका पाठकोको किंचित् परिचय दे उसकी गंभीरता उदारता स्नेहशीलता चतुरता आदि गुण प्रदर्शित किये है । इन सबका पाठकोंके चित्तपर ऐसा कुछ प्रबल संस्कार होता है कि अगला वृत्तांत पढनेके लिये उनका मन अतीव उत्कठित होता है ।

उक्त समस्त संग्रह कादंबरीके पूर्वार्द्धके ही हैं अर्थात् स्वयं बाणकवि लिखित हैं । अब यह अंतिम मात्र तत्पुत्रलिखित उत्तरार्द्धसे उद्धृत किया जाता है । अकेले इसीको पढ उसकी कवित्वशक्ति और पूर्वार्द्ध पूर्णकरनेकी योग्यताका पाठकगण अनुमान करसकते है ।

कथाके आदिका तोता चंद्रापीड़का पूर्व्वजन्मका मित्र अर्थात् मंत्री शुकनासका पुत्र वैशंपायन था। दिग्विजयार्थ निकली हुई सेना चंद्रापीडका पता लगाते २ जब महाश्वेताके आश्रमके पास पहुंची थी तब वहभी उसके साथमें था। इसके अनंतर एक बड़ी विलक्षण घटना हुई है वैसी बहुधा कहींभी नहीं हुई होगी*। वैशंपायन पूर्वजन्मका ऋषिकुमार पुंडरीक था अतः पूर्व्वजन्ममे जहांपर महाश्वेताके साथ उसकी *शृंगारलीला* हुईथी वहीपर कर्म्मधर्म्मसंयोगसे वह पुनः आगया। उस समय एक दिन ऐसा हुआ कि:—

अन्यस्मिन्नहनि आहतायां प्रयाणभेर्य्यां सज्जीक्रियमाणे साधने प्रातरेवास्मान् वैशंपायनोऽभ्यधात्। अतिपुण्यं तदच्छोदसरः पुराणेश्रूयते तदस्मिन् स्नात्वा प्रणम्य वास्यैव तीरभाजि सिद्धायतने भगवंतं भवाभवप्रभुं महेश्वरं शशांकशकलशेखरं व्रजामः। दिव्यजनसेविता केन कदा पुनः स्वप्नेऽपि भूमिरियमालोकितेत्यभिधाय चरणाभ्यामेवाच्छोदसरस्तीरमयासीत्। तत्र चातिरम्यतयैव सर्वतोदत्तदृष्टिः संचरन्नमरकामिनीश्रोत्रशिखरारोहणप्रणयोचितैः तरंगानिलाहतिविलोलवृत्तिभिःकिसलयैः अविरलकुसुममकरंदलोभपुंजितानां च मत्तमधुलिहां मंजुना शिंजितरवेण दूरादाह्वयंतमिव मरकतमणिश्यामया प्रभयाऽनुलिंपतमिव समं दश

*इसका कारण स्पष्टही है कि पुनर्जन्मका प्रतिपादन केवल हिंदू धर्ममेंही पाया जाताहै। युरोपखडमें पैथा गोरियन लोगोंको छोड इस मतको कोई नहीं मानते। इसधर्मकी हिंदू लोगोके साथ एक औरभी विलक्षण समता पायीजातीहै—वह मांसाहारनिषेधविषयकहै।

दिग्भागान् अदत्तदिवसकरकिरणप्रवेशतया दिवाऽप्यंतर्निशीथमिव बिभ्राणं चिरपरिचितैरपि मेघोद्गमाशंकया मुहर्मुहुरुन्मुक्तमधुरकेकारवैः वनशिखंडिभिरुत्कंधरैरवलोक्यमानं पदमिव जलदकालस्य प्रतिपक्षमिव सर्वसंतापानां निजावासमिव जडिम्नः निर्गममार्गमिव सुरभिमासस्य आश्रयमिव मकरध्वजस्य उत्कंठाविनोदस्थानमिव रतेः आस्पदमिव सर्वरमणीयानां अनवरतचलितसुरभिशीतलाच्छोदसरस्तरंगमारुताभिवीजिताभ्यंतरशिलातलं अन्यतमं तटलतामंडपमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा च तमतिचिरांतरितदर्शनं भ्रातरमिव तनयमिव सुहृदमिव चानन्यदृष्टिः विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा विलोकयन् स्तंभित इव लिखितइव सुचिरमूर्ध्वएव स्थित्वा अपारयन्निवांगानि धारयितुमाक्रम्यमाण इव मूर्च्छयोन्मुच्यमानइवेंद्रियैर्झटित्युन्मुक्तांगः समुपविश्य भूमौ किमप्यंतरात्मना स्मरन्निवानुध्यायन्निव निर्विकारहृदयो गलितलोचनपयोधारासंतानस्तूष्णीमधोमुखस्तस्थौ। तथावस्थितं तमवलोक्यास्माकमुदपादि चेतासिचिंता येन केनचिदपह्रियंत एव रसिकहृदयाः परिणामधीरमतयोऽपि किंपुनः कुतूहलास्पदे प्रथमे वय-

सिवर्त्तमानाः । तस्मान्नियतमियमस्येमाममतिमनोहरां भूमिमालोक्य भावयतोहृदयविकृतिरीदृशी जातेति । नचिराच्च तमेवमवदाम वयं दृष्टा दर्शनीयानामवधिरेषा तदुत्तिष्ठ संप्रति निर्वर्त्तयामःस्नानविधिं अतिमहती वेला जाता सज्जीभूतं साधनं प्रयाणाभिमुखः सकलस्कंधावारस्त्वांप्रतिपाल्यन्नास्तेकिमद्यापिविलंबितेनेति। सत्वेवमुक्तोऽप्यस्माभिरश्रुतास्मदालापइवजड इव मूक इव अशिक्षित इव वक्तुं न किंचिदपि प्रत्युत्तरमदात्।तमेव केवलमनिमेषपक्ष्मणा निश्चलस्तब्धतारकेण संतताश्रुस्रोतसंलिखितेनैव चक्षुषा लतामंडपमालोकितवान् ।

उसे सहसा (ऐसी अवस्थाको प्राप्त होते देख सैन्यके लोग आश्चर्य्यचकित हो रहे । अनंतर उन लोगोने वहांसे निकलआनेके लिये उससे बहुत अनुरोध किया सबने उसकी प्रार्थना की और अंतमें निर्भर्त्सनाभी की तो भी वहांसे उठनेतकका उसे विचार न हुआ अतमें वह उन्हे कहता है—

‘किमेतावदपि न वेद्मि यद्गमनाय मां भवंतः प्रतिबोधयन्ति । अपिच चंद्रापीडेन विना क्षणमप्यहमन्यत्र न पारयामि स्थातुं, एषैव मे गरीयसी परिबोधना । तथापि किं करोम्यनेनैव क्षणेन सर्वत्र विगलितं मे प्रभुत्वम् । तथाहि स्मरदिव कि-

मपि मनोनान्यत्र प्रवर्त्तते पश्यंतीव किमपि न दृष्टिरन्यतोवलति आसक्तमिव क्वापि हृदयं किमपि न जानाति निगडिताविव अन्यत्र पदमपि न दातुंचरणावुत्सहेते कीलितेव चास्मिन्नेव स्थाने तनुः तदात्मना त्वहमसमर्थो यातुम् ÷ ÷ ÷'

मुहुर्तादिव चोत्थाय तेषु तेषु रम्यतरेषु तरुतलेषु लतागृहेषु सरस्तीरेषु तस्मिंश्च देवायतने किमपि नष्टमिवान्विष्यन्ननन्यदृष्टिर्बभ्राम । भ्रांत्वा च चिरमिव खिन्नांतरात्मा सनिर्वेदमुर्ध्वंच निश्वस्यान्यतरस्मिन् लतागहनेपुनरुपविश्य तस्थौ ।

उक्त लताभवनका वर्णन कितना रमणीक है! साथही वहांपर वैशंपायनके मनमे पूर्वजन्मके विरहवृत्तांतका किंचित् स्मरण अस्पष्टरूपसे उद्भूत * हो उसकी चित्तवृत्तिमे अचानक जो विकार उत्पन्न होगया उसका और उस समस्त घटनाका उक्त वर्णन पढतीबार मन तल्लीन हो उसकी वृत्ति कैसी विलक्षण होजाती है! वर्त्तमान घटना कोई सामान्य नही है। यहां पर समस्त कथानकका रुख फिरकर चिरकालके अनंतर आदिकी कथाभागका यथार्थरूप किंचित् दृष्टिगत होने लगता है। एतावता इसे बडी चतुराईसे निबाहलेजाने-

---

* अनुमान होताहै कि, इस विचित्र घटनाकी कल्पनाको बाणभट्टने 'शकुतला' से अनुकृत किया है। उस नाटकके पाचवे अकके प्रारंभमे एक मधुर गीत सुनकर विनाकारण राजाका अन्तःकरण (उसके मतानुसार) अत्यत विरहोत्कंठित हुआ। यह क्या है ऐसा सदेह कर वह कहताहै:-- रम्याणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान् पर्युत्सकीभवति यत्सुखितोऽपि जतुः। तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

के लिये मूलकविकी ही शक्ति अपेक्षित थी । उत्तरार्द्ध रचयिताने वर्त्तमान स्थानपर सर्वथा उसीको प्रगटित किया है ।

हम समझते हैं कि, बाणभट्टके विषयमे लिखनेयोग्य अब और कोई विशेष बात शेष नही रही। तौभी अपने कविसे बिदाईके प्रार्थित होनेके पूर्व उस पर आतासा देखपड़ने वाले एक महद्दोषारोपका यहांपर निर्णयकर देना आवश्यक बोध होताहै। जिन विदेशीलोगोंको संस्कृतकविताका अच्छासा परिचय नही है और जिन्हें उसके प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं है वा शक्ति नही है- अथवा दोनो नही है, ऐसे एतद्देशीय अनन्यशरण संस्कृतज्ञलोग उक्तग्रंथांतर्गत बहुतेरे वर्णनोंको पढ़ उन्हे बडे विलक्षण एवं विचित्र कहा सुना करते हैं । पर वे लोग यह बात नही बिचारते कि, दो भिन्न जातियोके सम्प्रदाय परस्परमे अत्यंत समता रखनेवाले कदापि नही पाये जाते;और उनका वैसा पायाजाना संभवभी नहीं है—क्यो कि, मनोधर्मोंकी विभिन्नता जैसी व्यक्तिगत दृष्टिपथमें आती है वैसी ही उसकी स्थिति जातिमेंभी अवश्य पायी जानी चाहिये । ऐसी अवस्थामें अत्यंत भिन्नजातीय अंगरेजादिलोगोंके काव्यसम्प्रदायका संस्कृतके काव्यसंप्रदायसे सर्वथा कैसे मेल मिलसकता है ! अतः देश काल और आचार विचारादिके अनुसार उभयलोगोंको उचितहै कि, परस्परके यथार्थरूपका बोध प्राप्तकरनेके हेतु बुद्धिमानी एवं निष्कपटपूर्वक यत्न करें। ऐसा करनेमे कदाचित् हम हारजांय और हमें नीचे देखनेकी बारी आजाय ऐसी शंका कदापि न करनी चाहिये।यहांपर यह लिखनेको परमोत्साह होताहै कि, एतद्विषयमें इतना दृढ़ विश्वासहोनेका कारण विशालबुद्धि एवं उदारचेता अंग्रेजपंडितोंके लिखे हुए लेखही हुए हैं । अस्तु; यह सब समस्त संस्कृतकवियोंके विषयमें कहा गया।पर बाणकवि जैसे उपन्यास लेखकके पक्षमें अभी औरभी एक बात पाठकोंको सूचित करनेयोग्य है । वह यह कि, उक्त ग्रंथमें वस्तुतः वस्तुस्थितिको विरोध करनेवाली अनेक-

बातें वर्णित की गयी है—जैसे हंसादिकोंका कादंबरीके महलमे परिचितोंकी नांई रहना, उसके अन्यत्र चलेजानेपर तन्मुखसुगंध प्राप्त्यर्थ भ्रमरोका चेष्टा करना, शबरोके सेनापतिका अनेकानेक पक्षियोका वधकर पल्लवासनासीन हो कमलळतापत्रनिर्मिति पात्रद्वरा जलपान करना, कमलके शुभ्र डेठोंकोही खाकर रहना इत्यादि । पर इन सब कारणोंके योगसे उक्त ग्रथको सदोष निश्चित करनेके पूर्व्व, गुणदोषविवेचकोका अभिमान धारणकरनेवालोंको सोचना चाहिये कि, बाणकविका उद्देश इतिहास लिखनेका न था । किंतु कल्पित एवं अनोखी कथा लिखनेका था; एतावता उसकी कल्पनानिर्म्मित अपूर्व सृष्टिको ससारकी व्यवहारिक घटनाओंकी दृष्टिसे देखना, अरसिकताकी पराकाष्ठा और वाग्देवीका उपमर्दकरनेके तुल्य समझा जायगा ।



सुबन्धु ।

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥ *

हर्षचरित ।

इस कविकी कीर्त्तिका आधारस्तभ केवल तद्रचित 'वासवदत्ता' नामक ग्रथ है। यदि उक्त ग्रंथमात्र ही उपलब्ध होता तो इस कविके विषयमे और अधिक परिचय कदाचित् न दिया जा सकता । पर आनंदका विषय है कि, विद्याप्रिय डॉक्टर हॉल साहिबने अपनी 'बिब्लिओथिका इंडिका' नामकी सस्कृत ग्रथमालिकामे 'वासवदत्ता' को प्रकाशित किया है। 'वासवदत्ता' का उक्त सस्करण अत्यत परिश्रम एवं सावधानीपूर्वक प्रस्तुत किया गया है और उसमे 'सुबधु' कविके जीवनकालादिका वृत्तांतभी बहुत कुछ लिखा गया है । अस्तु; हमारे आजके लेखको उक्त डॉक्टरसाहिबके ग्रंथसे बहुत सहायता मिली है एतदर्थ हम आपको कृतज्ञतापूर्वक साधुवाद दे मुख्य विषयनिरूपणका प्रारंभ करते है ।

ग्रथोका समय निर्णीत करनेके दो मार्ग हैं—एक अन्तःप्रमाणका और दूसरा बहिःप्रमाणका । अन्त.प्रमाण अर्थात् जो प्रमाण उसी ग्रथमे पाये-जातेहै और बाह्य प्रमाण अर्थात् उस ग्रंथ वा ग्रथप्रणेताके विषयमे किसी दूसरेका विश्वासपात्र लेख अथवा कथनोपकथनपरंपरागत दंतकथाप्रभृति वर्तमान ग्रंथके विषयमे उक्त दोनो प्रकारके प्रमाण उपलब्ध होते हैं । यह बात सर्वतोभाव सत्य है कि, सुबधुने अपने लोगोके सप्रदायानुसार न तो अपने ग्रथका सवत् ही लिखा और न नामातिरिक्त आत्मपरिचयही

* "जिस प्रकारसे इंद्रप्रदत्त शक्तिके कर्णके निकट पहुँचतेही पांडवोंका अभिमान गलित हो गया उसीप्रकारसे 'वासवदत्ता' के कर्णकुहरगत होतेही कविगणोका गर्व प्रायः चूर्ण हो जाता है ।"

दिया; तौ भी उसके प्रस्तावनाकी एक आर्य्या उसके समयके विषयमें अन्तःप्रमाणस्वरूप मानी जा सकती है । वह यह है:-

सा रसवत्ता * विहता नवका* विलसन्ति नो कंकः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥

" विक्रमादित्य राजाकी कीर्तिशेष (स्वर्गवासी) हो जाने पर संमति नूतन क्षुद्र राजालोग अपनी प्रभुता प्रदर्शित कररहे हैं; पर वह पिछला तेज उसीके साथ चला गया; अब कोई किसीको नही मानता । "

सुबन्धुने उक्त आर्य्यामें प्रचंड प्रतापी एवं विद्वानोंका समादर करनेवाले विक्रमादित्य राजाके विषयमें विलाप कर तदनंतरके राजा लोगोंकी दुर्बलता तथा उनके राज्यका अत्याचार वर्णित किया है। यह वर्णन इस बातको स्पष्टरूपसे प्रदर्शित करता है कि, सुबंधु विक्रमादित्यके पीछे कई वर्षोंके अनंतर हुआ है । और इसके व्यतिरेक वासवदत्ताकी कृत्रिमरचनाभी उक्त कल्पनाकोही पुष्टकरती है ।

इस कविके जीवनकालके विषयमें बहिःप्रमाणभी वही बात निर्णीत करते हैं जो अभी ऊपर निश्चित हो चुकी है । बाणभट्टने अपने हर्षचरितके आदिमें अपने पूर्वके अनेक कवियोंका वर्णन किया है। उसमें वह सुबंधुके विषयमें लिखताहै:-

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया ।
शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥

---

*उक्त आर्य्यामें विक्रमादित्य और सरोवरकी सदृशता वर्णित है, और 'रसवत्ता' अथच 'नवकाः' पद श्लिष्ट हैं। 'रसवत्ता' से पराक्रमशालिता ('रसिकता') भी ध्वनित होती है, और ' जलयुक्तता ' और 'नवका' से 'नये' ('क) कुत्सार्थी और 'न बका' (विलसन्ति) अर्थात् बगले शोभाको प्राप्त नहीं होते । साराश श्लेषार्थका अभिप्राय यह है कि, जैसे सरोवरके सूखजानेपर जल नहींसा हो जाता है, बगलोंकी शोभा नष्ट होजातीहै और विशालकाय जलचर छोटे जतुओंको खाने लगते हैं, इसीप्रकारसे राज्यकी दुर्दशा हो गईहै।

"जिसप्रकारसे वासवदत्ता (इंद्रप्रदत्त) शक्तिके कर्णके निकट पहुँचतेही पांडवोंका अभिमान गलित हो गया; उसीप्रकारसे 'वासवदत्ता' के कर्णगोचर (श्रवणगत) होतेही कविगणोका गर्व प्रायः चूर्ण होजाता है।"

उक्त प्रशंसाप्रधान पद्य इस बातको स्पष्टतया लक्षित कराता है कि, सुबंधु ई० स० ६५० के कई वर्ष पूर्वमें रहा होगा ।

सुबंधुके विषयमे कविराजनेभी* यही बात लिखी है ।

सुबंधुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥

" वक्रोक्ति अर्थात् श्लेषादि चमत्कृतिकी रचना करनेकेलिये सुबंधु, बाणभट्ट और कविराज यही तीन मात्र अधिकृत है—इनकी समताका चौथा कोई स्यातही होगा। "

यह पद्य तो मानों स्वयं कहे देता है कि, सुबधु कविराजके पूर्व हुआ है। अस्तु, उक्त प्रतिपादनद्वारा यह बात प्रदर्शित हो चुकी मानलेनेमें कोई आपत्ति नहीं है कि, अपने कविके जीवनकालका बहुत कुछ पता मिलगया; अब उसके नामसे जो एकमात्र काव्य 'वासवदत्ता' प्रसिद्ध है उसके विषयमे विचार किया जाता है ।

अनुमानसे बोध होता है कि, पुराकालके लोगोंको 'वासवदत्ता' नाम बहुत प्यारा था, जिन ग्रथोकी नायिकाओंको यह नाम दिया गया है वह ग्रंथ आज दिन भी बहुत पाये जाते है । भगवान् पाणिनीके व्याकरणसूत्रोंपर जिन महर्षि कात्यायनने वार्तिक लिखे हैं उनने एक स्थानपर 'वासवदत्ता' नामक एक प्राचीन कथाको अनुलक्षित किया है । कालिदासने अपने 'मेघदूत' मे

---

*'राघवपाण्डवीय' ग्रथप्रणेताका यह उपनाम है। इसका प्रचलित नाम क्या था सो नही जाना जाता इस काव्यकी रचना ऐसी श्लिष्ट है कि, रामायण और भारतकी कथा एकसे पदों द्वारा बाँधी गयी है ।

उज्जयिनीका वर्णन करतीबार, भवभूतिने (पूर्वोल्लिखित) एक स्थानपर उसी प्रकारसे सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' संज्ञक बृहत्कथासमूहमे तत्काल प्रसिद्ध वासवदत्ता और वत्सराजकी कथा लिखी है। श्रीहर्षकी 'रत्नावली' में भी रानीका नाम वासवदत्ता पाया जाता है; परन्तु इन उक्त कथाओंका वर्त्तमान 'वासवदत्तासे' लेशमात्रभी संबंध नही है; एक नाममात्र एकसा है; और जानपड़ता है कि, वह जनप्रिय होनेके कारण सुबंधुको भी प्रिय हुआ हो। इसके सिवाय अपर सब कथा प्रायः स्वयं उसीकी रची हुई ज्ञात होती हैं।

परंतु उक्त बातका यदि निर्णय करही लिया जाय तौभी उससे कुछ तादृश लाभकी आशा नहीं है; क्योंकि वर्त्तमान ग्रंथकी योग्यता जितनी बहिःस्वरूपपर निर्भरहै उतनी अन्तःस्वरूपपर नहीं है। इस ग्रंथके प्रणयन करनेमें कविका अभिप्राय कादबरीकार केसा द्व्यर्थी न था, अर्थात् रचनाके चित्र विचित्र भेद सपादित कर कथाके संविधानकको भी चित्ताकर्षक करना, किंतु उसने अपना उद्देश प्रस्तावनाके अंतमें स्पष्टरूपसे लिखदिया है—

सरस्वतीदत्तवरप्रसाद-
श्चक्रे सुबंधुः सुजनैकबंधुः॥
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबंध-
विन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबंधम्॥

" सरस्वतीने अपना वरदहस्त जिसके माथेपर रक्खा है, और उसके प्रभावसे प्रत्येक अक्षरमें श्लेषपूरित शब्दरचना करनेकी अपार चतुराई जिसे प्राप्त है, उस सज्जनोंके एकमात्र बंधु सुबंधुने अगले निबंधकी रचना की "।

अपने उक्त उद्देशकी सिद्धिमे सुबंधुको कितना यश प्राप्त हुआ सो भावी संग्रहोंद्वारा पाठकोंपर विदित होजायगा। संप्रति यहांपर कथाके संविधानक (कथासूत्र) की आलोचना की जातीहै।

इस उपन्यासका कथासूत्र पूर्वलेखानुसार गौण होनेके कारण बहुतही छोटा है वह सक्षेपमें नीचे लिखा जाता है:-पुराकालमें चितामणि नामका एक महान् मतापी एवं पुण्यात्मा राजा था, और मदनोपम सर्वांगसुंदर एवं अशेषगुणसपन्न कदर्पकेतु नामका उसका पुत्र था, इस राजपुत्रने एक दिन उत्तररात्रिके स्वप्नमें एक कन्या देखी; उसका वय:क्रम अठारह वर्षसे किंचिद् न्यून न था और वह मानो सौदर्यकी खदानही थी. अनंतर यह उसके अनुपम लावण्यामृतको नेत्रोद्वारा यथेच्छ पान कर रहाथा कि, निद्राने मानो सौतिया-डाहके मारे उसे सहसा परित्यक्त कर दिया, साथही वह मनोरम मूर्त्ति उसके आलोकपथसे दूर हो गयी। तब उसके विरहशोकसे नितांत कातरहो निद्राकी पुनरपि माप्ति होनेके अर्थ उसने चेष्टा की, पर वह सब विफल हुई; अंतमे निराश-हो अपने शयनागारके समस्त द्वार बंद कर वह वहांही पड़ रहा और उसने किसीकोभी न भीतर आने दिया और न अन्न जल ग्रहण किया। ऐसीही अवस्थामे उसका वह सब दिन और रात बीत गयी पर तौभी राजपुत्र की इच्छा पूर्ण नही हुई। इसके अनतर कदर्पकेतुका बालमित्र मकरंद अनेकानेक गुरुतर यत्नोंद्वारा भीतर जा, उसे बोध करनेलगा पर ऐसे अव-सरपर शिक्षाका जो फल होता है सो सब काव्यविशारद पाठकोंपर विदि-तहीहै अतमे हारकर उसे कंदर्पकेतुकी मन्त्रणा (सलाह) अगीकृत करनी पडी, वह यह थी कि, हम दोनो गुप्तभावसे नगरके बाहर भाग चलैं।

उक्त सकल्पानुसार दोनों पथिक बन मार्ग क्रमण करने लगे; चलते चलते विंध्याचलनिकटवर्त्ती एक जंगलमे वे रात्रिको ठहर गये। वहांके फल मूलादिद्वारा क्षुधा शांतकर तृणलतापत्रादिकी शय्यापर वह पड रहे। पर कुछ कालके अनंतर जिस जबूवृक्षके नीचे वे पड़े थे उसपर एक शुकसा-रिकाके जोडेका कलह होते चंद्रकेतुको सुनपडा; उसे सुन उसने मकरद-को जागृत किया और वे दोनो उस कलहको बडे दत्तचित्तसे श्रव-ण करने लगे।

सारिकाने झझककर सुग्गेसे पूछा "रे ठग! आज अभीलों तू कहां था? जान पड़ता है कि आज तू किसी दूसरी सारिकाके जालमे फँसा था?" उत्तरमे,

तोतेने सप्रेम कहा "प्रिये ! आज मैंने बड़ी विचित्र कथा सुनी और प्रत्यक्ष देखी, अतः आनेमे विलंब हुआ । " सारिकाके पुनः प्रश्न करनेपर तोतेने उसका कथन करना आरंभ किया ।

" जाह्नवीके समीपही कुसुमपुर* नामकी एक विशाल नगरी है । वहांके राजाका नाम शृंगारशेखर और रानीका नाम अनंगवती है । उन्हे इकलौती एकही कन्या है उसका नाम वासवदत्ता है ।"

"यह कन्या उपवर होनेपरभी कई दिनलों विवाहसे घृणा करती रही । पर अब इधर ऋतुराज वसंतके आगमनके योगसे उसके मनमे अभिनव वृत्ति प्रादुर्भूत होनेके कारण उसके पिताने उसके स्वयंवरकी तयारी की थी । उस समय चारों ओरके राजपुत्र वहांपर एकत्रित हुए थे, पर उनमेसे उसे कोईभी पसंद न हुआ, एतावता वह अपने मंचसे उठकर चली गयी । "

"पर उसी रातको पूर्णतया उसके हृदयेश बननेकी योग्यता रखनेवाले एक राजपुत्रने उसे स्वप्नमे दर्शन दिया, और उसे स्वप्नमेंही यह बात ज्ञात हो गयी कि, वह चितामणि राजाका पुत्र कंदर्पकेतु है । उस दिनसे वह बहुत बेचैन रहा करती । उसे प्रसन्न करनेके हेतु उसकी सखी नानाप्रकारके उपाय करती पर वे सब निष्फल होते । अंतमे तमालिका नामकी उसकी सखीने कहा कि, मैं कंदर्पकेतुके निकट जाकर उसका संवाद ला तुझे सुनाती हूं ऐसा कहकर वह उधरको चलीगयी । मैं भी उसके साथ हो गया और अब वह इसी पेडके नीचे है । "

इस बातके सुनतेही मकरंद तमालिकाके पास गया उसने प्रणामकर अपने स्वामिनीकी प्रेमपत्रिका उसे दी । उस पत्रको पढतेही कंदर्पकेतुने आनंदमग्न हो तमालिकाका आलिंगन किया और वासवदत्ताके विषयमें उससे उसने हजारों बाते पूछीं । फिर दूसरे दिन वे लोग वहांसे प्रस्थित हो कुछ रात बितनेपर कुसुमपुरको पहुँच गये । राजाके बगीचेमें एक हाथीदांतका बनाहुआ

---

* कुसुमपुरका दूसरा पुराना नाम 'पाटलिपुत्र' था । चीनीलोग इसे 'कुसुमोपुलो' और ग्रीकलोग 'पालीबोथ्रा' के नामसे पुकारते थे इसका वर्त्तमान नाम 'पटना' है ।

बंगलाहै वहीं कंदर्पकेतुसे वासवदत्ताकी भेंट हुई । प्रथम तो वे लोग परस्परको देखतेही मूर्च्छित होगये। फिर जब उनकी मूर्च्छा टूटी और वे सचेत हुए तब तमालिकाने अपने स्वामिनीकी विरहव्यथा राजपुत्रसे निवेदन की । और अभी थोडे समयके पूर्व जो अनर्थ नष्ट हुआ था सोभी कह सुनाया ।वह यह था कि, उपवर वासवदत्ताको अविवाहित देख सर्वसाधारणमें जो जनापवाद फैल रहा था उसके निवारणार्थ उसके पिताने विद्याधरोके राजाके पुत्र पुष्पकेतुके साथ दूसरे दिन उसका विवाह करदेना विचारा था। वासवदत्ताने उसे सुन प्रतिज्ञा कर ली थी कि, उस प्रसंगके उपस्थित होतेही मैं अग्निमें प्रवेश करूगी, पर इतनेमे अपने लोगोके ठीक समयपर पहुँच जानेके कारण वह घोरसंकट दूर हो गया ।

अनंतर मकरद और तमालिकाको अपनी सामग्रीकी रक्षा करनेकेलिये वहीपर छोड़ कदर्पकेतु और वासवदत्ता यही दोनो मनोजव नामके एक दिव्याश्वपर आरूढ हो विध्याचलके एक अरण्यमें जा पहुँचे । वहां एक लतागृहमे ठहरकर उन लोगोने वह रात बितायी । अंतमें इतने दूर आनेके परिश्रमके कारण दोनो एकाएक सो गये ।

दूसरे दिन मध्याह्नके समय जागृव् होनेपर कंदर्प केतुने वासवदत्ताको वहां नही पाया तब उसके अचिंत्य विरहसे कातर हो उसने बहुत विलाप किया। अंतमे उस अरण्यसे निकल कर दक्षिणकी ओरको चलते चलते वह ठेठ समुद्रकूलपर जा पहुँचा । वहां पहुँचतेही उसके जीमे यह बात आयी कि,अब जीना व्यर्थ है अतः यहांही प्राण विसर्जन करना उत्तम है। ऐसा विचार कर उसनेसमुद्रमें स्नान किया,और उसमें वह देह त्याग करनेको ही था कि, इतनेमे आकाशवाणी हुई कि, तू आत्महत्या मत कर, वासवदत्ता तुझे फिर मिलेगी ।

उक्त आकाशवाणीको सुन वह पीछे लौट आया,और बनमें उसने कई महीने पुनः उसी प्रकारसे काटे,बीचमें पावसकाभी आगमन हुआ पर वह आकाशवाणी उसे प्रत्यक्ष नही हुई । शरदृतुमे वह एक दिन अरण्यमें योंही इधर

उधर फिर रहाथा कि, एक पाषाणकी मूर्त्ति उसे देख पडी। उसकी ओर ध्यानपूर्व्वक निहारनेसे उसे ऐसा जान पड़ा कि,इसका रूप वासवदत्ता कैसा-ही है। फिर उसके करका स्पर्शहोतेही वह पाषाणमूर्त्ति वासवदत्ता हो गयी।

"तत्पश्चात् वासवदत्ताने अपने पाषाणमूर्त्ति होजानेका कारण उसके प्रति कथन किया, वह यह कि कंदर्पकेतु लताभवनमें जब सो रहाथा तब वह जागृत् हुई, और वियोगदुःख एवं उपोषणके कारण उसकी वह दीन अवस्था देख उसने विचार किया कि, इसके जागृत होतेही भोजनोंको देनेकेलिये कुछ फल लाना चाहिये।"फल लानेकेलिये वह वनमे फिर रहीथी कि,उसी समय उसने एक सैन्यको वहां डेरा डालते देखा।और वह भयभीत हो मनोमन विचार करनेलगी कि, स्यात् यह सैन्य मेरे अथवा कंदर्पकेतुके पिताका तो न हो? पर वह सेना किसी तीसरेकीही थी।इतनेमें उस सैन्यके अधिनायकको उसका संवाद मिल गया।उसके मिलतेही वह उसकी ओरको लपका। उसी समय किरातोंका एक सेनापति वहां आखेट कर रहाथा वहभी उसे पकड़नेकेलिये वहां आगया। दोनों ओरसे ऐसी घोर आपत्ति एकाएक उपस्थित होजानेके कारण वासवदत्ता घबराकर किंकर्त्तव्य विमूढ हो गयी। पर उसी अवसरपर उन दोनोंको अपनेलिये संग्राम करते देख वह वहांसे चंपतहो आसन्नस्थित एक पर्णकुटीमे जा पहुँची।पीछे इस पर्णकुटीकोभी उन लोगोने नष्ट कर डाला। आगे दीर्घकालके पश्चात् उस आश्रमके मुनि वहां आये। और वासवदत्ताको देखतेही वे जान गये कि,हमारे आश्रमकी इस दुर्दशाका कारण कदाचित् यही है।अतः उसने उसे शाप दिया कि,तू पत्थरकी होजा। पर उसके अपना वृत्तांत निवेदनकर प्रार्थना करनेपर मुनिने उसे उच्छाप प्रदान किया कि, तेरे पतिके करका स्पर्श होतेही तू पूर्ववत् हो जायगी।

यह कथा शेष होनेकोही थी कि, मकरंद वहां आपहुँचा। अनंतर वे सब लोग कंदर्पकेतुके पिताकी राजधानीको लौट गये। इसके पश्चात् उन सबने अपने दिन अत्यंत आनंद और सुखपूर्वक व्यतीत किये।

यही 'वासवदत्ताका' संविधानक अर्थात् कथासूत्र है। हमारे देशके पाठकोको यूरोपके पाठकोंकी नांई परमोत्तम उपन्यासोकी प्रचुरता

अद्यावधि प्राप्त न होनेके कारण वे अभीलों उनके तादृश मर्मवेत्ता नही हुए हैं। यही कारण है कि, उक्त कथासूत्र उन्हे खटकतासा नही जानपडता। पर थोडासा विचार करनेसे यह बात तुरंतही ज्ञात होसकती है कि, उसके जोडनेवालेने अधिक परिश्रम और चिंताके भारको न उठा योंही "येन केन प्रकारेण" उसे पूरा कर दिया है। प्रथम तो कथाके नायककी राजधानी कहां थी उसीका पतातक नही दियाहै। केवल इतनाही लिख दियाहै कि, कंदर्पकेतु अपने मित्र मकरंदके साथ कुसुमपुरको गया और वहांसे अपने नगरको लौट आया। पर जानेके मार्ग वा दिशाका उसने कुछभी परिचय नही दिया। हां बीचमे पडनेवाले विंध्यपर्वतका उसने अलबत्ते उल्लेख किया है। इस पर्वतसे दोनो ओरके अंतर दिये है, पर दोनो ओरके अतरमे आकाश पातालका भेद है। उपन्यासमे लिखा है कि, कदर्पकेतु स्त्रीविरहके योगसे बावला हो फिरते फिरते समुद्रपर्यंत पहुँच गया था पर यह समुद्र कौनसाहै इसका निर्णय करना कठिन है।

'उसने दक्षिण दिशासे यात्रा प्रारंभ की' यह लिखकर उसने आगे लिखा है कि, उसी समुद्रको नर्मदा चंदना और करतोया नदी मिलतीहै। अस्तु; यह विषय किंचित् भूगोलकाही है, पर सुबंधुने यदि वर्त्तमान ग्रथमे औरभी कविताके प्रधान गुण प्रदर्शित किये होगे तौ इस दोषके लिये समस्त पाठकगण और विशेषतः अगरेजपाठक * उसे निःसदेह तत्क्षण क्षमा प्रदान करेंगे। सुबंधुके कवित्वगुणकी आलोचना आगे चलकर लिखेगे,—सप्रति वर्त्तमान आख्यायिकाके अपर दोषोकी मीमांसा करते है। वास्तवमे संवाद तो इस उपन्यासमें बहुधा पायेही नहीं जाते और संवादके नामसे जो पाये जाते है वे वर्णनस्वरूप

---

*हमारे जिन पाठकोका अगरेजीसे अच्छासा परिचय नहीं है उन्हें अपनी इस तर्कनाका कारण स्पष्टरूपसे सूचित करदेना आवश्यक जान पड़ता है। वह यह है कि, अगरेज कवियोंके चूडामाणि शेक्सपियरने अपने एक नाटकमें बोहोमियाके तीरपर जहाज पहुचाया है!! बोहोमिया यूरोपखण्डके प्राय. बीचो बीच होनेके कारण समुद्रसे बहुतही दूर है।

होनेके कारण उन्हें पात्रोंके कहनेकी अपेक्षा स्वयं कविकेही कहना अधिकतर उचित जान पड़ता है। कंदर्पकेतु और वासवदत्ताकी प्रथमतः पुष्पवाटिकामें भेट हुई, और उसके अनंतर उन्ही दोनोंने विध्याद्रीके अरण्यांतर्गत एक लताकुंजमें सब रात बितायी; पर दोनोंबेर उन दोनोंकी परस्परमें कुछभी बातचीत नहीं हुई। दूसरे एक स्थानपर जहां कि, परस्परके आलापकी अत्यंत बहार थी, लिखाहै कि—सबेरा होते २ वे दोनों एकाएक सोगये। यह स्थल तो अत्यंतही उपहासार्ह है। दोनोंका गंधर्वविवाह हो वे दोनों प्रथमही विध्याटवी जैसे भव्य एवं मनोरम अरण्यमे चाँदनीरातको एकांतस्थानमे रहे, पर उन दोनोंने वह सब रात परस्परके अतिनिकटवर्त्ती रहनेपरभी विना आलापके व्यतीतकरदी!! बलिहारीहै इस विचित्रघटनाकी! वासवदत्ताके मौनावलंबनका कारण उसकी स्त्रीस्वभावोचित लज्जा अवश्य हो सकती है; पर जो नायक अभी केवल स्वप्नदर्शनकेयोगसे इतना पागल हो गयाथा, और जिसे अगले दिन शोकविमुक्तिके कारण प्रवचनपटुता पुनः प्राप्त होगयी थी, उसके ऐसे समयपर मौन धारण करनेका ऐसा उचित कारण क्या होगा सो नही जान पड़ता! 'मालतीमाधवके' आठवें अंककी घटना इस घटनासे पुष्कलांशमें मिलती है। वहांभी मालती एक अधूरी बातसे अधिक और कुछ नही बोली; और माधवका आलापभी विस्तृत नही लिखागया है।तौभी वहांपर जितना लिखा गया है उतना नितांत उचित एवं हृदयग्राही है*, उसके योगसे उस नाटकके प्रधान रस शृंगारकी वहांपर पराकाष्ठा हो गई है। यही कारणहै कि, वहांपर वह अत्यंत शोभाप्रद बोध होता है, वैसी बात यहां कुछभी नही है। यहां तो ऐसा जान पड़ताहै मानों वे दोनों कोई कुलाचार मनानेके लिये आये हो। ऐसे परमरम्य वनप्रदेशमें यात्रा करनेकी सार्थकता यदि निद्रादेवीके गोदमें विश्राम करनेमेंही थी तो राजपुत्र और राजकन्याका पहिला प्रासादही क्या बुरा था? सारीरात

* इस प्रसगकी बहार यदि देखनी हो तो मदनुवादित 'प्रणयीमाधव' नामक उपन्यासको कल्याणके लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापखानेसे मँगाकर अपनी काव्यमर्मजिज्ञासाको तृप्त कीजियेगा।

योही जगकर अपनी हँसी करालेनेमे न जाने उन्हे क्या लाभ हुआ ? वे रात्रिको शीघ्रही क्यों नही सोगये ? ऐसे परमोत्कृष्ट प्रातःकालके समय उन दोनोके युगपत् निद्रित होजानेका कारण कुछभी नही जाना जाता; इसका कारण स्यात् इतने दूर आनेका परिश्रम और क्षुधाहो ! हमारे पाठकवर्ग उनके घोड़ेका नाम कदाचित् भूले न होंगे। उसका नाम मनोजव, अर्थात् मन-कैसा द्रुतगति था, ऐसे घोड़ेपर बैठकर कुसुमपुरसे विध्यारण्यको आनेमें न जाने कितना समय और परिश्रम हुआ होगा ? वैसेही क्षुधाशांतिका उपाय क्या निद्रादेवीकी शरण के अतिरिक्त उन्हें दूसरा और नहीं जान पड़ा ? पर अपने कविकी रीतिही कुछ विचित्र है। उसे तो कविजनसंप्रदायानुसार अपने काव्यमें संभोग और विप्रलंभ इन दोनो शृंगारोंको किसी प्रकार लाना अभी ष्टथा, यही कारणहै कि, उनकी संपादनचितामें मग्न हो हमारे कविने कथासूत्रकी उपेक्षा की है ऐसा जानपडता है। संभोगशृंगारकी पराकाष्ठा ऊपर होही चुकी। अब रही बात नायक नायिकाके वियोगकी। सो उसे संघटित करनेकेलिये सुबंधुने उक्त विलक्षण आख्यायिका जोड़ दी है। अत्युक्ति और असंभवताके उदाहरणभी इस ग्रंथमे कही कही पाये जाते हैं।

नायक नायिकाकी प्रथम चार आंखे होतेही वे दोनो परमानंदकी उमंगमें मग्नहो संज्ञाशून्य हो गये। अनंतर उनकी मूर्च्छा टूटनेपर वासवदत्ताकी सखी कलावती कंदर्पकेतुमति निवेदन करती है:—

"महाराज हमारी सखीको जो मदनव्यथा सहन करनी पडी उसका मैं संक्षेपमे वर्णन करती हूं। यदि समुद्रकी दावात बनायी जाय, स्वयं चतुरानन लेखक बनै और शषजी वक्ताका कार्य्य ग्रहण करे तो कदाचित् सहस्रोयुगोंमें वह विरहव्यथाकी कथा शेष होगी। ऐसी अत्युक्ति आनंद तो उपजाही नही सकती बरन् उसकी अनिर्बंधतासे जी उकता उठता है। उसी प्रकारसे अगली दो घटनाएं असभव होनेके कारण वे संविधानकको दूषितकरनेवाली हुईहैं। वासवदत्ताने स्वयंवरवाली रात्रिको स्वप्न देखा, परंतु उसने पुरा-

णप्रसिद्ध ऊषाकीनांई केवल एक राजपुत्रही स्वप्नमे नही देखा किंतु स्वप्नमें उसका नाम धाम भी जान लिया और अंतमें आत्मनिमित्त जिन दो सैन्योंका युद्ध वासवदत्ताने कथित किया है उसमें वह कहती है कि, परस्परद्वारा उभय सैन्योका सर्वनाश होगया; निदान ऐसे औरभी कई दोष इस छोटीसी कथाके संविधानकमे पाये जाते हैं। तौभी सुबंधुकी ओरसे यहांपर यह लिखनेकेलिये हम बाध्य होते हैं कि, इन दोषोंको देखकर यह सिद्धांत कदापि नही किया जा सकता कि, सुबंधुमें कल्पनाशक्तिका अभाव था।हां यह अवश्य कहा जा सकताहै कि,कथाको सर्वांगसुंदर बांधनेकी चेष्टा उसने नहीं की,इससे उसकी उपेक्षा स्पष्ट बोध होती है—और एतदर्थ उसपर जो दोष आरोपित हो सो भले हीहो—पर कल्पनाशक्तिकी स्थितिही उसके मस्तिष्कमे न थी यह कहनेकेलिये अन्यप्रमाणोकी आवश्यकता है।

'वासवदत्ता' उपन्यास 'कादंबरी' और 'दशकुमारचरित, की अपेक्षा बहुतही छोटा है, और डॉक्टर हॉल साहिबके कथनानुसार उसमेंसे वर्णनादिकोंकी सजावट यदि निकाल दी जाय तो अभी उसका आकार जितना है उसका दशांशमात्र शेष रह जायगा। अर्थात् पीछे जो चार पांच पृष्ठमें कथासूत्र लिखा गया है वही रहजायगा। संस्कृतके साहित्यग्रंथोमे महाकाव्योका लक्षण यह पाया जाता है कि, उनमे प्रभात, सूर्य्यास्त, पर्वत समुद्र और नगरादिकोंका वर्णन किया जाना चाहिये।×तदनुसार सुबंधुने उन्हे वर्तमान कथामे लानेकेहेतु चेष्टा की है। पर बात यहहै कि,वे सब अप्रधान होनेपरभी हमारे वर्त्तमान उपन्यासलेखकने उन्हे इस ग्रंथमे सर्वथा प्रधानताका पद प्रदान किया है। इसउपन्यासको मननपूर्वक विचारो तो यह बात लक्षित होती है कि, जैसे अपर उपन्यासलेखकोका लक्ष्य विशेषतः कथाकी ओर रहता है वैसा इसका नही पाया जाता, किंतु यह बात बोध होतीहै कि, मानो हमारे कवि कथाकी झंझटको किसी-

---

×"नगरार्णवशैलर्तुचंद्रसूर्योदिवर्णनैः।
अलंकृतम्" असंक्षिप्त रसभावानिरंतरम॥

'काव्यादर्श'।

प्रकार निपटा वर्णन लिखनेकी उत्कठा प्रदर्शित कर रहे है । मुख्य कथाके जिन भागोका बीचबीचमे उल्लिखित होना आवश्यक था उन्हें आपने इतने शीघ्र शेष कर दिया है कि, उनके विषयमे चार पांच पंक्तिसे अधिक कही कुछ लिखाही नही । पर जहां वर्णनका प्रारभ होताहै वहां हमारे कवि उसके विस्तारका अनुमान तक नही होने देते । इसके उदाहरणस्वरूपमे यह बात लिखी जाती है कि, अपने मित्रकी अस्वस्थताके समाचार सुन मकरंद कंदर्पकेतुसे मिलनेको गया, और कहनेलगा कि, मित्र! तुम्हारी ऐसी विषम-अवस्थाके संवादको सुन सज्जनलोग नितांत दुःखी हुए है; और दुरात्माजन परम हृष्ट हुए है । यहांपर खलोका संबंधमात्र आया। बस उसका सहारा मिलतेही हाथके विषयको छोड अर्वाचीन संस्कृतकवियोके इस अभीष्टविषयका विस्तार किये विना हमारे कविसे न रहा गया । ग्रंथके आदिमे तीन चार आर्य्याओमे अपने भविष्यत् दूषकोपर आक्षेपकर सतुष्ट नही हुए सो आगे उनका अणुमात्रभी संबंध न होनेपर भी उनके आक्षेपमें आपने एक दो पृष्ठ रँगदिये है ! और अतमे कथाको चुटकी बजाते शेष कर दिया है । " इतनेमे मकरद आया, और सबलोग मिलकर चितामणि राजाके नगरको लौट गये।" यहांपर पहिले तो मकरंदका वहांपर अचानक आजानाही बड़ी विचित्र घटना है!कदर्पकेतु अरण्यमे भ्रमण कर रहा था पर न जाने उसका ठीक ठीक पता एकाएक उसे कैसे लग गया?भला यह बात रहने दीजिये,पर चिरवियोगके अनतर भेट होनेपर क्या उन परस्परकी कुछभी बातचीत न होनी चाहिये थी?कंदर्पकेतु और वासवदत्ताने अभी जिन अद्भुतघटनाओको देखा था उन्हें कदर्पकेतु वा वासवदत्ताके बापके यहां जो घटना हुई उसका मकरदने क्या परस्परको कोई समाचार न कहना चाहिये था?पर इतने विस्तारका चरखा चलावै कौन? दोनो सैन्योंके युद्धका वर्णन शेष हुआ साथही कविकाभी कार्य्य संपूर्ण हो गया । परंतु कथाको किसी प्रकार शेष करनाही चाहिये अतः अतमें दो चार पक्ति उसे औरभी लिखनी पडी । निदान सुबंधुने उक्त प्रकारसे कथाके प्रधान अंगोकी उपेक्षाकर अप्रधान अंगोंकी ही

मौढता सर्वथा बढ़ायी है, ऐसेही स्थानोपर उसका ग्रंथ सदोष एवं उपहासका कारण हुआ है। प्रथमतो उसके पात्रही इने गिने हैं, पर तिसपरभी आपने उन्हें यथेच्छ आलाप नहीं करने दिया। उन्हें योंही काममात्रकेलिये उपस्थितकर अपनी कथाका वह स्वयं आपही मुख्यपात्र बन बैठा है। सारांश जैसे मंदारी अपने हाथकी सफाईको सहायता देनेवाले बोरेमेंसे नाना प्रकारकी वस्तु निकालता जाता है, और खेलके समस्त दर्शकलोगोंका ध्यान प्रधानतया उन पदार्थोपर नही रहता किंतु:उसीकी ओर रहताहै,वैसेही हमारे कविने वर्त्तमान संविधानकका उपक्षेप केवल पाठकोंको अपनी शब्दार्थचमत्कृति प्रदर्शित करनेवाली शैली ज्ञात करानेके अभिप्रायसेही किया है; और इस ग्रथके नायकादिपात्रोंकी मुख्यताभी वैसीही नाममात्रकी है। अपनीवक्रोक्तिपटुता प्रदर्शितकर पाठकोसे प्रशंसाप्राप्तकरनेकी इसकविको अनिवार्य्य इच्छा होनेके कारण इसने अपने पात्रोंकी जो दुर्दशा की है सो लेखनशक्तिसे परे है।आपने अपने ग्रंथके नायकनायिकाकोभी तादृश बोलनेचालनेकी स्वतंत्रता नहीं दी है। एक स्थानपर तो उन्ह कठपुतलियोंकीनाई रातभर चुपचाप बैठालरक्खा है;मकरंदको जो कहना चाहिये था उसे छोडकर उससे तद्भिन्नविषयपर सविस्तर वक्तृता दिलायी है; वासवदत्ता समरभूमिसे यद्यपि दूर चली गयीथी,और वैसा लोमहर्षण दृश्य उसके पूर्व उसने कभी देखाभी न था,और स्त्रीजनोचित भीरुताके कारण ऐसी भीषणघटनाओंका स्मरणमात्र उसकेलिये असह्य दुःखकी सामग्री थी, तौभी उससे हमारे कविने उन बनचरलोगोंके उभयांतपरिणामी भयावने युद्धका यथेच्छ वर्णन कराया है !

यहां लों वासवदत्ताकी रचनाके विषयमे आलोचना की गयी । अब उसके अंतस्थ विषयकी मीमांसा की जाती है। खेदका विषय है कि, इस विषयमें भी यथार्थरसिकको यथेच्छ आनंददेनेवाली बातें बहुत कम पायी जाती ह । बीचबीचमें कहींकहीं पर मनको आश्चर्यचकितकरनेवाली बातें पायी जाती हैं सही; पर कोई चाहे किसी सविस्तर उत्कृष्ट

स्थलको उद्धृत करैं तो वह बात प्रायः नहीं हो सकती। इसके सिवाय यह बात स्पष्टही है कि, इस उपन्यासका संविधनाक नितांत छोटा होनेके-कारण किसी रसको पुष्टकरनेका अवकाशही उसमे नही है। स्थल इतना संकुचित है तोभी हमारे कविने उसीमें सब रसोंकी चासनी उतारने-की चेष्टा की है। शृंगारकी उभय घटनाएँ पीछे उल्लिखित हो ही चुकी हैं, तद-तिरिक्त नायकके विलापमे करुणा, उसके प्रतापवर्णनमे वीर, दोनो सैन्योंके युद्धवर्णनमें रौद्र, और भयानक, और पूरी कथामें अद्भुत, और बीचमे एक स्थानपर (कंदर्पकेतुके वासवदत्ताको ले मनोजवारूढ हो विंध्याटवीकी-ओर जाती बार) मर्घटाके वर्णनमे बीभत्स रस * लाया गया है। सारांश ऐसी अधाधुंधीमे एक रसभी यथोचित रीतिसे प्रतिपादित नही हो सका। अब रही बात हमारे कविके प्रिय विषय वर्णनादिविस्तारकी सो उसके विषयमे यह मुक्तकंठसे कहा जा सकता है कि, जो पाठकगण केवल नादलुब्ध-होते है अर्थात् अर्थचमत्कृतिकी अपेक्षा शब्दचमत्कृतिही जिन्हे अधिकतर प्यारी होती है उन दुर्विदग्ध पाठकोको उक्त वर्णन मोहित करलेंगे इसमे तनिकभी सदेह नही है। यह भलेही हो पर सच्चे रसिकका मनरंजितकर-नेकी सामग्री उनमे बहुतथोड़ी पायी जाती है। क्योंकि प्रथमतो उनमें नई उक्तियाँ बहुत कम हैं और इनके सिवाय ठौरठौरपर क्लिष्टता और अश्लीलता प्रभृतिदोषभी दृष्टिगत होते है। इनदोषोंके उदाहरण नीचे यथाक्रम उद्धृत-किये जाते है।

* बीभत्स रसकेलिये कविने यह स्थानतो बहुत अच्छा सोचा है। नजाने सुबंधुने यह बात कैसे सोची कि, अपने गांधर्वविवाहविधिको शेषकर शृंगारोत्सव मनानेकेलिये विंध्यारण्यको जाती बार मार्गमें उन्हे (नायकनायिकाको) श्मशानका दर्शन बड़ा रसोद्दीपक होगा। इससेभी बढिया शंकाका स्थल यह है कि, पानमे चूनालगानेको विलब भलेही लगे पर कुसुमपुरसे विंध्याटवीपहुँचनेको मनोजवको कदापि विलब न होता, ऐसी अवस्थामें श्मशानके भिन्न २ दृश्योंको देखनेकेलिये कंदर्पकेतुको अवकाश कैसे मिला। जान पड़ताहै हमारे कविको इस प्रधान रसकी ऊनता खट-कती थी, अतः उसे किसी प्रकार ग्रंथमें लानाही चाहिये था। तो फिर ऐसी अवस्थामें उचिता-नुचित घटना की ओर कौन ध्यान देसकता है? यहाँपर हमारेरसज्ञपाठकोंको 'मालतीमाधव' के बीभत्सरसवर्णनका स्मरण हुए विना न रहेगा। वहाका प्रसग कितनी उत्तमताके साथ लायागया है और उसे वह अगले संविधानककी शोभा बढ़ानेकेलिये कितना उपयोगी हुआ है।

सुबंधुके इस ग्रंथका पहिला प्रचंड दोष यह है कि, उसके संविधानक और अपर अंगोमेंसे ऐसे बहुतही थोडे हैं जो स्वय सुबंधुकृत कहे जासके। पुराकालीन संस्कृत कवियोके संप्रदायको छोड़ तिलभरभी इधर उधर हटनेकेलिये उसने चेष्टा नहीकी। ऐसी अवस्थामें यह कब संभव है कि, जो लोग भूतपूर्व्व परम माननीय लोगोंकी कविताको देख चुके हैं उनकी इस अनुकृति (नकल) द्वारा मनस्तुष्टि हो? यहीपर यह दोष शेष नहीं होता। क्योंकि सुबंधु यदि प्राचीनलोगोंकी शैलीमात्रको अनुकृत करता तौभी यह स्वतंत्र ग्रंथ पाठकोद्वारा आदरार्ह होता। पर इस ग्रंथमे वैसा कुछभी नहीं पाया जाता। भूतपूर्व्व कवियोंकी उक्तियां इस ग्रथमे स्वीकृत हुई ठौरठौरपर दृष्टिगत होती हैं। अब यह बात सच है कि, वे उक्तियां मूलकी अपेक्षा इसग्रंथमे किंचित् सविस्तररूपसे देख पडती हैं; पर वे इतनी अधिक हैं और इतने स्पष्टरूपसे अंगीकृत की गयी हैं कि मानो हमारे कविने उनके अनुष्ठानको दूषितही नही माना है। ऐसे स्थानोका ग्रंथक्रमानुसार नीचे निर्देश किया जाता है।

डॉक्टर हॉलसाहिबद्वारा प्रकाशित संस्करण—पृष्ठ ४१

(कंदर्पकेतुके पराक्रमका वर्णन)

—यस्य च समरभुवि भुजदंडेन कोदंडं कोदंडेन शराः शरैरारिशिरस्तेनापिभूमंडलं तेन चाननुभूतपूर्व्वो नायको नायकेन कीर्त्तिः कीर्त्त्या च सप्तसागराः सागरैः कृतयुगादिराजचरितस्मरणमनेन च स्थैर्य्यममुना च प्रतिक्षणमाश्चर्य्यमासादितम्। *

---

* सग्रामांगणमागतेन भवता चापे समारोपिते
देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम्।
कोदंडेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमंडलं
तेन त्वं भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम्॥

पृष्ठ ६४ (नायिकावर्णन)

—भास्वताऽलंकारेण चंद्रेण वदनमंडलेन लोहितेनाधरपल्लवेन सौम्येन गुरुणा नितंबबिंबेन विकचेन नेत्रकमलेन शनैश्चरेण पादेन तमसा केशपाशेन ग्रहमयीमिव संसारभित्तिचित्रलेखामिव त्रैलोक्यसौंदर्य्यसंकेतभूमिमिव .....कन्यकामष्टादशवर्षदेशीयामपश्यत् स्वप्ने । *

पृष्ठ ८० (मकरंद खलोपर आक्षेप करनेके अनंतर जडपदार्थोंकी मित्रताका वर्णन करता है)

तथाहि माधुर्य्यशैत्यशुचित्वसंतापशांतिभिः पयः पय इवेति मित्रतामुपगतस्य दुग्धस्य तत्संगमाद्वर्धितस्य क्राथेन ममैव परोयुक्तः क्षय इति विचिंत्येव वारिणापि क्षीयते । §

पृष्ठ १३६ (वसतवर्णन)

—वृंतविनिर्गतविचकिलकलिकातले मंजु गुंजन्मधुकरो मकरकेतोस्त्रिभुनविजयप्रयाणशंखध्वनिमिव चकार ।—

---

* गुरुणा स्तनभारेण मुखचद्रेण भास्वता ।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्या रेजे ग्रहमयीव सा ॥
भर्तृहरि—शृगारशतक ।

§ क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा ते ऽखिलाः
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ।
गतु पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापद
युक्त तेन जलेन शाम्यति सता मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥
भर्तृहरि—नीतिशतक ।

—मालतीमुकुले भाति गुजन्मत्तमधुव्रत ।
प्रयाणे पचबाणस्य शखमापूरयन्निव ॥

पृष्ठ १५५ (स्वयंवरवाली रात्रिको स्वप्नमे कदर्पकेतुको देख उसके विप्रयोगके कारण वासवदत्ताकी जो अवस्था हुई उसका वर्णन)

शून्यकरणग्रामे हृदये लिखितामिवोत्कीर्णामिव प्रत्युप्तामिव कीलितामिव निगलितामिव वज्रलेपघटितामिव……आत्मानमधिष्ठितामिव कंदर्पकेतुं मन्यमाना—*

पृष्ठ २२१ (वासवदत्ताके भवनका वर्णन)

क्वचिदतिगंभीरमुरजरवाहूतसानंदनर्त्तितनीलकंठं ¶

पृष्ठ २९६ (युद्धवर्णन)

कर्णाभ्यां श्रुतपरपरिवादाभ्यां खलोदयसाधुविपत्तिसाक्षिभ्यामक्षिभ्यां मूर्ध्ना चास्थानेऽपि नमता विमुक्तोऽहमिति हर्षादिव ननर्त्त चिरं कबंधः‡

उक्त उदाहरण स्पष्टरूपसे साक्षी दे रहे हैं कि, हमारे कवि परोक्त्यपहरणार्थ कोई संकोच नहीं मानते थे। यह कार्य्य अश्लाघ्य भलेही हो पर एतद्वारा हमारे कविने सबलोगोंपर एक बड़ा भारी उपकार किया है। वह

---

* लीनेव प्रतिबिंबितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च
प्रत्युप्तेव च वज्रलेपघटिते वातर्निखातेव च।
सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभिः
चितासनतितंतुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया॥
मालतीमाधव ५

¶ सानंद नंदिहस्ताहतमुरजरवाहूतकौमारबर्हि—
(त्रासान्नासाग्ररंध्रं विशति फणिपतौ भागसंकोचभाजि।)
मालतीमाधव—नांदी

‡ लडाईमे एक मनुष्यका शिर धडसे अलग होनेपर हँसा। वह क्यो हँसा? इस पर एक कविने उत्प्रेक्षा कीहै—

कंधरा समपहाय कंधरां प्राप्य सयति जहास कस्यचित्।
मा किलानमयतः स्वपर्त्तये दुर्भरात्किमुदराद्वियोगतः॥

भवभूतिके जीवितकालका परिचय❀है। अस्तु; यहां हम अपने पाठकोंको- यह बात सूचित कर देना आवश्यक समझते हैं कि, पिछले पृष्ठकी टिप्पणीमें लिखे हुए श्लोकोमेंसे तीनों श्लोकोका रचयिता प्रसिद्ध नहीं है,—निदान हमतो उसे अभीलों नहींजानते। एतावता यहभी संभव है कि, सुबंधुकीही उक्ति के मूलार्थको ले किसी अनंतरके कविने उन्हे प्रणीत किया हो। यदि यह बात आगे पीछे कभी निश्चित होजाय तो आजही हम अपने कविको मिथ्या अभियुक्त करनेके दोषके क्षमाप्रार्थी हो रहते है।

दूसरा दोष जटिलता वा दुर्बोधता है।इस दोषसे समूचा ग्रंथ दूषित नही कियाजा सकता क्योकि बहुतेरे स्थानोंपर वह बहुतकुछ सुबोधभी है। पर जहां सुबधु अपने 'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबंधविन्यासवैदग्धनिधित्व' विशेषरूपसे दिखलानेको उद्यत होता है, वहां पर भिन्न २ अर्थोंको स्पष्ट करतेकरते तत्कार्यपटु टीकाकारोंके भी प्राण सूखने लगते हैं! जैसे

पृष्ठ १४२ (स्वयंवरार्थलायेहुए अभागे राजपुत्रोका उपहास-रूपवर्णन ।)

तत्र च केचित् कलांकुरा इव विजितनगरमंडना अपरे पांडवा इव दिव्यचक्षुःकृष्णागुरुपरिमिलिता अन्ये शरद्दिवसा इव सुदूरप्रवृद्धसुखाशा इतरे व्याहंतुमुद्यता इव स्वबलार्पिनः केचिद्व्याधा इव शकु-

---

❀ इसका आजपर्यंत ठीकठीक पता नहीं लगा था। पर उक्त दो सग्रहोंको वासवदत्तामें देख उसके निश्चयमें कोई सदेह नहीं रहता। अत. पीछे भवभूतिके प्रबंधमें हमने जे लिखा है कि, उसके कालका ठीकठीक पता नहीं लगता उसके स्थानमें हमारे पाठकगण इस शोधको प्रयुक्त कर लेवें। अब इस कालक्रमानुसार यह श्रेणियों सिद्ध हुई—कालिदास—भवभूति—सुबधु—बाण।

इसके सिवाय एक विचित्र बात हमारे देखनेमें औरभी आई है उसका यहा स्पष्टतया उल्लिखित हो जाना आवश्यक जान पडता है।वह यह है कि, हॉलसाहिबने अपनी भूमिकामे हर्षचरितका जो सग्रह उद्धृत किया है उसमें "कालिदास और सुबधुका जैसा नामोल्लेख हुआ है" वैसा भवभूतिका नहीं देख पडता। यह बात न जाने क्योंकर हुई?

नश्रावकाः केचिदाखेटका इव रूपानुसारप्रवृत्ताः केचिज्जैमिनिमतानुसारिण इव तथागतमतध्वंसिनः केचित् खंजना इव सांवत्सरफलदर्शिनः केचित् सुमेरुपरिसरा इव कार्त्तस्वरमयाः केचित् विकचकुसुदाकरा इव भास्वद्दर्शननिमीलिताः केचिद्धार्त्तराष्ट्रा इव विश्वरूपावलोकनजनितेंद्रजालप्रत्ययाः केचिदात्मनिवारणबुद्ध्या बलवंतोऽपि सुवाहाः केचित् पाणिग्रहणार्थिनोऽप्यसुकरंमन्यमानाः केचिदधरीभूता अपि स्थिराः केचित् पांडुपुत्रा इवाक्षहृदयज्ञानहृतक्षमाः केचिद्बृहत्कथाऽनुबंधिनो गुणाढ्याः केचित् तिर्य्यग्गतयःसुगंधवाहाः केचित् कौरवसैनिका इव द्रोणाशासूचकाः केचित् कुमुदाकरा इवासोढशूरभासः स्थिता राजपुत्राः । तानेकैकशः समवलोक्य विरक्तहृदयाऽसौ कुमारिका तस्मात्कर्णवंशादवततार ॥

पृष्ठ १९५

(चंद्रोदयके अनंतर अभिसारिका नायिकागणद्वारा निज वल्लभोंमति प्रेषित कीहुई दूतियोकी श्लेषोक्ति)

अत्रांतरेऽभिसारिकासार्थप्रहितानां प्रियतमान् प्रतिदूतीनां द्व्यर्थाः सेर्ष्याः सप्रपंचा विकारभंगुराः प्रवादा बभूवुः ॥ तथाहि ।

अवस्त्रीकृतमात्मानं नाकलयसि तत्त्वतः कांत प्र-
स्तर इव क्रूरोऽसि न चाकर्षकचुंबकद्रावकेष्वेकोऽ-
सि भ्रामकोऽसि परं कितव धर्म्मार्थान्यप्रयुक्तः क्षेप-
णिक इव मुधा वाहिततरवारिस्त्वमसि सखेद-
मिव मनसा चिंतयसि दुर्लभं जनं सत्वसारचरितो
यो रिपुमंडलाग्रतो निर्वृतिमुपेत्य तिष्ठति । स खलु
वीरः प्रतिपक्षस्य यः संप्रहारतः कुंजरान् नयति ।
धृतोरुकरवालसंचयोऽपि परमकांड एव संपतन्
महापदं विग्रहेण लभते । राजसेन रहितो राजसे
न रहितो ध्रुवं विशारदा विशारदाभ्रविशदा विश-
दात्मनीनमहिमा महिमानरक्षणक्षमा क्षमातिलक-
धीरता धीरता मनसि भूतता भूतता वचासि साह-
सेन साहसेन कमलाकमलापराजिता पराजिता
सा त्वदर्पणा दर्पणाकारविमलाशया शयाब्जावि-
निर्जितकिसलया सलयांगुलिविभ्रमेण विभ्रमेण
प्रतिगवाक्षशलकाविवरं विलोकयंती विलोकयंती
त्वया विना साविना सायमनुभवंती दुःखानि जी-
वनायक जीवनाय क इह नाश्रयंति सुभगाम्।अ-
न्यास्तावदासतां दासतां पुरतोऽहमेव भजामि ।
मैत्र्यतोऽमैत्र्यतोऽस्तु अंजसारतः सारतः किमपि
कंदर्पकं दर्पकं न तनोषि विशेषतोऽशेषतःस्थित-

मेव मरणं शठधियां शोधन यशोधनप्रेमहार्यामहार्याशयोत्कटाक्षैः कटाक्षैराविर्भूतदास्यास्तदास्याः परिजनाः कमलाकृतिनारीणां कमलाकृतिनारीणां भवता मुखं च मलिनितं विश्वस्य विश्वस्य व्यवस्था समासाद्य समासाद्यमनेककालसंगीतसंगी तनुषे तनुषेकमनंगमनंगपुष्पेषु पुष्पेषु रुजा तरसा जातरसा मन्दाक्षमन्दा क्षणं भ्रमन्ती मुह्यति कामधुराधरेण का मधुराधरेण मुक्तारजोराशिविशेषकेण विशेषकेण मुखेंदुना तव हृदि लग्ना भ्रदिमाकरेण करेण स्वेदबिंदुपयो धरेण पयोधरेण वक्षःफलकांचनेन जितानाविलकांचनेन कामदारुणमदारुणनेत्रा स्मरमयं रमयन्तं त्वामदयं दमयन्ती परमकमितारं परमकमितारं वांछति हारिणा हारिणा स्तनकुंभेन हारिणाक्षिरुचिहारिणा रुचिहारिणा चक्षुषा हारिणा ।

निदान ऐसेही औरभी एक स्थानपर सुबंधुने श्लेषोंकी खूब रेलपेल करदी है, पर खेदका विषय है कि, स्थानसकोचवश वह पूरा संग्रह यहांपर उद्धृत नही किया जा सकता । आधुनिक लोगोंमे श्लेषोंके रसिक प्रथम तो वैसे कोई हुई नही है और जो इनेगिने होंगे उनकोलिये हम समझते हैं उक्त दोही संग्रह आवश्यकसे अधिक होंगे ।

प्रकृत ग्रंथका तीसरा दोष अश्लीलता है । वास्तवमें यह महान् प्रचंड दोषहै पर नजाने क्यों यह विषय हमारे कविको बडा प्रिय जान पड़ता था। वसंतके वर्णनमे (पृष्ठ १३२) आप लिखते हैं—

प्रतिदिशमश्लीलप्रायगीयमानगीतश्रवणोत्सुकरिवं गजनप्रारब्धचर्चरीगीताकर्णनमुह्यमानानेकपथि-कशतः।

वसंतऋतुमे चारो ओर अश्लीलतापूरित ऐसा कलगान श्रवणगत होता है कि सैकडो पथिकगण अपनी राह चलाना भूल लुब्धहोकर वही ठहरते हैं) वैसेही (पृष्ठ १६९) संध्याकालके वर्णनमे।

'कामुकजनानुबध्यमानदासीजनविविधाश्लीलवच-नश्रुतिविरसीकृतसंध्यावंदनोपविष्टेषु शिष्टेषु'

दासियोके पीछे दौड़तेहुए काम जिनोकी अश्लील बाते सुनकर संध्यावंदनार्थ बैठेहुए शिष्टजनोकी संध्या विरस होती है)उक्त दोनोसग्रहोको पढ अनुमान होता है कि,सुबंधुके समयमें लोगोके आचार बिचार पूर्वकी अपेक्षा बहुत भ्रष्ट हो गये होंगे।जिस कविने प्रत्येक वसंतका सुतरा प्रत्येक संध्याकालका इस चावके साथ वर्णनकियाहै स्वय उसीके ग्रंथमे वैसीअश्लीलता क्यों नरहनी चाहिये ?—

पृष्ठ २० (चितामाणिराजाकी राज्यरीतिका वर्णन)

—शूलभंगो युवतिप्रसवे—

पृष्ठ ५२ (प्रभातकालीनस्त्रीचारितका वर्णन)

—आसन्नमरणास्विव *जीवितेशपुराभिमुखीषु... प्रियैरालिंग्यमानासु कामिनीषु ... ...

पृष्ठ ७७ (खलोंपर आक्षेप)

—रतकीलइव जघन्यकर्म्मलग्नः द्वेपयतिसाधून्—

* मनको उद्विग्नकरनेवाला यह श्लेष स्वयं सुबधुका है वा नहीं इसमें बड़ा संदेह जान पडता है। उक्त श्लेष अगलेश्लोकसे लिया गयासा जानपड़ता है:—

राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गधवद्रुधिरचदनोक्षिता 'जीवितेशवसतिं' जगाम सा॥

रघुवंश ११

पृष्ठ ११५ (कुसुमपुरकीवारवनिताओंका वर्णन)

—जलौकसेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन ... वेश्याजनेनाधिष्ठितं कुसुमपुरं नाम नगरम्।

पृष्ठ १२८ (वासवदत्ताके पिताकी राज्यरीति)

—वृषहानिर्निधुवनलीलासु न पौरेषु—

पृष्ठ १८४ (रजनीमुखवर्णन)

—ताभिः (तारकाभिः) श्वित्रितामिव वियदशोभत-

पृष्ठ २६९ (जलधिवर्णन)

—सापस्मारमिव फेनैः ...... जलनिधिमपश्यत्।

कहना नहीं होगा कि, उक्त तीनो दोष नितांत रसापकर्षक हैं, और यही-कारण जान पड़तेहैं कि, जिनके योगसे यहग्रंथ रसिकप्रिय नहीं हुआ और इन्हींके योगसे सुबंधुका नामभी तादृश प्रसिद्ध नही हो पाया।

अब इस विषयकी आलोचना की जातीहै कि सुबंधु, कवियोकी किस श्रेणीमे परिगणित हो सकता है। वर्त्तमान कथाको विचारनेसे यह बात स्पष्टतया बोध होती है कि, वह पूर्व्वोक्त तीन कवियोकी कक्षामे कदापि स्थान नही पा सकता। ऊपर कहे हुए तीनदोषोंद्वारा सुबंधुके मनकी भिन्न२ तीन छटा प्रगट-होती हैं। पहिलीद्वारा मनकी अगभीरता, दूसरीद्वारा अरसिकता और तीसरीद्वारा ग्रामीणता। इनमेंसे दूसरी और तीसरीके साथ सत्कवित्वका प्राकृतिकविरोधहोनेके कारण, कीर्तिमंदिरके परमोच्चशिखरसे अधःपतित करनेके लिये उनमेसे एकही अलम् है ! और अकेला पहिला दोष यद्यपि दूसरे और तीसरे कैसा समर्थ नहींहै तथापि उनकी सान्निकटताके कारण वह पुनः समर्थ-हो जाता है। यहांपर यह बात अवश्य मानी जा सकती है कि, सुबंधुके समयमें यथार्थकवित्वका ह्रास होना प्रारंभ होजानेके कारण उक्त विषयमे वह काल जितना दूषणीय कहा जा सकता है उतना दोष स्वयं सुबंधुको नही दिया जासकता; क्योकि किसीको आत्मकालीन लोगोंकी अपेक्षा समझ और अभिरुचिमे श्रेष्ठ न देख उसे नाम रखना अनुचित बोध होता है। पर यह बात सामान्यजनोके विषयमे ही कही जा सकती है। जो लोग निसर्गतः उदारचेता होते हैं वे पंकपंकजन्यायानुसार निज समयके दूषणोसे दूरही रहते हैं। हमारे कविको यह स्वभावोन्नति यदि प्राप्त होती तो अपने भूतपूर्व भवभूति

अवश्यमेव सन्मानार्ह हैं । 'दशकुमारचरित' और विशेषतः 'कादंबरी' के रसानुभव लेतीवार पाठकोंको उचित है कि तदर्थ वे सुबंधुके उपकारोंको विस्मृत न करें । और दूसरी बात यह है कि 'वासवदत्ता' को पढ़ यदि रसिकपाठकोंकी सर्वथा तृप्ति नहीं होती, तौ एतदर्थ और पठनके व्यर्थ परिश्रमार्थ वे लोग सुबंधुको दोषभाक् कदापि नहीं कह सकते । क्योंकि वर्त्तमान प्रबंधके पठनद्वारा पाठकोंको किस प्रकारकी तृप्ति प्राप्त होगी सो बात हमारे कविने ग्रंथके आदिमेही स्पष्टरूपसे जता दी है । वह बात यही है कि 'प्रत्येकअक्षरमें श्लेषचमत्कृति प्रतिपादितकर' चित्रविचित्रगद्यरचनाद्वारा मनको चकित करना । हमारे कविकी इस अभिलाषाको रसिकलोग अत्यत विचित्र किबहुना लड़कपनकी भलेही कह ले, पर उन्हें यह बात स्पष्टरूपसे अंगीकृत करना होगी कि उसने अपनी अभिलाषाकी पूर्त्तिमें पूर्ण सफलता प्राप्त की है। यही सब कारण हैं कि जिनके योगसे यह ग्रंथ उत्तम काव्योंकी कक्षामें गौरवका पद नही पा सकता, पर तथापि जब कुछ काम न हो तब निजके मनोरंजनार्थ यदि उसका अवलोकन किया जाय तो वह बहुत उत्तमतया हो सकता है। 'वासवदत्ता' के तादृश समादृत एवं रसिकजनप्रिय न होनेका तीसरा कारण यहभी कहा जाता है कि अगले दो ग्रंथों और विशेषतः उनमेसे एकके कारण तो वह सर्वथा लुप्त ही हो गयी । तो इनग्रंथोके कारण (कि जो वासवदत्ताकी शैलीपर लिपिबद्ध किये गये हैं) निगोड़े दुर्भागवश अथवा यथार्थमें सौभाग्यवश (क्योंकि वैसे समुज्वल प्रबोधोका आदिहेतु होना कुछ न्यून गौरवकी बात नहीं है) उसकी जो दुर्दशा हुई उसीको प्रधानता प्रदानकर उसकी योग्यता ऊन मानना सर्वथैव अनुचित है । इसके सिवाय सुबंधुके समय और उसके स्वभावके साथ कीलित हुई श्रमविमुखताका यदि विचार किया जाय तो इसमे अणुमात्रभी संदेह नहीं है कि उसकी वर्त्तमान दूषणार्हता बहुतही न्यून लक्षित होगी ।

निदान उक्त प्रकारसे वर्त्तमान कविके पक्षमें कई बाते सूचित की गयीं । पर इस कथनसे यह नही समझलेना चाहिये कि सुबंधुकी बड़ी भारी योग्यता इतनी ही है कि उसके दोष क्षमाके योग्य हैं । अभी उसके कई गुणोंक

उल्लेख होनेकोही है, और उनके पीछेसे उल्लिखित करनेका कारण इतनाही है कि पूर्वोक्त प्रचंड दोष जैसे सहजही दृष्टिपथमें आ सकते हैं वैसे वे नहीं आ सकते। सुबंधुका सबसे पहिला गुण तो यह है कि भाषा उसके आधीन थी, इसे प्रमाणित करनेकेलिये प्रायः ग्रथभरमे जो श्लेषरचना पायी जाती है सो ही अलम् हैं। इसके अतिरिक्त शब्दोकी रचनाभी प्रौढ एवं मधुर है। और कहींकहींके वर्णनभी चमत्कारजनक हैं।

ये बाते तो सब हुई पर सुबंधुके यथार्थ कवित्वका स्वरूप वर्त्तमान ग्रंथेक उपांगो अर्थात् प्रस्तावना और बीच बीचमे प्रयुक्त किये हुए वर्णन-रूप पद्योंमेंही—दृग्गोचर होता है। हमे दृढ विश्वास है कि रसिक एवं सहृदय पाठकोंको इन पद्योंसे जो प्रथम आनंदानुभव होता है। और आगेकेलिये प्रथमतः जो आशा होती है। सो सब आगे ज्यो ज्यों ग्रंथ पढ़ते जाव व्यर्थ एवं विफल होते जाती है। इन उपांगोके इतने उत्कृष्ट प्रतिपादित होनेका कारण स्पष्टही है। वह यही है कि कल्पना और रचनाके संबंधसे ग्रथ-भरमे जो कृत्रिमता हठात् लायी गयी है, वह उभय स्थानमें इन उपांगोंमें तिलमात्रभी नहीं है। उनकी रचना नितांत सरल है और उनमे उन्हीं मनो-वृत्तियोका वर्णन किया गया है जो कविको प्रत्यक्ष एव अनुभूत हुई है। इस कथनके उदाहरण स्वरूपमे उस आर्याका नामोल्लेख किया जा सकता है कि जिसमे कविने महान् पराक्रमी एवं विद्वानोंका लालन करनेवाले विक्रमादित्यके समयमें अपने जन्म न ग्रहण करने तथा राजाके साथ चले गये हुए उसके विशा-लाविभवके हेतु शोक वर्णित कियाहै। यहांपर हम यह प्रश्न करतेहैं कि, क्या कोई सहृदय पाठक इस बातको साहसपूर्वक कह सकता है कि, क्या उक्त आर्य्या-तर्गत करुणारसकी समानता, ग्रथके नायकका शोक, यदि वह दश गुणितभी कर दिया जाय तो, कर सकेगा? वैसेही प्रस्तावनाकी प्रथम

लिखे गये हैं वे सब उन दो श्लोकोंद्वारा कि, जो विंध्यारण्यके सिंहके वर्णनमें लिखे गयेहैं, तिरस्कृत हुएसे जान पडते हैं। सारांश हमारे कविकी वाणी, यदि अपने प्रकृतिसुलभ सौंदर्य्यकी, योग्यताको भलीभांति जान केवल अरसिकोंकी मनस्तुष्टिकेहेतु एक मुहको छोड़ अपने समस्त गात्रको अप्रयोजक सजावटसे न छिपा लेती, तौ आज वह कभीकी अपनी समादृत सखियोंकी समकक्षिणी होनेका सौभाग्य प्राप्त कर चुकती; और संप्रति जो वह प्रत्येक गुणदोषविवेचक समालोचककी तीव्र आलोचनाका लक्ष्य बन पददलित हो अपनी अप्रबुद्धताका चिरकालीन प्रायश्चित्त भोग रही है वही थोडी चतुराईके योगसे अपनी जेठी बहिनकी नांई जगशिरोधार्य्य बन बैठती ।

यह सबतो हुआ पर विवेकी पाठकगण अभी यहां यह प्रश्न कर सकते हैं कि, ऊपर जो लिखा गया है सो सब सच है परंतु बाण कविने सुबंधुकी जो इतनी प्रशंसा की है उसकी क्या गति चिंतनीय है? और यह शंकाभी कोई ऐसी वैसी सामान्य शंका नहीं है, क्योंकि जो संस्कृतके गद्यकाव्यलेखकोंमें प्रथम माना जाता है,और जिसके परमोत्तम ग्रंथकी प्रशंसा घरघर फैल गयी, और इस फैलावके कारण मराठीमें समस्त गद्यकाव्य उसीके नामसे पुकारे जाते हैं, उस महान् ग्रंथप्रणेताका वचन यदि प्रमाणित एवं विश्वासपात्र न माना जाय तो फिर माना जाय किसका? यह सब सच है;पर उक्त स्तुतिको एकदेशीय ही मानना चाहिये—अर्थात् उक्त स्तुतिद्वारा बाणभट्टका यही अभिप्रेतार्थ ग्रहण करना चाहिये कि, सुबंधुने शब्दजालचमत्कृति प्रदर्शित करनेमें परा काष्ठा करदी है । इस अभिप्रायको बाणभट्टने निज 'कादंबरीमें' औरभी स्पष्ट कर दिया है—'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणीप्रतिपाद्यमानानेकाभिनवार्थसंचयम्' * (उत्कृष्ट कविके गद्यकीनांई जिसकी भिन्न २ वर्णपंक्तिसे अनेकार्थ निकलते हैं) । यहांपर यह बात स्पष्टही है कि, उक्त 'उत्कृष्टकवि' शब्दप्रधानतया सुबंधुका बोधक है, बाण कविके उक्त शब्दोंका यह अर्थ हमीने नहीं बैठाया है। तौ इसका निर्णय 'कादंब-

* उक्त वर्णन चद्रापीडके राजभवनप्रवेशके समयका है । उसका दूसरा अर्थभी स्पष्टही है "जिसपर भिन्न २ जातिके लोग वारवार धनराशिको लाकर डालते हैं"।

री' ग्रंथसेही होता है। 'कादंबरी' और 'वासवदत्ता' को जो लोग ध्यानपूर्वक पढेगे उन्हे यह बात तुरंतही ज्ञात हो जायगी कि 'कादंबरी' प्रणीत करती बार बाणभट्टका लक्ष्य 'वासवदत्ताकी' ओर किस प्रकारसे था। संविधानककी कतिपय घटनाएं ठौरठौरके सूर्य, चंद्र, ऋतु और पर्वतादिकोंके वर्णन, रचनाकी शैलीप्रभृति सबको बाणभट्टने सुबन्धुके ग्रंथसे अनुकृत किया है सो स्पष्ट बोध होता है। पर अधिक आश्चर्यकी बात तो यह हुई है कि, आजपर्य्यंत चारोंओर अनुकृतिकीही ख्याति विस्तृत हो रही है और मूलकृतिको कोई पूछतातक नहीं; इसका कारणभी गूढ नही है। वह यही है कि, बाणभट्टने 'वासवदत्ता' से केवल प्रौढ एवं सुकोमल वर्णरचना, कहीं कहींके विचित्र श्लेष और समासही अनुकृत किये हैं, पर जहां सुबंधुकी अत्यंत अरसिकता लक्षित होती है, वैसी पूर्वोदाहृत निरंतर प्रासरचनाकी, कि जो अनौचित्य एवं जटिलतादि औपन्यासिक दोषग्रसित है, उसने सर्वथा उपेक्षाही की है।'कादंबरी' भरमे वैसी सदोष रचना नाममात्रको कहीं नही पायी जाती। सारांश, बाणभट्टने वासवदत्ताके अशेषगुणोका स्वीकार कर उसके समस्त दोष परित्यक्त कर दिये हैं, इस प्रतिपादनद्वारा सुबंधुकी पूर्वोल्लिखित प्रशसातर्गत उसके मनका वास्तविक अर्थ स्पष्टरूपसे बोध होता है। तात्पर्य्य इस उक्तिको अंशतः सत्य और अंशतः कृतज्ञता एवं उपचारहेतुकही मानना चाहिये।

अब आगे वासवदत्ता और कादबरीकी परस्पर तुलना की जाती है। इस समताद्वारा सुबंधुकी कीर्त्ति के बाधक सब दोष अत्यत व्यक्त होजायँगे। पिछले प्रतिपादनको पढ़कर हमारे काव्यमर्मपटु पाठक इसबातको तो जानही-गये होंगे कि, संविधानक और रसपोषकतादिगुणोंमे वासवदत्ता कादंबरी की अणुमात्रभी समानता नहीं कर सकती।

हां यह अवश्य माना जा सकता है कि, ऐसी रचना दोनोंको अभीष्ट थी। पर साथही कहानीके अगोपांगोके विषयमे दोनोका मतभेद स्पष्ट देख पड़ता-है। सुबंधु कथाको गौण मान रचनाकोही काव्यसर्वस्व मानता है। उसके पीछे उसने संविधानक, रस और प्रसादादिको तिलांजलि दे अश्लीलतादि दोषों

को भी अपने ग्रंथमें स्थान प्रदान किया है। सुबंधुका एतद्विषयक गाढानुराग ग्रंथमें ठौरठौरपर झलकता है। प्रस्तावनाका अंतिम श्लोक तो पीछे एक स्थानपर उल्लिखित होही चुका है, उसमें आपने लिखही दियाहै कि भगवती सरस्वतीका परमोत्कृष्ट वरप्रदान जो हमें प्राप्त हुआ है सो अक्षरप्रति श्लेषबांधनेकी चतुराई है—यह कवि महाशय मानों इसीको वाग्देवीका निधिसर्वस्व मानते हैं! उसी प्रकारसे संध्यासमयके वर्णनमें एक स्थानपर (पृष्ठ १८४) लिखा है—"दीर्घोच्छ्वासरचनाकुलं सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्कविवचनमिव चक्रवाकमिथुनमतीवाखिद्यत" चकवाचकईका जोड़ा, सत्कविकी वाणीकी नांई दीर्घसमासपूरितरचना करनेमे व्यस्त हो श्लेषोक्तिघटनामें निपुण*होनेपरभी तीव्र विरह दुःखको अनुभूत करने लगा; इन दानोंसे यह बात प्रत्यक्ष होतीहै कि—लंबे चौडे समास और श्लेषकाही—कि जिन दोनोंका महाकवियोंके ग्रंथोंमें प्रायः अभावही रहताहै, और जिन्हें स्वतंत्रस्वरूपसे कुछभी योग्यता प्राप्त नहीं है पर प्रसंगविशेषपर प्रयुक्त करनेसे शोभाप्रद होतेहैं—अपने कवि+सत्काव्यका जीवनसर्वस्व मानते थे।

अब बाण कविके मतकी आलोचना की जाती है। श्लिष्टपदरचनाकी ओर इनकी यद्यपि इतनी चित्तवृत्ति आकृष्ट हुई देख पड़ती है पर तौभी उसके प्रेममें मुग्ध हो बाण कविने अपनी कथाके किसी अंगको लेशमात्रभी न्यून

*चक्रवाकके विषयमें यह श्लेषार्थ लेना चाहिये कि, यह युग्म परस्परका परिरंभण कर, चुंबनलेनेमें परम निपुण होनेपरभी विरहदुःखसे कातर हो निश्वास पूर्व्वक दुःखी होनेलगा।

+मनकी कुशलतानुरूप शालीनताका सुबंधुमें अभाव देख पडता है। अगली दर्पोक्तिद्वारा यह बात स्पष्टरूपसे जानी जातीहै कि सत्कवियोंकी श्रेणीमें स्थान पानकी सुबंधुको सुदृढ आशा थी। वसंतकालके वर्णनमें (पृष्ठ १३४) आपने लिखा है—'सत्कविकाव्य ध इवावर्द्धितुहिनः' इसी प्रकारसे प्रस्तावनामें—

'अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलाऽपिहि हराति दृश मालतीमाला ॥'

इनको मिलाकर अनुमान चार उदाहरण मिले हैं कि जिनमें अपने कविने सत्काव्यविषयक निजका अभिप्राय व्यक्त किया है। पर सबमें कविताके बहिरंग अर्थात् पदरचनाकी ही विशेष प्रशंसा देख पड़ती है। विवेकी पाठकगण इस छोटीसी बातसेभी गंभीर तात्पर्य निकाल सकते हैं।

वा सदोष नहीं होने दिया है। यह रचना जहां शोभाप्रद हो सकती है वहीं प्रयुक्त की जानेकेकारण न तो वह ग्रंथसे विलगसी ही जान पड़ती है और उसमें किसी प्रकारकी अतिही लक्षित होती है । एतद्विषयक बाणकी उक्ति एकदेशीयताके व्याजसे पीछे उल्लिखित हो ही चुकी है और दूसरी 'कादंबरी' की प्रस्तावनामें भी दृष्टिगत होती है, उसमे उसका द्व्यर्थी उद्देश्य स्पष्टरूपसे बोध होताहैः—

(कथाकी प्रशंसा)

स्फुरत्कलालापविलासकोमला
करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता
कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥
हरंति कं नोज्ज्वलदीपकोपमै-
र्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः
निरंतरश्लेषघनाः सुजातयो
महास्रजश्चंपककुड्मलैरिव ॥

" मदनविवश नव वधूके स्वयं शय्यापर आनेसे, उसके अव्यक्तमें मधुर एवं कोमल आलापद्वारा मोहित हो लोगोको जैसे कौतुक जान पडता है; और हृदय प्रेमातिशय भरित होजाताहै, वैसेही जिन कथाओंकी पदरचना उक्त आलापकी नाई मधुर एवं कोमल होती है वे सबके मनमें कौतूहल उपजा रसद्वारा उनके अतःकरण को तद्गत कर डालती है ॥ *

उज्वल ज्योतिकी नांई सुदर पदो तथा आशयो द्वारा जोडी हुई, कथाएं- कि जिनमे ठौरठौरपर श्लेषोकी रेलपेल की गई है, बड़े हारोके समान कि जिनमें बीचबीचमे चंपेकी कलियां सघनतया गुंफित की गयी हैं—किसका चित्त हरण नही करती ?

* इसे पढ़ पूर्वोल्लिखित एक आर्य्याका स्मरण हमारे चतुर पाठकोंको अवश्यमेव होगा (देखो) कालिदास पृष्ठ ३ ।

उक्त उभय कवियोंके गुणदोषोंके परिचयार्थ उनके ग्रंथोंसे एक एक संग्रह नीचे उद्धृत किया जाता है। भरोसा है कि केवल तद्वाराही दोनोंके वर्णनकी परिपाटी मार्मिक पाठकोंको लक्षित हो जायगी।

'वासवदत्ता' का प्रारंभ—(चिंतामणिराजाका वर्णन)

अभूदभूतपूर्व्वः सर्व्वोर्व्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणिर्नृसिंह इव दर्शितहिरण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणो नारायण इव सौकर्य्यसमासादितधरणिमंडलः कंसारातिरिव जनितयशोदानंदसमृद्धिरानकदुंदुभिरिव कृतकाव्यादरः सागरशायीवानंतभोगिचूडामणिमरीचिरंजितपादपद्मो वरुण इवाशांतरक्षणोऽगस्त्य इव दक्षिणाशाप्रसाधको जलनिधिरिव वाहिनीशतनायकः समकरप्रचारश्च हर इव महासेनानुगतो निवर्त्तितमारश्च मेरुरिव विबुधालयो विश्वकर्म्माश्रयश्च रविरिव क्षणदानप्रियः छायासन्तापहरश्च कुसुमकेतुरिव जनितानिरुद्धसंपद्रतिसुखप्रदश्च विद्याधिरोऽपि सुमना धृतराष्ट्रोऽपि गुणप्रियः क्षमानुगतोऽपि सुधर्म्माश्रितो बृहन्नलानुभावोऽप्यंतःसरलो महिषीसंभवोऽपि वृषोत्पादी अतरलोऽपि महानायको राजा चिंतामणिर्नाम।

कादंबरीका आरंभ—(जन्मांतर्गत नायकका वर्णन)

(कथामुखम्)

आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पा

कशासन इवापरश्चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्त्ता प्रतापानुरागावनतसमस्तसामंतचक्रः चक्रवर्त्तिलक्षणोपेतः चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशंखचक्रलांछनः हर इव जितमन्मथः गुह इवाप्रतिहतशक्तिः कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमंडलः जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः गंगाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः मेरुरिव सकलभुवनतलोपजीव्यमानपादच्छायः दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः कर्त्ता महाश्चर्य्याणां आहर्त्ता क्रतूनां आदर्शः सर्वशास्त्राणाम् उत्पत्तिः कलानां कुलभवनं गुणानां आगमः काव्यामृतरसानां उदयशैलो मित्रमंडलस्य उत्पातकेतुरहितजनस्य—प्रवर्त्तयिता गोष्ठीबंधानां आश्रयो रसिकानां प्रत्यादेशो धनुष्मतां धौरेयः साहसिकानाम् अग्रणीर्विदग्धानां वैनतेय इव विनतानंदजननः वैण्य इव चापकोटिसमुत्सारितसकलारातिकुलाचलो राजा शूद्रको नाम ।

चिंतामणिराजाकी राज्यरीतिका वर्णन—

यत्र च शासति धरणिमंडलं छलनिग्रहप्रयोगो वादेषु नास्तिकता चार्वाकेषु कंटकयोगो नियोगेषु परिवादो वीणासु खलसंयोगः शालिषु द्विजिह्व

संगृहीतिराहितुंडिकेषु करच्छेदः कृतकरग्रहणेषु नेत्रोत्पाटनं मुनीनां द्विजराजविरुद्धता पंकजानां सार्व्वभौमयोगो दिग्गजस्याग्नितुलाशुद्धिः सुवर्णानां सूचीभेदो मणीनां शूलभंगो युवतिप्रसवे दुःशासनदर्शनं भारते करपत्रदारणं जलजानाम्।

शूद्रककी राज्यरीतिका वर्णन—

यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयति महीं चित्रकर्म्मसु वर्णसंकराः रतेषु केशग्रहाः काव्येषु दृढबंधाः शास्त्रेषु चिंताः स्वप्नेषु विप्रलंभाः छत्रेषु कनकदंडाः ध्वजेषु प्रकंपाः गीतेषु रागविलसितानि करिषु मदविकाराःचापेषु गुणच्छेदाः गवाक्षेषु जालमार्गाः शशिकृपाणकवचेषु कलंकाः रतिकलहेषु दूतसंप्रेषणानि सार्यक्षेषु शून्यगृहाः प्रजानामासन्। यस्य परलोकाद्भयम् अंतःपुरिकालकेषु भंगः नूपुरेषु मुखरता विवाहेषु करग्रहणम् अनवरतमखाग्निधूमेनाश्रुपातः तुरगेषु कशाभिघातः मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्।

चिंतामणिराजाको किसी भूतपूर्व्वराजाकी उपमा शोभा नही देती इस अभिप्रायसे सुबंधु लिखते हैं—

महावराहो गोत्रोद्धरणप्रवृत्तोऽपि गोत्रोद्दलनमकरोत्। राघवः परिहरन्नपि जनकभुवं जनकभुवा सह वनं विवेश। भरतो रामे दर्शितभक्तिरपि राज्ये विराममकरोत्। नलस्य दमयंत्या मिलितस्यापि पुनर्भूपरिग्रहो जातः पृथुरपि गोत्रसमु-

त्सारणविस्तारितभूमंडलः। इत्थं नास्ति वागवसरः पूर्वतरराजेषु।

बाणने शूद्रकके विषयमे लिखा हैः—

नाम्नैव यो निर्भिन्नारातिहृदयो विरचितनरसिंहरूपाडंबरम् एकविक्रमाक्रांतसकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितभुवनत्रयं जहासेव वासुदेवम्।

उक्त संग्रह वास्तवमे है तो दोही पर उभय कवियोंकी वर्णन शैलीका परस्पर परिचय प्राप्त हो इस अभिप्रायसे उनके भिन्न २ अवयव अलग २ दिखला दिये गये है। उन्हे पढ श्रेष्ठ कौन है इस बातका निश्चय रसिक संस्कृतज्ञ पाठकगण तो बहुतही शीघ्र करलेंगे। पर तौभी अपर पाठकोंके हेतु उनका यहांपर थोडासा विस्तार कर दिया जाता है। उक्त संग्रहोद्वारा उभय कवियोमे एक महान् भेद यह दृष्टिगत होता है कि सुबधने अपने वरप्रसादके भरोसे विना यत्किंचित्परिश्रम किये श्लेषोकी एकसी भरमार करदी है। बहुतेरोंकी—बडेबडोकी सम्मति है कि बुद्धिकी विशालता और परिश्रम निसर्गतयाही परस्परके विरोधी हैं। क्योकि वे लोग समझा करते हैं कि उनके हाथसे यदि कोई काम सहसा न हो सका तौ उनकी विशेषताही क्या कहाई? इस मूर्खतागर्भित भावनाके हेतु वे लोग ऐसा सोचा करते है कि प्रचंड श्रमकांडको उठा किसी कार्य्यका उत्कृष्टतया संपादित करनेकी अपेक्षा उसे योंही शेषकरनेमें कुछ विलक्षण श्रेष्ठता है। जान पड़ता है यही बात सुबंधुके मनमे समागयी होगी। उसका अनर्थ उक्त छोटेसे संग्रहमेभी झलकता है। सुबंधुके कवित्वका प्रवाह इतना उच्छृंखल था कि सरस एवं चमत्कृतिसंपन्न श्लेष, रसशुद्धि, व्याकरणशुद्धि प्रभृति प्रतिपादित होते पर्य्यंत उसकी गति रुकही नही सकती थी। उक्त श्लेषोमेसे कई तो इतने तुच्छ हैं कि कोई मूर्खशिरोमणिभी वैसे हजारो बांध देगा। रसभंगके उदाहरणभी कोई योंही क्षुद्र नही है;— 'महिषीसंभवोऽपि, वृषोत्पादी' बलिहारी है इस राजमान्य श्लेषकी॥* 'शूलभंगो

* इसीके मेलका एक श्लेष पृष्ठ १५३में पायाजाताहै—
'मुधैवेंदुमती महीष्यप्यजातुरागिणी बभूव।

युवतिप्रसवे'पर चर्चा पीछे होही चुकी है। उसी प्रकारका व्याकरणभंगदोष- 'कृतवसुदेवतर्पण:' 'क्षणदानप्रिय:'—पर हमारे कविको यहां तादृश भय नही है। क्योंकि श्लेषरचनामात्रका भार उसने अपने सिर लिया है, उसका अर्थ लगानेवाले टीकाकार बड़े बड़े पड़े हैं सो अर्थ लगाते रहैंगे। विचारे छप्पन कोष भाष्य महाभाष्य प्रभृति अपने महाकविके श्लेषघटक पदोंका निषेध भलेही किया करैं, पर वे लोग उनका अर्थ बैठाये विना कदापि न रुकेंगे।अस्तु,अंतिम संग्रहकी श्लेषरचना बहुत कुछ अच्छी बन गयी है।पर वह शब्दजालमात्रप्रधान होनेके कारण हमें बाण कविके अगले श्लेष, कि जो अर्थविशिष्ट हैं, अधिक अभीष्ट जान पड़ते हैं।

सुबंधु और बाण कविके श्लेषोंमें औरभी यह भेद सदा पाया जाता है कि सुबंधुके श्लेष केवल शब्द चमत्कृति उपजानेके अभिप्रायसे बांधे गयेसे जान पड-ते हैं,पर बाण कविके वैसे नहीं हैं,किंतु उनमेंसे प्रत्येकमें वर्णनीय विषयमें भिन्न २अर्थभी ग्रथित किये हुए पाये जाते हैं। यही कारण है कि बाणके सबके सब श्लेष मिलकर किसी एक वर्ण वर्णनको पूरा करते हैं पर यह बात सुबंधुके प्रबधमें नही पायी जाती क्योंकि उसके यदि कई श्लेष लुप्त करदिये जॉय तौभी वर्णनमें कोई ऊनता नही लक्षित होती। इसके सिवाय सुबंधुके इश्लेषार्थबांधनेके कोई निश्चितस्थानभी नहीं है; वे जहां हाथ लगजाँय वही वह उन्हें बद्ध कर लेता है। व्याकरण न्याय और वैद्यकादिशास्त्र तथा ग्रंथकारोंके नामआदि सब वास-वदत्ता में श्लेषबांधनेके काममें लाये गये हैं। पर कादंबरी की बात वैसी नही है। उसमें जगकी सर्वप्रसिद्ध- वा पुराणप्रसिद्ध मुख्यत: वही घटना और व्याकरणादिकोंका संबंध यत्र तत्र लाया गया है कि जिसे सर्वसाधारण सहजहीमें समझ बूझ सकते हैं।

अब वासवदत्ताके उपरितन कथित उत्कृष्ट स्थल प्रदर्शित करना मात्र शेष रह गया है;इसका निर्देशकरनेमें हमें अत्यंत आनंद होता है।अगले संग्रह यथार्थमे हैं तो थोडेही पर हम आशा करते हैं कि वे हमारे सहृदय पाठकोंको अधिकतर प्रिय लगेंगे।

सुबंधु आदिमे भगवती सरस्वती देवीको नमस्कार कर कवियोंकी महिमाका वर्णन लिखते हैं:—

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः।
पश्यन्ति शूक्ष्ममतयः सा जयति सरवस्ती देवी ॥

उत्कृष्ट पदरचनाकी रमणीयता—

अविदितगुणाऽपि सत्कविभाणितिः कर्णेषु वमाति मधुधाराम्। अनाधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥

'वासवदत्तामे' यह काव्यगुण चारो ओर पाया जाता है। पर निम्नोद्धृत मलयानिलवर्णनमे वह विशेषतया दृष्टिगत होता है:—

कन्दर्पकेलिसंपल्लंपटलाटीललाटतटधम्मिल्लमलनमिलितपरिमलसमृद्धमधुरिमगुणः कामकलाकलापकुशलचारुकर्णाटसुन्दरीस्तनकलशघुसृणधूलिपरिमलामोदवाही करणरसिककांतकुन्तलीकुंतलोल्लासनसंक्रांतपरिमलमिलितालिमालामधुरतरझंकाररवमुखरितनभस्तलोनवयोवनरागतरलकेरलीकपोलपालिपत्रावलीपरिचयचतुरः चतुःपष्टिकलाकलापविदग्धमुग्धमालवनितंविनीनितंबविंबसंवाहनकुशलः सुरतश्रमपरवशांध्रीनीरंध्रपीनपयोधरभारनिदाघजलकणनिकरशिशिरितो मलयानिलो ववौ।

नायिकाकी मदनावस्थाः—

अनन्तरं परिजनप्रयत्नोच्छ्वासितजीविता सती क्षणमतिशिशिरघनसाररसनिम्नगाकूलपुलिने क्षणमतितुहिनमलयजरससरित्परिसरे क्षणमरविंदकाननपरिवारितसरस्तटाविटपिच्छायासु क्ष-

णमनिलोल्लासितदलेषु कदलीकाननेषु क्षणं कुसुमशय्यासु क्षणं नलिनीदलसंस्तरेषु प्रलयकालोदितद्वादशरविकिरणकलापतीव्रविरहाग्निदह्यमानामतिकृशां विप्राणामिव तनुं बिभ्रती प्रचलदमन्दमन्दरांदोलितदुग्धसिन्धुतरलतरंगच्छटाधवल हासच्छुरिताधरपल्लवं तन्मुखारविन्दं द्विजकुलमिव श्रुतिप्रणयि तदीक्षणयुगलं सहजसुरभिमुखपरिमलमाघ्रातुकामेव सुदूरविनिर्गता सा नासावंशालक्ष्मीः कलंकमुक्तेंदुकलाकोमला पीयूषफेनपटलपांडुरा सा द्विजपंक्तिः तददृष्टचरमनंगमतिशयानं रूपं धन्यानि तानि स्थानानि ते च जनपदाः पुण्यानि नामाक्षराणि च तानि सुकृतभांजि यान्यमुना परिष्कृतानीति मुहुर्मुहुः परिभावयंती दिक्षु विदिक्षु लिखितमिव नभस्युत्कीर्णमिव विलोचनं प्रतिबिंबितमिव चित्रफलके लिखित्वा पुरोदर्शितमिवेतस्ततो विलोकयन्ती व्यतिष्ठत ।

संस्कृत कविता जिस समय उन्नतिके परम उच्च आसनपर आसीन थी उस समयके अनंतर अपने जन्मग्रहणकरनेपर सुबंधुने जो खेद प्रदर्शित किया है उसे पढ़ ऐसा कौन है जिसका हृदय द्रवित नही हो जाता ?

सा रसवत्ता विहता*नवका विलसंति चरति नोकंकः।

* इन शब्दोंका (अर्थात् रसवत्ताहानिका) परमोत्कृष्ट उदाहरण यह मेराही ग्रंथ समझा जायगा यह बात बिचारे सुबंधुके मनमें स्वप्नमेभी न आयी होगी। वास्तवमें स्वाभिमान ऐसी ही बुरी चीज है कि जिससे मनुष्य बडा धोखा खा बैठता है ।

सरसीव कीर्त्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥

इस आर्य्याको इतनी विचित्र हृदयद्रावकता किस कारण प्राप्त हुई है सो स्वयं हमारीही समझ में ठीक २ नही आता । न जाने उसकी इस विशेषताका कारण आर्य्या छंदकी मनोहरता है वा पदोकी कोमलरचना है वा समूचे पद्यका करुणस्वर है वा सरोवरकी सरस उपमा है वा, अल्प परिश्रमनिबद्धश्लेष है वा अनेक घटनाओके कारण जनप्रिय हुए उस शक सचालकके नामका पद्यांतस्थ नामोल्लेख है, वा उसके पश्चात् हुए राजाओं-के अत्याचारका समास वर्णन है । इस विषयमें हमारी तो यही सम्मति है कि कवि और पाठकवर्गकी यहांपर जितनी एकात्मता पूर्णतया दृष्टिपथमें आती है उतनी अन्यत्र कहीभी न हो सकेगी ।

सज्जनप्रशंसाः–

भवति सुभगत्वमाधिकं,
विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य ।
वहति विकासितकुमुदो,
द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः ॥

खलनिंदाः–

अतिमलिने कर्त्तव्ये भवति खलानामतीवनिपुणाधीः।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते चक्षुः ॥
विध्वस्तपरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम्।
अंतरितशशिरुचामपिसलिलमुचांमलिनिमाभ्यधिकः[1]॥
हस्त इवभूतिमलिनोयथायथालंघयतिखलः सुजनम्।
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायम् ॥

---

१ उक्त तथा अगली आर्य्यांतर्गत अर्थको पोप कविने किंचित् भिन्नदृष्टांतद्वारा वर्णित किया है

Envy will merit, as its shade pursue ;
But like a shadow, proves the substance true ·
For envied wit, like Sol eclipsed, makes known
The opposing body's grossues, not its own.
Essay on Criticism.

सरसीव कीर्त्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥

इस आर्य्याको इतनी विचित्र हृदयद्रावकता किस कारण प्राप्त हुई है सो स्वयं हमारीही समझ में ठीक २ नही आता । न जाने उसकी इस विशेषताका कारण आर्य्या छंदकी मनोहरता है वा पदोकी कोमलरचना है वा समूचे पद्यका करुणस्वर है वा सरोवरकी सरस उपमा है वा, अल्प परिश्रमनिबद्धश्लेष है वा अनेक घटनाओके कारण जनप्रिय हुए उस शक सचालकके नामका पद्यांतस्थ नामोल्लेख है, वा उसके पश्चात् हुए राजाओं-के अत्याचारका समास वर्णन है । इस विषयमें हमारी तो यही सम्मति है कि कवि और पाठकवर्गकी यहांपर जितनी एकात्मता पूर्णतया दृष्टिपथमें आती है उतनी अन्यत्र कहीभी न हो सकेगी ।

सज्जनप्रशंसाः—

भवति सुभगत्वमधिकं,
विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य ।
वहति विकासितकुमुदो,
द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः ॥

खलनिंदाः—

अतिमलिने कर्त्तव्ये भवति खलानामतीवनिपुणाधीः।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते चक्षुः ॥
विध्वस्तपरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम्।
अंतरितशशिरुचामपिसलिलमुचांमलिनिमाभ्यधिकः॥
हस्त इवभूतिमलिनोयथायथालंघयतिखलः सुजनम्।
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायम् ॥

१उक्त तथा अगलो आर्य्यातर्गत अर्थको पोष कविने किंचित् भिन्नदृष्टांतद्वारा वर्णित किया है

Envy will merit, as its shade pursue ;
But like a shadow, proves the substance true ·
For envied wit, like Sol eclipsed, makes known
The opposing body's grossues, not its own.
Essay on Criticism.

का प्रयोग किया गया है, वैसेही यहां रौद्ररस वर्ण्य होनेके कारण सुबंधुने कठोर वर्णोंका प्रयोग किया है।

अब पाठकोके अलम् कहनेके पूर्वेही हम और संग्रहोका उध्दृत करना शेष कर देते हैं। इतने संग्रह उध्दृत किये जा सके यही बड़े भागकी बात समझनी चाहिये, नोचेत् यदि सुबंधु कालिदासकी नांई भूमिकाके नामसे कुछभी न लिखता तो उसके कवित्वके यथार्थ एव उत्कृष्ट स्वरूपका आजदिन पता तक न लगता, और रसिकोको आनंद देनेयोग्य उसके ग्रंथमे प्रायः कुछभी न पाया जाता। ईसाबकी कथासंग्रहके सामरकी नांई उसकी परीक्षामे लोग धोखा खा जाते। जिस कृत्रिम पदरचनापर वह इतना अभिमान करता था, और जिसे प्रधानतादे कथाके शेष अंगोकी उसने सर्वथा उपेक्षाकी। वही आज उसके ग्रंथके लुप्त हो जानेका कारण हुई होती, और जिस प्रस्तावनाको (भूमिकाको) और मध्यस्थश्लोको उसने विना विशेषवाक्चातुर्यके योंही सरल रीतिसे लिखा— कि जो केवल बहिरंग है—अंतमे वही उसे परमोपयोगी हुए। अस्तु, जो हानि हो गयी सो तो अब किसी प्रकारसे पूर्ण होही नही सकती; एतावता जो रसिक वासवदत्ताको पढे और विचारे उसे समुचित है कि वह केवल ग्रथकोही देख भालकर सुबंधुके कवित्वकी योग्यता निश्चित न करले, किन्तु उसे स्थिर करनेके पूर्व वह उक्त वाह्य अंगोंकोभी विशेष रूपसे अपने विचारक्षेत्रमें लेवे, वैसा करनेसे उसे भरोसा हो जायगा कि सुबधु यदि अपने भूतपूर्व कवियोके समयमे पैदा हुआ होता तो उसकी कवित्वशक्तिको उत्तमता प्राप्त हो वह अपने वर्त्तमान रूपकी अपेक्षा अत्यतही भिन्नरूपसे प्रगट हुई होती!

अब अन्तमे डॉक्टर हॉल साहिबने इस ग्रंथका जो सस्करण प्रस्तुत किया है उसके विषयमे कुछ लिखना अभीष्ट जान पडता है। इस लेखके लिखनमे हमे उक्त ग्रंथसे जो सहायता मिली है उसका परिचय उभय ग्रथोंका अवलोकन करनेवालेको सहजहीमें प्राप्त हो सकता है। कहना नही होगा कि अपनी विशाल-विद्वत्ता तथा तीव्र बुद्धिकी सहायतासे सुबधुके जीवनकालको निश्चितकर उक्त साहिब हम सब लोगोके विशेष कृतज्ञताभाजन हुए हैं। 'वासवदत्ता' के जिन अनेक दोषोंका ऊपर उल्लेख किया गया है उन्हे उक्त साहिब महोदयने अपने उक्त संस्करणकी भूमिकामें प्रदर्शितकर ठौरठौरपर उनपर बडे मनो-

हर एवं विनोदप्रयुक्त आक्षेप किये हैं। वह आक्षेप केवल सुबंधुके विषयमें बहुतांशमें ठीक जान पड़ते हैं। पर उक्त साहिब बहादुर इतनेमें ही संतुष्ट न हो तद्वारा समस्त संस्कृत कविवृंद, संपूर्णभारतके आर्य्यलोग, सुतरां अखिल एशिया महादेशके लोगोंको दूषित करनेकेलिये चेष्टा करना चाहते हैं। यह साहिब बहादुर यद्यपि भारतमें बहुत दिनलों रहे थे और संस्कृतके व्यतिरेक अपर देशभाषाओंका भी स्यात् आपने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लियाथा, तौ भी हिंदूलोगोंके विषयमें उनके हृदयमे अधिक प्रेम अंकुरित हुआसा नहीं देख पड़ता। प्रोफेसर विलसन् साहिब तथा वर्त्तमान पंडितप्रवर मोक्षमूलरकैसे डॉक्टर हॉलसाहिब कहीं हिंदूलोगोके वैसे कुछ पक्षपाती तो न थे पर केवल सामान्य प्रकारसेही हिंदूलोगोंके विषयमे यथार्थ उल्लेख करना भी उन्हें अनभीष्ट जानपड़ासा बोध होता है। मिल्ल साहिबने, कि जिन्हे भारतकी किसी एक भाषाके अक्षरतकका परिचय न था चार हजार कोसकी दूरीपर बैठकर उनकी अपेक्षा भारतका अधिकतर प्राचीन इतिहास लिखतीबार, जो मत प्रगट किये हैं, और जैसे मेकॉले साहिब स्वयं भारतवर्षमे आकार भी उसके विषयमें यहांसे बिलायतको वही बाल सम्मातियां ले गये कि जो बाल्यावस्थामें पादडीलोगोंके ग्रंथावलोकनद्वारा उनके मनमें समा गयी थी, ठीक वैसीही सम्मतियां वर्त्तमान ग्रंथप्रकाशकने भी अपनी आवृत्तिमें कही कही प्रकाशित की हैं। तौभी उक्तसाहिबके पक्षमें एक बडी भारी बात कहनेके योग्य है। वह यही है कि जिस समय उक्त ग्रंथका संस्करण प्रकाशित किया गया था उस समय किसी शांतस्वभाव मनुष्यका भी जी हिंदुओसे हट गया होता। यह बात भारतके गत विद्रोहकी है। उस लोमहर्षण विपत्कालमें हॉल साहिबभी आपत्तिग्रसित हुए थे, और निज स्थानसे भागकर आपको सागरके दुर्गमे छिपकर दिन काटने पडे थे। इसके सिवाय विद्राहियोने इलाहाबादमें कागजपत्र जला दिये थे। उसमें भी उन्हें कुछ हानि सहनी पड़ी थी। अभिप्राय यह है कि उक्त सब घटनाओंको बिचारनेपर उक्त ग्रंथके प्राक्कथनमे जो तीव्र आक्षेप लिखेगयेहैं, उनका किसीको वैसा कुछ विशेष आश्चर्य्य नही जान पड़ता।

'वासवदत्ता' के अंतर्गत शृंगारके प्रकरणको देख हॉल साहिब लिखते हैं कि आर्यलोगोंको शुद्ध शृंगार रसका अणुमात्रभी परिचय नहीं है। उसी प्रकारसे उक्त ग्रंथमें जो प्रकृतिदेवीके वर्णन पाये जाते है उन्हे बिचार कर आप स्पष्ट-रूपसे लिखते हैं कि भारतवर्षमे इतना अपार सृष्टिविभव होनेपरभी वह उसमें किसी कालमे कदापि रममाण नही हुआ,सारांश उसका होना न होना एकसाही है। इन दोनोबातोंका विधानमात्र कर,उन्हें निःसदेह सिद्ध हुईसी-मान उक्त साहिब बहादुर विना सकोच हिंदुओकीगणना बनचरोमे करते हैं। उक्त उभय दोष वास्तवम महान् प्रचंड है,और यदि वे प्रमाणित हो जायँ तो आफ्रिकाके नीग्रोलोगोके वर्गमे प्रविष्टहुए विना हमारेलिये उपायांतरही शेष न रहेगा।यहांपर अपने लोगोके पक्षमे औरभी सावस्तर लिखना हमे अभीष्ट नहीं जान पड़ता,क्योंकि उक्त उभय दोषोकी मीमांसा हम पीछे पृथक् पृथक् करही चुके ह,❀ उनसे अधिक यहांपर लिखनेयोग्य और कुछ नहीं है। पर उक्त दोनो दोषोके आतिरिक्त एक तीसरी बातकेलिये उक्त ग्रथ प्रकाशकने आर्य्यलोगोका बहुत उपहास किया है,उसके विषयमे कुछ थोड़ासा लिखना आवश्यक जान पडता है।स्त्रीका पतिके साथ सलज्ज रहना उक्त डॉक्टरसा-हिबको मानवी स्वभावका विरोधी बोध होता है, और आप यह लिखनेमे तनिकभी हिचकतेसे नहीं देखपड़ते कि यह चाल सब जगसे बिलग एवं अन्यथा और सिरीपनकी है। योरोपके सुधारसंपन्न रीतिभांतिके प्रेमी हमारे साहिब बहादुरको जब कि हमारी रीति भांति उपहासार्ह जान पड़ी तब तो उ-नके विषयमे कुछ कहना सुननाही शेष नही रहा। पर यदि उक्त साहिब-बहादुरकी अनुमति हो तो हम अपने देशकी अनुचित एक दोबातोका औरभी निदर्शन कर सकते हैं।पर उनका उल्लेखकरनेका हमे साहस नही हो-ता—वह दोष शाकभोजप्रियता तथा मद्यपान निषेध हैं।

सुबधुके विषयमे हॉल साहिबने जो मत प्रकाशित किये हैं उनमे एक महान् दोष यह भी उपलब्ध होता है कि वह सब एक पक्षके ही हैं। उनकी

❀ कालिदास—पृष्ठ ५–९ भवभूति पृष्ठ ८७–८९ भवभूति पृष्ठ १०९–११२

दृष्टि छिद्रान्वेषणकेलिये जैसी सूक्ष्म देख पडती है वैसी वह गुणप्रकाशार्थ नही पायी जाती । सुबंधुके दोषोंकी आलोचना साहिबने अत्यन्त आनंदपूर्वक सविस्तर लिखी है । कवित्व और भूगोल परिज्ञानका नित्य सम्बन्ध नही है, इस विषयमें शेक्सपियर कविके पक्षपाती लोग अद्यावधि विवाद कियाही करते हैं, तौभी तद्ज्ञानार्थ बापुरे सुबंधुका उपहास करनेके अवसरको उक्त साहिब बहादुरने व्यर्थमें नही जाने दिया । यहांलों कि एक स्थानपर तो बिचारेकी विना कारणही हॅसी की है। जहां पर कंदर्पकेतु और वासवदत्ताकी प्रथम भेट हुई है, वहॉ सुबंधुने कवि संप्रादायानुमोदित वासवदत्ताका नखसे सिखलो वर्णन किया है। इस वर्णनके विषयमें हॉलसाहिब टिप्पणीमें लिखतेहैं " पाठकवर्ग ! स्मरण रखिये कि वासवदत्ताको देख कंदर्पकेतुका मन प्रथम उसके नखचरणादिके दर्शनसे मोहित हुआ । वा : !" पर सुबंधुकी प्रशंसामे एक दो शब्द उक्त साहिबने जो कहीं२लिख दिये हैं वह सब यदि एकत्रित किये जॉय तो तीन चार पंक्ति बड़ी कठीनाईसे पूर्ण होसकेगी। सुबंधुके पक्षमे हम जो कई बाते पीछे लिखआये हैं उन्हें उक्त साहिब बहादुरने निज विचारक्षेत्रमें आनेतक नही दिया है। आपने सुबंधुकी यदि कुछ प्रशंसा की है तो केवल सिहवर्णन विषयक उक्त दो श्लोकोकेलियेही उसकी प्रशंसा की है।अन्य वर्णनोकोलिये सुबंधुसरीखे अप्रयोजनीय कविकी प्रशंसाकरनेमे उन्हे बड़ा संकोच पड़ासा देखड़ता है। ऐसी अवस्थामें बाह्य रचनाकी तो बातही दूर है । इसके सिवाय श्लेष, अनुप्रास और यमकादि तो सर्वथा निदनीयही हैं पर पद रचनाके मधुरतादि गुणोमें भी हमारे साहिब बहादुरको कोई प्रयोजनीय बात दृष्टिगत नही हुई। सारांश, उक्त संस्करण प्रकाशितकरनेमे उक्त साहिब बहादुरका प्रधान अभिप्राय यही लक्षित होता है कि तद्द्वारा उक्तग्रंथकी दुर्दशाकर कीर्त्तिसंपादनकरना और अपने स्वदेशीय पाठकोंको विनोदप्रमुख मनलगावकेलिये एक ग्रंथ भेंट करना ।

अस्तु; अब हम इस लेखको शेष करते हैं; और उक्त डॉक्टर साहिबको सलामकर अपने कविसे बिदा मांगते हैं ।

दंडी ।

कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः ।

इस कविके नामसे दो ग्रंथ प्रसिद्ध है;—एक 'दशकुमारचरित' और दूसरा 'काव्यादर्श'। 'काव्यादर्श, एक छोटासा, ग्रंथ है कि, जिसमे साहित्यका विषय वर्णितहै। अद्यावधि उसका फैलाव अधिकतर न होनेके कारण उसका हमे विशेष परिचय नहीं है; अतः उसके विषयमे यहां हम सविस्तर नही लिख सकते। निःसंदेह यह बात सच है कि इस ग्रंथका वर्त्तमान काव्य-विवेचक प्रबंधसे वैसा कुछ विशेष घनिष्ट संबंध नही है, तौभी हम समझते-हैं कि, दंडीके कालका निर्णय करनेकेहेतु और उसके कवित्व गुणका परिचय विशेषरूपसे स्पष्ट करनेके हेतु वह बहुत कुछ उपयोगी हुआ होता। अस्तु; अब 'दशकुमारचरित' की ही आलोचना की जाती है ।

अनुमान पचास वर्षके पूर्व इस ग्रंथके अंगरेजी सस्करणको प्रोफेसर विलसन् साहिबने प्रकाशित किया था । वही कही २ लभ्यमान है । उसके उपोद्घातमे उस विद्वान् पंडितने ग्रंथकर्त्ताके समयादिके विषयमे बहुत बातें लिखी है; पर वे उक्त डाक्टर हॉल साहिबकी नांई सावधानीपूर्व्वक लिखी गयीसी नही देखपड़ती । यह बात हमारे अगले विवरणसे और भी स्पष्ट होजायगी । तौ भी उक्त परिश्रमार्थ उपरितन कथित साहिबकी हम लोगोको कृतज्ञता अवश्य माननी चाहिये ।

वास्तवमें दंडीका यथार्थ वृत्तांत उतनाही प्राप्य है जितना कि कालिदासका लभ्यमान है । सारांश इन दोनोके नामातिरिक्त और दूसरी बात विश्वासपूर्वक प्राप्त नहीं हो सकती पर दंतकथाओमे दंडीका नाम कालिदास और भवभूतिके साथ पाया जाता है; निदान इससे इतनी बात तो अवश्यही निर्द्धारित होती है कि, यह कवि अत्यंत जनमान्य हुआ होगा। 'कविचारित्र'

१ कवि है तो एक दडीही है, कवि है तो एक दडीही है, कवि है तो एक दडीही है, इसमें अणुमात्रभी सदेह नहीं है ।

में इन कवियोंकी दो तीन बातें लिखी हैं कि, जो पंडितजनोंमें सुप्रसिद्ध है। उनमेंसे दो विशेष चमत्कारिक हैं, अतः नीचे लिखी जाती हैं।

एक समय सरस्वती मनोहर युवतीका रूप धारणकर एक प्रधान मार्ग-पर कंदुकक्रीडा करती हुई प्रकट हुई। उसकी उस अनूठी छबिको देख दंडिनेकहाः—

एकोऽपि त्रय इव भाति कंदुकोऽयं कांतायाः कर-तलरागरक्तरक्तः। भूमौ तच्चरणनखांशुगौरगौरः स्वस्थः सन्नयनमरीचिनीलनीलः॥

"यह गेंद यथार्थमे है तो एकही पर तीन स्थानोके साथ संयोग होनेसे तीनप्रकारकी भासित होती है—जब करके निकट आती है तब उसकी लाल प्रभामें अत्यंत रक्त, और जब भूमिपर आती है तब उसके नखकी पाटलप्रभामें नितांत गौर, और जब मध्यवर्ती रहती है तब उसके नेत्रोंकी प्रभाके कारण अतीव नील देख पडती है!"

भवभूतिने कहाः—

विदितं ननु कंदुक ते हृदयं प्रमदाधरसंगमलुब्ध इव। वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि॥

---

१ भोजप्रबंधमें—लिखा है कि, यह श्लोक वररुचिका बनाया हुआ है, इसी प्रकारसे इस ग्रंथ और 'कविचरित्र' में अगले दो श्लोकोंकी कर्त्तृताके संबंधसे भी नामका हेर फेर देख पडता है। दंतकथाओंमें प्रायः ऐसेही बेजोड बातें पायी जाती हैं।

२ तीनों श्लोकोंकी अपेक्षा यह श्लोक परमोत्तम है। यह उत्तमता सहजही ध्यानमें आने योग्य नहीं है, एतावता वह स्पष्ट कर दीजाती है। पदका अर्थ उसके उच्चारणके साथही मनको ज्ञात हो जाया करे एतदर्थ कविगण प्रसंग विशेषपर बडी निपुणता दिखलाया करते हैं। इस विषयमें पोप कविने लिखा है—

'Tis not enough no harshness gives offence,
The sound must seem an echo to the sense.
Essay on Criticism.

"वर्णोंकी कठोरताके कारण कविताको कर्णकटुता प्राप्त न होने पावे इतनीही सावधानी अलम् नहीं है, किंतु उसकी रचना ऐसी होनी चाहिये कि, पदोंके उच्चारणके साथ

"कंदुक! तेरे अभिप्रायको मैंने भलीभांति जान लिया है । इस वनिताके करकमलद्वारा बारंवार नीचे पटका जानेपरभी तू उसके अधरोष्ठसंगमकी (चुम्बनकी) लालसासे पुनः पुनः ऊपरको उछलता है !

तदनतर कालिदासने कहा–

पयोधराकारधरो हि कंदुकः करेण रोषादभिहन्यते मुहुः । इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं स्त्रियः प्रसादाय पपात पादयोः ॥

"इस गेदने इसके स्तनोका आकार धारण किया है अतः यह उसे सक्रोध नीचेको पटकती है; और इसी कारण (शिरस्थ) कमल भी–कि जिसने नेत्रोकी शोभा अपहृत की है और तदर्थ अत्यत भयभीत हो रहा है–मानो उसके पांव पड़ रहा है । "

उक्त तीनो श्लोक महाकवियेके कवित्वको कल्पनाशक्ति और रचनाके सबधसे मनोरमता देने योग्य है। पर ऐसे अवसरपर जो एक विशेषता उनमे औरभी दीख पड़नी चाहिये थी सो नही देख पड़ती । वह यही कि, प्रत्येक पद्यमे उसके रचयिताका कवित्व विशेषगुण स्पष्टरूपसे व्याक्त होना चाहिये था ।

दूसरी एक आख्यायिका यह भी सुनी जाती है कि, एक समय दंडी और कालिदासकी स्पर्धा होजानेके कारण देवीने प्रादुर्भूत होकर कहा 'कविर्दडी कविर्दडी कविर्दडी न सशयः । ' तब कालिदासके झुंझलाकर पुनः पूछनेपर देवीने कहा 'त्वमेवाह न संशयः' (तू तो मैही हू अर्थात तू और म दो नहीं है) ।

—ही साथ उनका अर्थ प्रतिध्वनित होता चला जाय।" इस नियमका उक्त पद्य सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । कदुकक्रीडा वर्ण्य होनेके कारण वर्त्तमान प्रसगपर तोटक वृत्तका प्रयोग बहुतही समुचित हुआ है । पूरे पद्यमात्रके कथनद्वारा उस क्रीडाका आभास होता है और चरम चरणमें कठोर वर्णोंकी अधिकताके कारण प्रत्येक यतिके अतमें मनको ऐसा लगता है कदुक पट् पट् पटका जानेके कारण दीर्घ निःश्वास प्रयुक्त करता हो ।

१ छोड़ दिये हुए शब्दोंको यहा लिखनेमें तो बहुत लज्जा लगती है, पर तिसपर भी लिखे देते हैं (" अह रडे अह रडे। ")

इसी बातके विषयमें हम पीछे[1] लिख आये हैं कि यह अत्यंत ग्रामीण है परंतु इसका अर्थ गंभीरता एवं विलक्षणता पूरित होनेके कारण वह यहांपर पुनःउल्लिखित की गयी है । उक्त श्लोककी रचनाद्वारा यह बात स्पष्टतया अनुमित होती है कि, भगवती स्वरस्वतीका वरप्रसाद शेष हो उसके साथही साथ मनके सुकोमलतादिगुण जब इस देशमे लुप्त हुए उसी समय उक्त श्लोकका प्रादुर्भाव हुआ होगा । अब यह बात सच है कि, उसमें अर्थगौरव बहुत है, पर तदर्थ उसके कर्त्ताको समादृत करनेकी अपेक्षा अपने भागकीही सराहना करना हमे अधिक उचित बोध होताहै !

इस बातका यहांपर उल्लेख करनेकी कोई आवश्यकता नहीं बोध होती कि, उक्त उभय कथा केवल रमणीक होनेके कारणही पुनरपि लिखी गयी हैं । सारांश बहिःप्रमाणके एक अंगका—अर्थात् दंतकथाओंका—तौ निपटेरा होही चुका; कि उनकी सहायतासे दंडीके जीवनकालका अनुमान नहीं हो सकता । उसी प्रकारसे दूसरे अंग अर्थात् अपर ग्रथकोंराके लेखादि भी वर्त्तमान प्रसंगके अनुकूल नहीं हो सकते । तौ अब अपने कविके समयका अनुसंधान करनेकेलिये केवल एक अंतःप्रमाणही साधन शेष रहगयाहै । इस प्रमाणको विलसन् साहिबने दो बातोंद्वारा स्वीकृत किया है । उनमेंसे पहिली बात तो यह है-कि, वर्त्तमान कथामें यवनोंको (मुसलमानोंका) संबंध केवल

---

१ देखो भवभूति पृष्ठ ५७ ।

२ '**यवन**' शब्दका अर्थ ऊपर जो धनुषाकार चिन्हमें लिखा गया है वही एक नहीं है । वह अर्थ **विलसन्** साहिबके अनुमानको अनुकूल होनेके कारण उनने उसका स्वीकार किया है । भाषातत्त्ववेत्ता लौग 'यवन' शब्दकी उत्पत्ति Ionian (ऐ॰ओनियन्) शब्दसे बताते हैं । जो हो, इसमें तो कोई संदेहही नहीं है कि, यवनोंका उल्लेख आर्य्य लोगोंके ग्रथोंमें अत्यत प्राचीन कालसे पाया जाताहै। महाभारतके युद्धप्रसगमें लिखा है कि, कई यवन दुर्योधनके प्यारे योद्धा थे, उसके सिवाय इस बातको तो सभी जानते हैं कि, पांडवोंको लाक्षागृहमें दग्ध करनेकेलिये पुरोचन नामका यवन नियत किया गया था, सिकदर बादशाहके समयकी घटना जिसे नाटकका अवलबनस्वरूप हुई है उस '**मुद्राराक्षस**' नाटकमें तो उनका सबध आरभी स्पष्टतया पाया जाता है । इन सबको विचारनेसे यह बात लक्षित होती है कि, यह शब्द ग्रीक लोगोंके लियेभी प्रयुक्त किया जाता

एक दो स्थानोंपर किंचिन्मात्र आया है; उससे यह अनुमान होता है कि तत्कालीन हिंदूलोग उन्हें व्यापारी वा समुद्री डाकू समझते थे। उसी प्रकारसे वर्त्तमान कथाद्वारा हिंदूलोगोंकी जिस चाल चलन रहन सहन और राज्य रीतिआदिका परिचय मिलता है, उससेभी यही बात अनुमित होती है कि 'दशकुमारचरित' मुसलमान लोगोंका आधिकार इस देशमे प्रारंभ होनेके लागके अर्थात् ई० स० १००० के पूर्वही लिखा गया होगा। और दूसरी बात यह है कि इस ग्रंथके अंतिम उच्छ्वास (आठवें) में भोजवंशके विषयमे उल्लेख किया गया है। उक्त उल्लेखपर विलसन् साहिब तर्कना करते हैं कि भोजराजाका समय दशवे शतकका उत्तरार्द्ध होनेके कारण वर्त्तमान ग्रंथ उक्त कालके अनंतर लिखा गया होगासा जान पड़ता है निदान उक्त दोनो आधारोंको उपस्थित कर यह साहिब बहादुर यह निर्णय करते हैं कि 'दशकुमारचरित' ग्यारहवी शताब्दीके अंत वा बारहवीके आदिमे लिखा गया होगा ऐसा माननेमे कोई आपत्ति नहीं है।

वर्त्तमान कविके समयको निश्चित करनेके हेतु ऊपर जो प्रमाण दिखलाये गये है वे शंका और विवादजालसे मुक्त नहीं है। उनसे यदि कोई बात निर्द्धारित होही सकती है तौ वह यही हो सकती है कि, यह ग्रंथ मुसलमानोंके भारतमे आनेके पूर्व—अर्थात् अनुमान ई० स०

होगा। ऐसी अवस्थामे यवनशब्दके उल्लेखसे 'दशकुमारचरित'के समयका अनुमान न कर 'दशकुमारचरित' के समयसे 'यवन' शब्दके अर्थका निश्चय करना अधिकतर सुगम बोध होता है। पहिले तो मुसलमानोंका उदयही इसवी सनकी सातवीं शताब्दीमे हुआ है तो अब इधर इस देशमें 'यवन'के नामसे वही लोग प्रसिद्ध है सो ठीकहीहै। और साथही यह बातभी स्पष्ट हो जाती है कि पूर्वके—अर्थात् सातवीं आठवीं शताब्दीके पूर्वके ग्रयोंम वह अर्थ युक्तिसंगत नहीं ज्ञात होता। एतावता हमारी यह सम्मति है कि जैसे कालिदासके 'रघुवंश'मे पारसीक (पारसी) हून (Huns ?) आदि म्लेच्छजातियोंका उल्लेख पाया जाता है, और 'कादंबरी' में यह लिखा है कि, पारसी लोगोंके राजाने इंद्रायुध नामका घोडा भेटमें दिया था, उसी प्रकारसे उक्त ग्रंथके 'यवन' शब्दको केवल मुसलमानोंका व्यंजक न मान उक्तजाति वा तत्सम अपर जातियोंका बोधक मानना चाहिये। यह बात दंडीके जीवित कालनिर्णायक अगले लेखद्वारा और भी स्पष्ट होजायगी।

१००० वर्षके पूर्व लिखा गया होगा। पर इससे दंडी अमुकही शताब्दीमे जन्मा था कहनेकेलिये क्या प्रमाण है? विलसन् साहिबने अपनी तर्कनाको पुष्ट करनेकेलिये पूर्व्वोक्त भोजवंशके उल्लेखको उपस्थित किया है। पर भोजराजाके केवल नामसे क्या हो सकता है? क्योंकि उस नामके प्रसिद्ध राजागण अनेक हो गये है ऐसा कई ग्रंथोद्वारा जाना जाता है *। महाभारतमे भी एक भोजवंशकी कथा अत्यंत प्रसिद्ध है; पांडवोंकी मा कुंती उसी वंशकी बेटी थी। ऐसी अवस्थामे यह कहनेकेलिये क्या प्रमाण है कि, दंतकथाप्रसिद्ध भोजराजाही उक्त भोजराजा है। इसके सिवाय इस भोजराजाकी जीवनशताब्दीको सनिश्चय कौन बता सकता है? विलसन् साहिबने यह दृढतापूर्व्वक लिखा है कि वह ग्यारहवी शताब्दीमे जन्मा था, पर आपने अपने लेखकी पोषकतामे विश्वासपात्र प्रमाण कुछभी नही प्रदर्शित किया, इसके व्यतिरेक उक्तसाहिबकी उक्त तर्कनाका आधारस्तंभ यवनोंका उल्लेख है। इसके विषयमे हम अभी पिछले पृष्ठकी टिप्पणीमे सविस्तर लिखही चुके है। उससे स्पष्ट दीख पड़ता है कि तद्वारा कोई विश्वासपात्र बात स्थिर नहीं हो सकती। हमारे भूतपूर्व्व महर्षिगण भारतके आसन्नवासी पारसीक तथा ग्रीक प्रभृति लोगोके लिये 'यवन' शब्द व्यवहृत किया करते थे, अतः वह शब्द यदि मुसलमानोका बोधक न माना जाय तो कोई गुरुतर बाधा उपस्थित न होगी। निदान इस प्रकारसे उक्त दोनो प्रमाण दुर्बल स्थिर होते हैं। भला यदि यह मानभी लिया जाय कि, दंडी भोजराजाकाही समकालीन था तो इसकेलिये क्या प्रमाण है? केवल एक भोजप्रबंध! इस ग्रंथको ऐतिहासिक मान इसके लेखोद्वारा संस्कृत कवियोंके जीवनकालके विषयमे अनुमान करनेका साहस करना ठीक वैसाही कहा जायगा जैसे कोई 'सहस्ररजनीचारित्र' की कथाओंको प्रमाणस्वरूप मान इतिहास लिखनेकी चेष्टा करे। इस ग्रंथके कर्त्ताका बल्लाल मिश्र नाम और उसकी लेखप्रणालीद्वारा बोध होता है कि, वह बहुत पुराना ले-

---

* देखो डॉक्टर हॉल साहिबप्रकाशित 'वासवदत्ता'की आवृत्ति—अंगरेजी उपोद्घात, पृष्ठ १ प्रथम टिप्पणी।

खक न था। जान पडता है कि, बहुतसी सुनीहुई कथाओंको एकत्रित कर उसने उक्त ग्रंथ लिपिबद्ध किया है । अत्यंत प्राचीनकालसे भारतमें जो प्रसिद्ध २ कवि हुए हैं उन सबको आपने जोड बटोरके अपने ग्रंथमे एकत्रित कर दिया है । कालिदास, भवभूति, सुबंधु, बाण, बाणतनय, दंडी, माघ और भारविआदिको एकही मालिकामे गुंफित करनेके अतिरिक्त बल्लालमिश्रने मदन, विनायक और कोकिलआदि सच्चे वा झूठे कवियोको भी अपने प्रबंधमें गुंफित करलिया है, ऐसे ग्रथ केवल मनबहलावके अभिप्रायसे ही लिखे जाते हैं, उनमे यथार्थता ढूंढना अत्यंत व्यर्थ है । एतावता विलसन् साहिब जैसे चतुरचूडामणि पडितको वैसे लेखोको प्रमाणित मानते देख मन अत्यंत विस्मित होता है ।

इस प्रकारसे विलसन् साहिबके निर्णयको दुर्बल करनेवाले अनेक आक्षपोका उल्लेख कर अब दंडीके जीवनकालके विषयममे निजका मत प्रकट करते हैं ।

ऊपर हम लिखही चुके हैं कि, दडीका जीवनकाल स्थिर करनेकेलिये केवल अंतःप्रमाण ही एक साधन प्राप्त हो सकता हैं । यह अतःप्रमाण यथेष्ट भलेही न मिलसकें पर दंडीके जीवनकालका उससे बहुत कुछ पता अवश्य मिल सकता है । पीछे दो कवियोके वर्णनोमे हम यह कई बेर लिख चुके है कि, दंडी उन्हीका समवर्गी था।पर अब हमें समझ पडा है कि हमारा वह लेख भूलसे लिखा गया है । संस्कृतभाषामें गद्यकाव्यके ग्रंथ- 'कादंबरी' 'वासवत्ता' और 'दशकुमारचरित' यह तीन ही होनेके कारण, यह तीनो कवि काल, और कवित्वादिगुणोंमे समसमानही होंगे ऐसा स्वभावतः भ्रम होता है । यह प्रथम दोनोंके विषयमे अलवत्ते सच जान पड़ता है, पर दडीके वर्त्तमान ग्रथकी पदरचनाको जब हम विचारते है तो यह कहनेकेलिये साहस कदापि नही होता कि वह सुबधु और बाणका समकालीन था । दूसरे दोनोके ग्रथोंमे जैसे दीर्घ समास सरल एवं विरोधाभासात्मक श्लेष और वर्णमृदुतादि कृत्रिमताकी सामग्री हठात् प्रयुक्त की गई है, वैसी पाहिलेके ग्रंथमें नाममात्रको भी नहीं पायी जाती,

किंतु उसके ग्रंथमें कालिदासके समकक्षी कवियोंकी नांई भाव और पदरचनामें प्रायः सरलता दृष्टिगत होती है। साथही यहभी कहा जाता है कि वर्तमान ग्रंथकेलिये पिछले दोनोंके समान काव्यसंज्ञाभी सर्वथा चारितार्थ न होसकेगी । हां यह बात सच है कि उसकी अर्थरचना पदपदपर कविता केसी है; पर उसके रचयिताका उद्देश सुबंधु और बाणकी नांई गद्यकाव्य लिखनेका सर्वथैव न था, तो उसका अभिप्राय केवल इतनाही दीख पड़ता है कि पदलालित्यसंपन्न गद्यप्रबंधका एक उत्कृष्ट आदर्श (नमूना) मात्र दिखला दिया जाय । * इसके सिवाय उक्त दोनो ग्रंथोंके समान 'दशकुमारचरित' की गणना उपन्यासमेंभी नही हो सकती। क्योंकि इसमें एक तो कोई समूची कहानी नहीं है, केवल बहुतसी कथा एकत्रित करदी गयी हैं, और दूसरे किसी रसको प्रधानता दे उसकी पुष्टि पूर्णरूपसे नहीं की गयी है। सारांश वर्त्तमान ग्रंथका उपरितन कथित उपन्यासद्वयकी श्रेणीकांतर्गत न कह कर उसे पंचतंत्र और हितोपदेशादि ग्रंथोंकाही समकक्षी मानना युक्तिसंगत बोध होता है । इसमे इतना भेद अवश्य है कि उक्त दोनों ग्रंथ जैसे बालकोंके मनोरंजनार्थ लिखे जानेके कारण उनकी रचना बालबोध एवं निम्नश्रेणीकी रखी गई है वैसी 'दशकुमारचरित' की नहीं रखी गई किंतु उसकी रचना प्रगल्भ है। तो ऐसी अवस्थामें कि जब वर्त्तमान ग्रंथमें पूर्वोक्त दो कवियोंके ग्रंथोंकी अपेक्षा नाना प्रकारकी भिन्नता पायी जाती है यह कैसे संभव हो सकता है कि यह ग्रंथ उन्हींके समयमें रचा गयाहो। तात्पर्य्य उसकी कृत्रिमरचना इस बातको मानो प्रमाणित किये देती है कि वह उक्त कवियोंके पूर्वही लिखा गया होगा । स्वयं विलसन् साहिबनेभी अपनी भूमिकामें एक स्थानपर इसी प्रकारका अभिप्राय प्रदर्शित किया है। आप लिखते हैं "सच तो यह था कि, इस ग्रंथमें जो देशविभाग और सर्वसाधारणकी रीतिभांतिका उल्लेख किया गया है वह आदि हिंदुओंकी

*यहांपर यह बात स्पष्ट करदेनी चाहिये कि, पिछला (देखो बाणभट्ट—पृष्ठ १२६–१२७) उल्लेख दण्डीमात्रके विषयमें यथार्थतया सुघटित नही है सकता ।

रीतिभाँतिके समान होनेके कारण, और इसकी पदरचनाभी भवभूतिकी अपेक्षा अधिक कृत्रिम न होनेके कारण, दंडीका जो काल निर्दिष्ट किया गया है (ई. स. ११००) उससे वह बहुत न्यूनभी माना गया होता तो कोई क्षति न हुई होती पर इस तर्कनाका दंतकथासे मेल नहीं मिलता। " निदान ग्रंथप्रणयनप्रणालीद्वारा जो बाते स्पष्टरूपसे उपलब्ध हो सकती हैं उन्हें उपेक्षित कर दंतकथाओंके प्रायः शुष्क एवं निर्मूल प्रमाणोंको विशेष निश्चित माननेकेलिये साहिब बहादुरका अत्यंत आग्रह देख पड़ता है! पर दंतकथा और तदाधार अनुमान कहांलो विश्वासपात्र माने जा सकते है सो पीछे उल्लिखित हो ही चुका है । अस्तु; दंडी, सुबंधु और बाणके बहुत पूर्वकालमे जन्मा होगा ऐसा मानना हमे विशेष युक्तिसगत बोध होता है।

पर इनके सिवाय 'दशकुमारचरितमें ' और भी ऐसी कई बाते दृष्टिपथमे आती है जिनसे यही अनुमान होता है कि दंडी भवभूतिके समयमे, किबहुना उसकेभी पूर्व हुआ होगा । इस ग्रथमे बहुतेरे स्थलोपर बौद्धोका उल्लेख पाया जाता है वैसा न तो पिछले कवि कालिदासादिकोकेही ग्रंथोमे देख पड़ता है । और न अगले कवि सुबंधु और बाणकेही ग्रंथोंमे उपलब्ध होता है । हां पूर्वोल्लेखानुसार भवभूतिके एक ग्रथमें (मालतीमाधवमे) वह अवश्य देख पड़ता है। यह उल्लेखभी दडी और बाणकी समकालीनताका एक प्रमाण कहा जा सकता है । और दूसरा प्रमाण कामदकी और चाणक्यादिद्वारा उपदिष्ट कुटिलनीतिका सार्वत्रिक प्रचार है । वर्त्तमान कथाके बहुतेरे राजपुत्रोने इस कुटिलनीतिका * अनुधावन किया है । उनकी

* शठको शठतापूर्वकही पराजित करना नीत्यनुमोदित कार्य्य कहाता है, सर्वसाधारणके हितार्थ असदुपायोंका अनुष्ठान करनाभी निंद्य नहीं माना जाता, यह सम्मति अभीलो सुधारसंपन्न लोगोंकी पायी जाती थी । इसके उदाहरणस्वरूपमे, रामायणमें वालि तथा भारतमें कर्ण दुर्योधनादिके वध मुद्राराक्षसमें निजकेहितार्थ चाणक्य तथा राक्षसद्वारा किये हुए नाना प्रकारके मारणप्रयोग, इतिहासमें अफजलखानका घात तथा शाहूकी स्त्रीके साथ नानासाहिब पेशवाकी नीचता + + + प्रभृतिका उल्लेख किया जा सकता है। युरोपमें म्याकिवेल नामक एक इटालियन् मन्त्रीने ऐसे मतोंको ग्रंथस्वरूपमें लिपिबद्ध किया था, और अपने यहा पुराकालमें चाणक्यने किया था । निजकी कुटिलताके कारण यह कौटिल्यके नामसे भी पुकारा जाता था ।

शिक्षाका जो विस्तृत वर्णन लिखा गया है स्वयं उसीमें चौर्य्यादि कर्म्मविहित कहे गये हैं। × उदारचेता मनुष्य निसर्गतः आर्जव अर्थात् ऋजुताका प्रेमी होता है। उसका कैसाही महान् स्वार्थ क्यों न सिद्ध होता हो पर वह तदर्थ कुटिलनीतिका अवलंबन सहसा कदापि न करेगा। पर बड़े आश्चर्य्यकी बात है कि, वर्त्तमान कथामें कुमारोंको अशेषगुणसंपन्न तथा अखिल विद्यानिधान दिखलाकर तद्द्वारा चोरों तथा वधिकोकी जघन्य लीलाएँभी करवायी हैं, तिसपरभी तुर्रा यह है कि, इन घोर घटनाओंको निंद्य एवं अश्लाघ्य न कहकर उन राजपुत्रोंकी प्रशंसाका वह कारण प्रदर्शित की गयी हैं। इसी प्रकारकी कुछ घटनाएँ मालतीमाधवमें भी पायी जाती है। हमारे इस कथनका आक्षेप माधवद्वारा अघोरघंटके वधपर नही है। क्योंकि वह घटना गुप्तभावसे नहीं की गयी है किंतु उस नरपिशाच दुष्टात्माको उसके जघन्य संकल्पके निमित्त उचित दंड दिया गया है। परंतु कामंदकीने नंदनको प्रतारित करनेकेलिये जो युक्ति प्रयुक्त की है वह वास्तवमे ऋजुस्वभाव–मनुष्यानुमोदित कदापि नही हो सकती। उस कुटिल नीतिकी शरण ले कविने नाटकके नायक और नायिकाका समागम करवाया है, यह बात सब पाठकोको यथार्थमें अरोचक लगती होगी। यह नीति उस कालका रूप स्पष्टतया प्रदर्शित करती है। एतावता यहभी दंडी और भवभूतिकी समकालीनता बहुतांशमें प्रमाणित करसकती है। भला यह तो सब हुआ, पर यहांभी अपने पूर्ववर्णित उदारचेता एवं कोमलहृदय कविकी पुनःएक बातकेलिये सराहना किये बिना हमारी लेखिनी आगेको संचालित नहीं होती। वह इस बातकेलिये कि, हमारे कविने अपने 'मालतीमाधव'में अपने समयकी दशा इतनी पटुताके साथ प्रतिबिंबित की है कि, मनको उद्विग्न करनेवाली बातें उसके परमोत्तम प्रबंधकी छायाका स्पर्शतक नही कर पायी हैं। यह बात 'दशकुमारचरित' और 'मालतीमाधव' की परस्पर तुलना करनेवा-

---

× विलसनसाहिबकी आवृत्ति–पृष्ठ १६–१७। कादंबरीमेंभी राजपुत्रोकी शिक्षाका वर्णन पाया जाता है। (संवत् १९०६ की आवृत्ति पृष्ठ ६७ दंडी और बाणभट्ट समकालीन न थे इसका एक प्रमाण यह भेद भी कहा जा सकता है।

ळेको तुरंतहीं लक्षित हो सकती है। उक्त नाटकके माधवको दंडी यदि अपने कुमारोंकी श्रेणीमें लेलेता तो कोई अनौचित्य न देख पडता, क्योंकि दोनोके पराक्रम और चातुर्यादिगुण दिखलाकर दोनोका शृंगार वर्णित किया गया है। दोनोंके हाथसे परवध हुआ है। पर दंडीके कुमारोकी वधलीला पढ़कर राजवाहनकी * नांई उनकी प्रशंसा करना तो दूर रहेगा किंतु समस्त सहृदय पाठक उनकी लोमहर्षण लीला एवं निठुरतापर घृणा प्रदर्शित करेंगे। पर क्या कोई यह कह सकता है कि, अघोरघंट एवं माधवके युद्धवर्णनको पढ़ चित्तमें उक्त विकार उत्पन्न होते हैं? वह प्रसंगही कुछ ऐसी विलक्षणताके साथ संघटित किया गया है कि, उस चमत्कारिक प्रसंग पर माधवके हृदयमे जो क्रोधकारुण्यादिवृत्ति एकाएक प्रादुर्भूत हुई वही सत्हृदयपाठकोंके चित्तमेंभी उत्पन्न हो आती हैं+। क्या कोई यह कह सकताहै कि, असभ्यता के व्यतिरेक कोई गुण इन कुमारोमे पाये जाते हैं। धर्म्मकी श्रद्धा किस चिड़ियाका नाम था सो इन कुमारोंने कभी स्वप्नमें भी जाना हो सो नहीं देख पड़ता। गणनायक और देवी-प्रभृति देवों पर धर्मभीरु लोगोका विश्वास होनेके कारण उन लोगोंको उनके नामसे इन राजकुमारोंने कई बेर प्रतारित किया है। धर्मकी ऐसी अश्रद्धा भवभूतिके ग्रंथमे नाममात्रको कहीं नहीं देख पडती। 'दशकुमारचरित'मे बौद्धधर्म्मकी स्त्रियोंद्वारा दूतियोंका काम कराया है; यह भी उस कालका समीचीन सूचक है। 'मालती-माधव'में भी इस कार्य्यके संपादनार्थ बौद्ध धर्मकी स्त्रियां नियुक्त की गयी है,

* अपर राजकुमारोंने अपना २ वृत्तात राजवाहनके प्रति निवेदन किया है। जिसे सुन उसने अपने प्रत्येक मित्रकी सराहना की है। उपहारवर्म्माके स्तुत्यकार्योंको सुन परितुष्ट हो हँसकर राजवाहन उसे कहता है:– 'देखो, कारकर्म्म तथा कुटिलताके अनुष्ठानद्वाराभी धर्मार्थकीही प्राप्ति हुई!–क्योंकि उन्हीं कार्य्योंकी सहायतासे इसने अपने बधुआ माता-पिताको बंधनमुक्त किया, दुरात्मा शत्रुका सर्वनाश किया और अतमे राज्य प्राप्त किया, साराश बुद्धिमान् लोगोंके सभी काम शोभा पाते हैं। क्या हमारे पाठकोंमेंसे भी कोई राजवाहनके मित्रका उक्त प्रेमप्रपूरित शब्दोंद्वारा प्यार कर सकता है।

+ देखो भवभूति पृष्ठ ६४

पर उनका स्वभाव बहुतही उत्कृष्ट दिखलाया गया है! कामंदकी,*अवलोकिता और बुद्धिरक्षितादिकोंके गुण कितनी उत्तमताके साथ प्रदर्शित किये गये हैं । कामंदकीकी परोपकारिता, चतुरता और दयालुता विशेष सराहनेयोग्य प्रदर्शित की गयी हैं । अस्तु; अब उक्त प्रतिपाद्य विषयको पुष्ट करनेके हेतु एक तीसरा प्रमाण दिया जाता है; वह उक्त दोनोकी अपेक्षा अधिकतर निश्चायक है । वर्त्तमान ग्रंथके सातवें उच्छ्वासमें मंत्रगुप्तका चरित वर्णित किया गया है । उसका सारांश यों हैः—वह राजवाहनसे कथन करता है ''मैं कलिंग देशको पहुँचा और वहां मैंने एक सरोवरके तीरपर आराम किया । वहां वृक्ष बहुत सघन थे और उनके बगलमें स्मशानभूमि थी । मुझे नींद लग गयी थी, पर निकटवर्त्ती दो पिशाचोंकी बातचीतके कारण मैं जागृत हो गया । वे उस मरघटामे रहनेवाले एक सिद्धके विषयमें बातचीत करते थे; अनंतर उस रहस्यको जाननेके अभिप्रायसे मै उनके पीछे हो लिया तो मैंने देखा कि कपालमालाकलित सर्वांगभस्मचर्चित वह सिद्ध अग्निमे तिलाहुति दे रहा है । फिर उसकी आज्ञानुसार उसके शिष्योंने कलिंग राजाकी कन्या कर्णलेखाको ला उपस्थित किया । वह बिलबिलाते वहां खड़ी थी और वह उसपर आक्रमण करनेके घातहीमे था कि, मैंने आगे बढ़के उस सिद्धका बध किया । '' इसे पढ़ ऐसा कौन सारज्ञ पाठक है कि जिसे मालतीमाधवके पांचवे अंकांतर्गत, स्मशान, पिशाच, अघोरघंट, मालती और माधवका स्मरण नहीं होता ?

निदान इस प्रकारसे दंडीके जीवनकालके विषयमे जो बाते हमारे आलोकपथमें आयीं वे सब उल्लिखित की गयी। उक्त तीनों अंतःप्रमाणोंद्वारा

* जान पडता है कि, कामदकीसज्ञक नीतिकारके नामको अनुकृत कर कविने उसका यह नाम रक्खा है । उसने देवरात और भूरिवसुके साथ नीतिशास्त्रकी शिक्षा पायी थी और देवरातने माधवकोभी उस शास्त्रके अध्ययनार्थ पद्मावती नगरीको भेजा था । इन घटनाओंके कारण यह तर्कना होती है कि, भवभूतिके समयमें नीतिशास्त्र विशेषरूपसे अधीत किया जाता था। दंडीके जीवनकालविषयक उक्त प्रमाणको यह बातभी पुष्ट कर सकती है ।

यह माननेमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती कि, दंडी भवभूतिके किंचित् पूर्व जन्मा होगा वा उसका समकालीन हुआ होगा। अब इस मतकी विरोध करनेवाली केवल यही बात पायी जाती है कि, बाणभट्टकृत 'हर्षचरित' के पूर्वोक्त संग्रहमे दंडीका नामोल्लेख नही पाया जाता। उसी प्रकारसे भवभूतिके विषयमेंभी उल्लेख नहीं पाया जाता सो पीछे लिखही आये है। परंतु इस विरोधका महत्वभी वैसा कुछ माननीय नहीं है।

यहांलों दंडीके जीवनकालके विषयमे बिचार किया गया। अब उसके अत्यत प्रसिद्ध ग्रंथ दशकुमारचरितके विषयमे लिखा जाता है।

वर्त्तमान ग्रंथकी आलोचना लिखनेके पूर्व दडीके नामके विषयमे जो तर्क वितर्क एवं वादविवाद पाये जाते हैं उनके विषयमें यहां कुछ लिखना आवश्यक बोध होता है। विलसन् साहिब अपने ग्रंथकी भूमिकामे लिखते हैं कि वर्त्तमानकविका नामभी उसके जीवनकालका ज्ञापक माना जासकताहै। वह इस प्रकारसे कि दंडी शब्दका अर्थ 'दंड धारणकरनेवाला है, इस अर्थसे यह अनुमान होता है कि, हमारा कवि शंकराचार्य्यके संप्रदायका कोई यति होगा और उसने अपने चित्त विनोदार्थ ये कथाएँ बांधी होगी। शंकराचार्य्यका समय आठवीं × शताब्दी कहा जाता है तात्पर्य्य यह बातभी उक्त समयकी (ई० स० ११००) पोषकता करती है।

उक्त बातको निश्चित प्रमाणके रूपसे उक्त साहिबने नहीं लिखा है; तौ उसके सूचित कर रखनेमे साहिबका यही उद्देश जान पड़ताहै कि, कदाचित वह वर्त्तमान कविका जीवनकाल निर्णीत करनेमे उपयोगी हो। पर उसमे यथार्थता अणुमात्रभी नही देख पड़ती, क्योंकि प्रथम तो आजपर्यंत 'दंडी' व्यक्तिवाचक संज्ञा समझी जाती है, ऐसी अवस्थामें लोगोंकी यह समझ सहसा झूठ नहीं हो सकती; और व्यक्तियोंके नाम तथा उपनाम ऐसे सहस्रों पाये जाते हैं जो दुर्बोध सुतरां निरर्थक रहा करते हैं; तात्पर्य दंडिके

× ऐसे निश्चित संवतको विलसन् साहिब न जाने किस प्रमाणके बलपर उपस्थित करते हैं।

नामको वैसा व्यर्थ माननेमें कोई आश्चर्य नहीं है *। भला यदि ऐसा मानलियाजाय कि, पहिले वह केवल संज्ञाही रहीहोगी पर अनंतर व्यक्तिवाचक संज्ञा होगयी, तौ पहिले यह बात उसका विरोध करती है कि, यदि वैसाही होता तौ दंडीके नामके साथ केवल 'श्री' विशेषणही न जोडा जाता बरन्, 'श्रीमत्परमहंस' 'परिव्राजकाचार्य्य' आदिमेंसे कोई और विशेषण अवश्य उसके नामके साथ जोड़ा गया होता। पर यह सब बाते कहां हैं? इसके सिवाय यह बातभी युक्तिसंगत नहीं बोध होती कि जिस पुरुषने विरक्त हो चतुर्थाश्रमका स्वीकार किया, वह वेदांतादि शास्त्र तथा पुराणादिकोंके विषयोंको छोड़ वर्तमान जैसे शृंगार वृत्तांत वा मारपीटकी बातें लिखते बैठे। सारांश, उक्त साहिबने दंडीके नामका बड़े परिश्रमसे जो अर्थ लगाया है उसके साधक प्रमाण कोई भी नहीं पाये जाते। और यह प्रचंड प्रयत्नकांड आपने जिसकेलिये किया उस दंडीका जीवनकाल अचार्य्यके अनिश्चित जीवनकालपर सर्वथा आधेय होनेके कारण उसपर भी अनिश्चितता आती है।

'दशकुमारचरित' मे कौनसा विषय वर्णित है सो उसके नामसे ही व्यक्त होता है। इस ग्रंथके सामान्य स्वरूप, तदंतर्गतकथादिके विषयमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे इस ग्रथके विषयमें पाठकोके चित्तमें कुछ कल्पना हो ही आयी होगी, और उससे अधिक निरूपण उचित स्थलपर आगे कियाही जायगा। पर उसके पूर्व इस ग्रंथके संबंधसे जो विलक्षण घटनाएं हुई हैं उनका यहां पर लिखा जाना अभीष्ट जान पड़ता है।

पीछे बाणभट्टके विषयमें लिखतीबार तद्रचित 'कादंबरी' की

---

* हमारे पाणिनि तथा यास्क मुनिने ऐसे जगन्मान्य व्याकरणग्रय लिखे पर जिनके नामकी व्युत्पत्ति स्वय उनलोगोने भी विचारी थी वा नही सो नहीं जान पडता अब इधरके दक्षिणी लोगोंके 'गोखले' 'पराजपे' आदि उपनामोंके अर्थ कौन बता सकता है? वैसे ही अंग्रेजीके Gladstone आदि उपनामोकी व्युत्पत्ति किस प्रकार की जासकती है?

परिपूर्त्तिविषयक विलक्षणताका उल्लेख किया गया है. वह हमारे पाठकोंको कदाचित् विस्मृत न हुआ होगा। परंतु 'दशकुमारचरित' की रचनामे तौ उससे कहीं बढ़के चमत्कार संघटित हुए है। यह कादंबरीकी नाई केवल अपूर्णही नही रह गया। था, वरन इसका आरंभही नही हुआ था !!! पहिले उच्छ्वासका अवलोकन करो तो विना पूर्वसंदर्भके एकाएक एक स्त्री पुरुष एकांतमे प्रणयालाप करते हुए पाये जाते है। वे कौनहै, कहांकेहैं, उनका पूर्ववृत्तांत क्या है, आदिका पाठकको कुछभी परिचय नहीं मिल सकता। भला यदि यह आशा की जाय कि नाटकप्रथाके अनुसार आगे चलके उसका संदर्भ मिल जायगा सोभी नही मिलता। उक्त कथनसे यह प्रतिपादित होता है कि यह प्रबंध आदिरहित एव असंबद्ध था। पर रसिक पाठकोके सौभाग्यवश यह ऊनता संप्रति पूर्ण हुई देख पड़ती है। इस पीछेसे जोडे हुए आदिभागको 'पूर्व्वपीठिका' संज्ञा दी गयी है। इसमे पांच उच्छ्वास है और विलसन साहिबके संस्करणमे यह ४८ पृष्ठोमे शेष हुए हैं ! पर इन्हे किसने लिखा है सो अद्यावधि निश्चयपूर्व्वक नही ज्ञात हुआ। कोई कहते है उन्हें स्वयं दडीने ही लिखा होगा; दूसरे लोग कहते हैं वह उसकी रचना नही है, कदाचित् उसके किसी शिष्यने उन्हें लिखा होगा। सारांश इस प्रकारसे इस पूर्व्वपीठिकाका कर्त्तृत्व वादग्रसित है। इसके विषयमे हमारी निजकी जो सम्मति है सो अब पाठकोंको विदित की जाती है।

विलसन् साहिबने उक्त विवादको अपने ग्रंथकी भूमिकामे अनिश्चितही छोड दिया है। आपने केवल दोनो मत प्रदर्शित कर दिये हैं। परंतु पूर्वापर विचारकरनेपर हमे जान पड़ता है कि यह 'पूर्व्वपीठिका' स्वय दंडीकी लिखी हुई नहीं है। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि यदि ऐसाही हुआ होता तौ इसका ऐसा उलटा पुलटा विभाग कवि क्यों करता? 'दशकुमारचरित' अर्थात् दस राजपुत्रोकी कहानी तौ इस नामके अनुसार उक्तग्रंथमे कुमारोंका जन्म, उनकी शिक्षाप्रभृतिका सपूर्ण वृत्तांत ग्रंथप्रणयनप्रथानुसार उत्तरोत्तर लिखा जाना चाहिये था। विना कारण बीचहीमे

कथाके विच्छेद करनेका क्या प्रयोजन था ! भला यह कहो कि जहां यह कथा तोड़ी गयी है वहां उसके वैसा करनेके लिये कुछ कारण हो, सोभी नहीं है । मुख्य कुमारकी नायिकासे भेंट कराकर कथाको शेष कर दिया है । उनका-आलाप अगले भागमें अर्थात् मुख्य ग्रंथमें आया है । उसी प्रकारसे पूर्व्वपीठिका के अंतिम और प्रधान ग्रंथके आदिको सूक्ष्मतया जो विचारेगा और परस्परकी तुलना करेगा उसे तत्क्षण ज्ञात हो जायगा कि दोनोंमे आकाश पातालका अंतर है । बहुतेरे शब्दोंकी द्विरुक्ति हुई है । जानपड़ता है 'पूर्वपीठिका-के रचयिताने दोनोंको एकत्रित करनेके अभिप्रायसे इन शब्दोंको अंतमें लिख रखा है । वैसेही स्वयं विलसन् साहिबके कथनानुसार 'पूर्वपीठिका' और मुख्य ग्रंथके कतिपय स्थलोंपर विरोध लक्षित होता है और कही कहीपर वही वही बाते कही गयी हैं । यह सब बातें मानों स्पष्टरूपसे प्रमाणित किये देती हैं कि दोनोंका कर्त्ता एकही कवि न होगा । इसके सिवाय मुख्य ग्रंथको विचारनेपरभी यही तर्कना चित्तमें आती है मूल ग्रंथकी भाषा जैसी इतने बड़े नामी कविको शोभा देनेके योग्य प्रौढ, सरस और ' दंडिनः पदलालित्यं ' इस सर्वतो सुप्रसिद्धिको भूषित करनेवाली है वैसी ' पूर्व्वपीठिका ' की भाषाहमें नही ज्ञात होती । अवश्य वह संस्कृत कवियोंके साधारण संप्रदायानुसार लिखी गयी है, पर रसिक पाठकोंके चित्तको हठात् प्रसन्न करनेका सामर्थ्य उसमें नही पायाजाता मूल कविकी शैली यद्यपि बहुतांशमें अनुकृत की गयी है, तथापि हम समझते हैं कि दोनोंके भेदका आभास चतुर पाठकोको होही जाता है । एक स्थानपर अनुप्रासोंको परस्परमें गुंफितकर बहुत कुछ लंबीमाला बनायी गयी है * ऐसी कृत्रिम रचना मुख्य ग्रंथमें कहीभी दृष्टिगत नहीं होती । एतद्वारा ' पूर्व्वपीठिका' प्रणेताकी रसिकता व्यक्त होती है और साथही यह बात औरभी स्पष्ट हो जाती है कि वह दंडीसे कोई पृथक् होगा । इसके सिवाय दोनोके कहानी बांधनेमेंभी अत्यंत वि-

* पृष्ठ १८ " कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेन तेनाभ्युदयाशंस राजानमकार्षुः । "

भिन्नता देख पड़ती है। मुख्य ग्रंथकी कहानी जितनी चतुराईसे जोड़ी हुई पायी जाती है उतनी 'पूर्वपीठिका' की नही पायी जाती। हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि, मूल ग्रंथसे मेल मिलानेकेलिये वे योंही जोड़दीगयी हैं। वास्तवमे उनमे विलक्षणता कुछभी नही है।

निदान इस प्रकारसे हमे पूर्ण विश्वास है कि 'पूर्वपीठिका' दंडीकी लिखी हुई नही है। पर वह इतनी सावधानीसे लिखी गयी है कि मूल ग्रंथसे उसकी भिन्नता सहसा दृग्गोचर नही होने पाती। एतावता जान पडता है कि उसका रचयिता दंडीके शिष्योंमेसे ही कोई होगा। इस तर्कनाका हम स्वीकार करते है। और साथही इस बातको भी अंगीकृत करते है कि दंडीका यह ग्रथ आदिरहित क्योंकर निर्म्मित हुआ, वा बीचहीमे कथाका आरभ करने अथवा उसे अधूडी छोड़नेमे कविका क्या अभिप्राय होगा सो हमारी समझमें नही आता ! ऐसी विलक्षण घटनाएं संसारमे बहुतही थोडी पायी जाती हैं।

'दशकुमारचरित' अधूड़ा है यह अभी पीछे उल्लिखित होही चुका है। उसे किसी औरहीने पूर्ण किया है। * इस उत्तर भागके रचयिताने उसे 'उत्तररामचरितशेष'के नामसे परिचित किया है। इसकी कर्त्तृता 'पूर्वपीठिका'के सदृश वादग्रसित नही है। उसके पठनद्वारा यह स्पष्टतया विदित होता है कि चक्रपाणि दीक्षित नामके किसी दाक्षिणी पंडितने उसे लिखा है। पर उसकी रचना मूल ग्रंथके मेलकी नहोनेके कारण विलसनसाहिबने उसे निज प्रकाशित संस्करणसे बहिष्कृत कर दिया है। अतः उनकी आवृत्तिमे यह ग्रंथ अपूर्ण ही पाया जाता है।

निदान अपने कविके ग्रंथमे उसकी रचनाके संबंधसे जो चमत्कार-

---

* इस प्रकारकी पूर्त्ति एक नाटकमें भी पायी जाती है। 'मृच्छकटिक'में सब अंक दस है। उनमें नव अंक और दसवेका थोड़ासा पूर्वभाग स्वय कविका (शूद्रककाही) लिखा हुआ है पर अंतिम भाग नीळकंठ संज्ञक किसीपंडितका जोडा हुआ है। यह घटनाभी उक्त केसीही विलक्षणतागर्भित है अत. यहा लिख दी गयी है।

पूरित घटना श्रवणगत होती है उसका निरूपण किया गया। अब उसकी कहानियोंका विचार करते हैं।

पीछे हम लिखी चुके हैं कि लोग साधारणतः सभ्रम 'दशकुमारचरित' को 'वासवदत्ता' और कादंबरीकी श्रेणीमें परिणत करते हैं; पर यथार्थमें वर्त्तमान ग्रंथकी समता 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' से जैसी मिलती है वैसी वह उक्त ग्रंथोंसे नही मिलती। क्योंकि इस ग्रंथमें न तो कोई संपूर्ण एक कथाही है और न कविने उसका संविधानक (कथासूत्र) रचनेकी चतुराई दिखानेकेलिये वैसा कुछ प्रयत्न ही किया है; न काव्यसंप्रदायानुरूप भिन्न२रसोंद्वारा शृंगारादिको यथाक्रम पुष्टही किया है, और न बीचबीचमें देशकालादिकोंके वर्णनही लिखे हैं:—सारांश इस ग्रंथमें उपन्यासके कोईभी लक्षण नही पाये जाते। ग्रंथके अभिधानानुसार परस्परासंबद्ध कथामात्र पायी जाती हैं. इससे जान पड़ता है कि दंडीका अभिप्राय गद्यकाव्य लिखनेका न था; वा यह मान लिया जासकता है कि उसके समयमे उसकी प्रथाही प्रचलित नही हुई थी; यह बात पिछले लेखद्वारा स्पष्टही होचुकी है। यही कारण है कि संविधानक, रसवैचित्र्य और वर्णनादिकोंकी विलक्षणता उसने वर्त्तमान ग्रंथमें योंही कहीं कही प्रदर्शित की है। दंडीके इस लेखप्रबंधद्वारा जान जाता है कि इसे लिपिबद्धकरनेमें उसका प्रधान अभिप्राय इतनाही था कि तद्द्वारा अपने समयकी दशाका पाठकोंको परिचय प्राप्तहो और साथही संस्कृतज्ञ पाठकोंको रोचक कथाओंके मिषसे परमोत्कृष्ट गद्यकाव्यका आदर्श प्राप्त हो। सारांश इस ग्रंथका विवरण पिछ्ले दो ग्रंथोंकी नांई विस्तृत होनेकेलिये अणुमात्रभी अवकाश नही है।

ऊपर यह कथित होही चुका है कि 'दशकुमारचरित' में शृंखलाबद्ध एकही कहानी नही है, किंतु प्रत्येक कुमार की क़हानी भिन्न२ हैं। अतः इस ग्रंथका प्रारंभ किस प्रकारसे किया गया है सो लिखकर इसकी कथाओंका सामान्यतः अनुमान होनेके उद्देशसे केवल एक कथाका निरूपण नीचे किया जाता है।

मगध*देशांतर्गत पुष्पपुरी नामकी नगरीमें राजहंस नामक एक महा प्रतापी एवं पुण्यशील राजा शासन करता था। मालवनरेश मानसारके साथ किसी कारणवश इसने घोर युद्ध किया×उस युद्धमे राजहंसकी जीत हुई और मानसार इसका बंधुआ बना यागया । पर उदारचेता राजहंसने उसे मुक्त कर पुनः उसे उसका राज्य सौंप दिया ! इसको विस्मृत कर मानसार राजहंससे युद्धकरनेके हेतु पुनः समरांगणमे उपस्थित हुआ। राजा बहुत लडा। पर अतमें महाकालेश्वरकी आराधना कर मानसारने जो गदा प्राप्त की थी उसके प्रभावसे उसकी हार हुई। इसके गदाप्रहारकरतेही सारथी गतप्राण हो गया और राजा मूर्च्छित हो गिर पड़ा। घोड़े ऐसे विचके कि मूर्च्छितराजाके साथ रथको एक जंगलमें खींच ले गये । आगे सौभाग्यवश उस जंगलमें रानी तथा प्राधन मंत्रीकी राजासे भेंट हुई । इधर शत्रुने पुष्पपुरीको अपने अधिकारमें कर लिया और वह उसका राजा बन बैठा।इस प्रकारसे निराधारही वह राजमंडली उस बनमे अपने दिन काटने लगी । कुछ कालके अनंतर उसी अरण्यमे आकाशवाणीके अनुसार राजाकी रानी वसुमतीको सुमुहूर्त्तपर एक लड़का पैदा हुआ । उसका नाम राजवाहन रक्खा गया । यही राजवाहन वर्त्तमान कथाका नायक है । इसीके साथ राजाके तीन मंत्रियोंके यहांभी उसी अरण्यमें तीन लड़के पैदा हुए। निदान वह राजा इनचारों कुमारोंका पालन पोषण करने लगा । कुछ कालके अनंतर तपस्वी आदि अनेकलोगोंने भिन्न२ समयपर और भी छःकुमार ला राजाके आधीन किये;

---

*वर्त्तमान विहारप्रांतका दक्षिणभाग मगधदेश कहा जाता था,पुष्पपुरका दूसरानाम पाटलिपुत्रथा जिसे आजकल लोग पटना कहतेहैं, ग्रीकलोगोंके ग्रंथोंमें इसनगरका अपभ्रष्टनाम 'पालिबोथ्रा ' पाया जाता है । यह बाततो पूर्वहीसे विदित थी।पर जबसे रेवनृशा साहिबने सोन (सोण) नदीकी तराईका पता लगाया है तबसे यह औरभी दृढ़ हो गई है । मालव अर्थात् वर्त्तमान मालवाको हमारे पाठक जानतेही हैं ।

×'वासवदत्ता' और 'कादंबरीके' समयमें दशकुमारचरित नहीं लिखा गया इसके सुपुष्ट प्रमाणस्वरूपमें इस दूसरे ग्रंथके आरमका नामोल्लेख किया जा सकता है । यह यदि उक्त दो ग्रथों के समयमें या उनके पश्चात् लिखा गया होता तो उसमें आजदिन राजा और नगरका जो वर्णन पाया जाता है वह वर्त्तमानकी अपेक्षा बहुतही भिन्न प्रकारका पाया जाता ।

उनमेंसे चार उसीके मंत्रियोंके पुत्र थे। विदेशवासी होनेके कारण नाना-प्रकारकी यंत्रणाओंके लक्ष्य होते होते कर्मधर्मसंयोगवश वे लड़के अंतमे अपने स्वामीके निकट आगये। और दूसरे दो राजहंसके मित्र राजा मिथिलाधिप प्रहार वर्म्माके पुत्र थे। वेभी अपने खोटे दिन काटते हुए उसके पास पहुंच गये। अस्तु; इस प्रकारसे इन दशों कुमारोंकी राजाने रक्षा की और उन्हें उत्तम प्रकारकी शिक्षा दिलायी। विद्यामे परिपूर्ण हो जब यह कुमारगण युवावस्थाको प्राप्त हुए तब वामदेव संज्ञक एक ब्राह्मणने राजाको सूचित किया कि राजन्! यह सब कुमार अब विद्यामे निपुण हो-गये। अब इन्हे दिग्विजयके अर्थ भेजियेगा। उक्त ब्राह्मणके मंत्रणा अनुसार एक शुभ मुहूर्तपर राजाने उनलोगोंको दिग्विजय प्राप्त करनेके हेतु भेजा। अनंतर उन दशोकुमारोंने वहांसे प्रस्थित हो विध्याटवीमें जा डेरा दिया। इस प्रकारसे उनके यात्रा करते करते एक बेर ऐसा हुआ कि एक ब्राह्मण राज-वाहनको अपने साथ गुप्तभावसे पातालमे ले गया। वहां राजवाहनके अतुल पराक्रमसे उसे संपूर्ण राज्य आप्त हुआ; और वहांके राजाकी कन्याका उसने पाणिग्रहण किया। इधर राजवाहनको न देख उसके नव मित्र भयभीत हो उसके शोधार्थ जिसे जहां मार्ग मिला वहां वह चले गये। उनके चलेजानेके पश्चात् राजवाहन ऊपर आया; पर अपने साथियोंको उसने वहांके न पाया। आगे कुछ कालके बीतनेपर एकके पश्चात् दूसरा और दूसरेके पश्चात् तीसरा इस प्रकारसे वे सब उसे आमिले। और प्रत्येकने अपना २ वृत्तांत राजवाहनके प्रति निवेदन किया; यही इस ग्रंथकी कहानी है।

अब 'दशकुमारचरित' की कथाएं किस प्रकारकी हैं सो विशेष स्पष्ट करनेकेहेतु नमूनेके लिये उनमेंसे एक कहानी निचे लिखी जाती है।

उपहार वर्म्मा राजपुत्रके (राजवाहनके) प्रति अपना चारित्र कथन करता है:—

"मैं तेरी टोह लगाता हुआ विदेह देशको गया वहां पहुंचनेपर राजधानी मिथिलामें मैं नहीं गया किंतु नगरके बाहर एक मठमेंही डेरा दिये रहा। वहां एक वृद्ध तापसीने मुझे तत्रस्थ राजा प्रहारवर्म्मा (उपहारवर्म्माका पिता)का

सब वृत्तांत कि जिसे हुए बहुत दिन न बीते थे कह सुनाया। उस वृत्तांतको सुनतेही मै जान गया कि वह तापसी मेरी दाई है। और उसने जो कहा-था कि राजाका पुत्र वनमें खो गया सो मैं ही हूं। मैंने तुरतही यह सब बात उसे विदित की। इस बातके जानतेही उसका कंठ गद्गद हो गया और उसने बड़े प्रेमसे मुझे अपने हृदयमे लगा लिया। अनंतर विकट-वर्म्माका*बधकर बंधुआ कर रखेहुए अपने मातापिताको बंधनमुक्तकरनेका अपना निश्चय मैंने उसपर प्रगट किया। उसने भी मुझे सहायता देना स्वीकृत किया। वह इस प्रकारसे कि उसकी लडकी विकट वर्म्माकी रानीकी दासी थी; तौ उसने यह मंसूबा बांधा कि तद्द्वारा रानीको अपने बश करके राजासे बदला लेना चाहिये। यह काम वैसा कुछ दुःसाध्य न था। क्योंकि विकट वर्माके कुरूप कुबुद्धि तथा दुष्टात्मा होनेके कारण रानी उसे बिलकुल नही चाहती थी। यह बात निश्चित होजानेपर उस दाईकी पुत्रीने उसे प्रतिपादित किया अर्थात् एक गुप्त मार्गसे लेजाकर मुझे उस रानीसे मिलाया और मेरे विषयमे उसके हृदयमे प्रेमांकुरित करा दिया। परं विकटवर्मा मेरा सगा चचेरा भाई है, उसके साथ मै ऐसे पापकर्म्मको क्यो कर करूं, इस प्रकारकी गहरी चिन्तामें मै मग्न हुआ। पर गणनायक गणपतिने दृष्टांतद्वारा मेरी वह गंभीर चिंता दूर की। कि "रे उपहारवर्म्मा! तू मेराही अंश है। और यह स्त्री मन्मस्तकस्थ गंगा है। और शापदोषके कारण यह धरतीपर अवतीर्ण हुई है। एतावता तुम्हारा संयोग निंद्य नही है।" इस-प्रकारसे जब मेरा सदेह दूर हो गया तब मै उसके साथ निःशंक रममाण हुआ। कुछ दिनलो योंही काम चलते रहा। फिर राजाका प्रतिकार करनेके-लिये मैंने आगली युक्ति प्रयुक्त की। रानीने राजाको एक सुंदर तस्वीर दि-खाई और कहा कि यदि आपकी अनुमतिहो तो ऐसा सुंदर रूप प्राप्त करनेकी

* विकट वर्म्मा प्रहार वर्म्माके भाईका लडका आर्थात् उसका भतीजा था। प्रहार वर्मा तथा उसको रानीको बंधुआ बना यह आपही राजा बन बैठा। वर्त्तमानकथा कहनेवाले उपहार वर्म्माने अपने माता पिताके दुःखवृत्तातको सुन अपने पितृव्यभ्रातासे उसका बदला लेना निश्चित किया।

जो मंत्रसिद्धि मैंने अभी प्राप्त की है तद्वारा आपका रूप भी ऐसा सोहावना एवं दिव्य कर दूंगी। विकट वर्म्मा बुद्धिहीन तो था ही, उसने वह बात तत्क्षणही स्वीकृत कर ली। इसके अनंतर यह सब आश्चर्यभरी लीला करनेके लिये उसने वाटिकामें तयारी करायी। होमकुंड प्रस्तुत करा राजाको धोखा देनेके-लिये मैंने बहुतकुछ मंत्रतंत्रोका ढोंग चलाया। अंतमें मुझे एक निकटवर्त्ती लताभवनमे जहॉ छिपा रखा था वहांसे कुंडके पास आनेकेलिये उसने मुझे इंगित किया। तब संकेतानुसार मैं तुरंतही आगे बढ़ा और कटारसे मैने विकटवर्माके दो खंड कर चट उस कुंडकी अग्निमे डाल दिये। इस प्रकारसे प्रधान अभिप्रायके सिद्ध होनेपर मैंने तुरंतही अपने मातापिताको बंधनमुक्त कर उन्हे पूर्ववत् पुनः राज्यारूढ कराया। *"

उक्त कथाको पढ़ हमारे कवितापटु पाठकगण 'दशकुमारचरित' की अपर कथाओंके स्वरूपको बिचार ले सकेंगे उपहार वर्म्माकी जैसी लीला ऊपर वर्णित की गयी है प्रायः वैसीही सबकुमारोंकी पायी जाती हैं। निःसंदेह उन्हें पढ ऐसा विरलाही पाठक होगा जिसे उनसे घृणा न होगी। यह कथा इस बातको अवश्य प्रतिपादित करती है कि जिस समय ऐसी भयावह अधमघटनाए एवं धर्म्मच्युति चारों ओर आलोकपथमें आती थी वह समय निःसंदेह बड़ा कठिन होगा! निदान उक्त कथाको पढ़ हमारे पाठकगण वर्त्तमान ग्रंथकी कहानी बांधनेमें किस प्रकारकी विलक्षणता पायी जाती है सो सहजहीमें जान सकते हैं। अभिप्राय यह है कि उपन्यासका प्रधान अंग जो उक्त गुण तदर्थ यह ग्रंथ समादृत नहीं हो सकता सो स्पष्टही है।

---

*उक्त श्लाघ्यचरितका वर्णन तत्कर्त्ताके मुखसे सुन वह राजवाहनको कैसा प्यारा लगा-था सो पीछे उल्लिखित होही चुका है। उसके स्मरण मात्रद्वारा वर्त्तमान कविके नामका सदेह तत्क्षण निवृत्त होजायगा। यह मत यद्यपि राजवाहनद्वारा कहा गया है तथापि उसे स्वय दडीका माननेमें कोई अनौचित्य नहीं बोध होता। ऐसी अवस्थामें दडी यदि यति होता तो यह कब सभव था कि वह ऐसे जारकर्म्मको पुरस्कृत करता? और गणपति देवी प्रभृति देवताओका सबध उनकी विडबनाके अर्थ लिखता।

पीछे यह बात उल्लिखित होही चुकी है कि 'दशकुमारचरित'में आदिसे अंतपर्य्यंत कोई एक कहानी न होनेके कारण उस ग्रंथमें किसी रसका परिपाक पूर्णरूपसे सिद्ध नही होने पाया। समस्त कुमारोंके चरितमें दो रस मुख्य पायेजाते हैं। वे रस वीर और शृंगार हैं। पर वेभी ऊपर लिखे हुए उपहारवर्म्माकी कथाके समान होनेके कारण प्रथमतो वह पूर्णही नही होने पाये; और इसके व्यतिरेक उनका स्वरूप दुष्ट होनेके कारण उनके योगसे मन प्रसन्न नही होता प्रत्युत उद्विग्न हो जाताहै। कुमारोंके वृत्तांत एवं साहसकार्य्यकलापमे अद्भुत और भयानक रसोका अभाव नही है, पर बात यह है कि वेभी उक्त रसोंकी नांई अपूर्णही है। 'कादंबरी'की कहानी जैसी उत्कृष्ट बांधी गयी है, वा 'सहस्त्ररजनीचरित्र' की सब कथाएं जेसी अद्भुत रसपूरित है, वैसी इनमेंस एकभी नही है। केवल एक दो कुछ अच्छी हैं और शेष योंही साधारण योग्यताकी हैं। सारांश इस ग्रथकी रसविचित्रत्ता उक्त प्रकारकी है। जब वर्णनोंको विचारतेंहै तौ लक्षित होता हैं कि भवभूतिके नाटक वा कादंबरीमे जिस प्रकारके सृष्टिविभवके वर्णन देख पड़ते है उस प्रकारके इसमें नाममात्रकोभी नही हैं। स्त्री तथा बाटिका दिकोके वर्णन कहींकहीं अवश्य है पर वेभी संस्कृत कवियोकी अनादिसिद्धलकीरके फकीर बनेहुए संप्रदायके अनुयायी होनेके कारण मनको तादृश चकित नही कर सकते। कहनेका अभिप्राय यह है कि मनःप्रमोदार्थ जो रसिक दंडीकी इस सम्पूर्ण कविताका अवलोकन करैगा हम नही समझते कि वह उसे पठनके अंतमे यथेष्ट रूपसे प्राप्त कर सकेगा। कहीं कहीं उसे वह अवश्य रोचक लगेगी, पर पूरे ग्रंथका पुनरवलोकन करनेकेलिये उसका जी कदापि उत्साहित न होगा।

'दशकुमारचरित'विषयक हमारी उक्त सम्मतिको पढ हमारे पाठकगण कदाचित् महदाश्चर्यित होंगे, क्योकि यह ग्रथ इसदेशमें पूर्वहीसे अत्यंत प्रसिद्ध है। और इसके सिवाय उसके गुणोपर मोहित हो विलसनसाहिबने जबसे उसे अपने यूरोपनिवासी पाठकोको भेंट किया तबसे वह उधरभी

उसी प्रकारसे प्रसिद्ध हो रहा है। एतद्देशीय पंडितमंडलीमें इस ग्रंथके कारण दंडी किस प्रकार समादृतकिया जाता है सो निम्नलिखित श्लोकद्वारा औरभी स्पष्ट हो जाता है–

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ॥
दंडिनःपदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

"उपमा देते बनी हैं तो एक मात्र कालिदासहीसे देते बनी हैं, काव्यको अर्थ-गौरवयुक्त यदि किसीने किया है तौ एक मात्र भारवीने ही किया है, पदलालित्यकी असीम शोभा केवल दंडीनेही प्रदर्शित की है।और इन तीनों गुणोका एकीकरण अकेले माघ कविकेही काव्यमे दृष्टिगत होता है।"

उक्त श्लोक दडीके पदलालित्यको सर्वोपरि श्रेष्ठ प्रतिपादित करता है। बल्लालमिश्रके 'भोजप्रबंध'मे भी यह कवि कालिदासादिकवियोंके साथ उनकी सभामे सुखपूर्वक विहार करता हुआ पाया जाता है। इसका एक उदाहरण वर्तमान लेखके आदिमे दियाही गया है। इसके सिवाय इधरके ग्रंथकार तथा रासिकाग्रगण्य अप्पय दीक्षितनेभी दंडीके विषयमे अपनी नम्रता 'दशकुमारचरितसंक्षेप' पद्यरूपग्रंथद्वारा प्रगट की है। इसी प्रकारसे किसी विनायक नामके कविने भी दडीको बहुत समानित किया है।

कहना नही होगा कि विना कारण उक्त प्रकारकी द्विगुणितख्याति किसीकी नही हो सकती। अतः उसका कारण यहां अवश्यमेव उल्लिखित किया जाना चाहिये। प्राचीनकालसे इस देशके पंडितोमे उसकी जो परंपरासे सुख्याति चली आती है उसका कारण उक्त श्लोक वर्णित पदलालित्य है। इस कविके आत्मरचित ग्रथमे यह गुण वास्तवमें सर्वत्र देख पड़ता है। संस्कृतमें पहिले तो गद्यग्रथ योंही इने गिने है; पर जो हैं उनमेसे दंडीके दशकुमारचरितकी समताकरनेवाला एकभी नही है। 'पचतंत्र' और 'हितोपदेश' प्रभृतिकी पदरचना बहुतही निम्न श्रेणीकी है, और 'वासवदत्ता' तथा 'कादंबरी' की अत्यंत कृत्रिम है नित्यके व्यवहारमें लायी जाने कैसी होकर प्रौढ और साथही सर्वथा काव्य-

शैलीका अनुसरणनेकरवाली रचना एकमात्र दशकुमारचरितकीही देख पडती है ।

उसकी मनोहरताही विशेष अनूठी है।तौ इस गुणद्वारा वर्त्तमान कवि पूर्वसे-ही सुप्रसिद्ध हो रहा है ऐसा कहनेमें कोई अनुचित बात नही जान पडती।अब दूसरी यूरोपके संस्कृतज्ञोमे फैलीहुई ख्यातिका कारण सुविख्यात विद्वान् विलसन साहिब महोदय कहे जा सकते है।यूरोपमे चिरकालसे जिस प्रकार ग्रीक और ल्याटिन भाषाओका प्रचार सर्वत्र पाया जाता है, वैसा संस्कृतका तिलमात्र भी नही है । अतः जब कभी कोई प्रचड सस्कृतज्ञ किसी ग्रथको प्रकाशित करता है तभी उसकी ख्याति होती है । और उस प्रकारसे जो प्रकाशित नही किये जाते वे महान् योग्यताके भलेहीहो पर उन्हे कोई नही पछता, वे वैसेही अप्रसिद्ध पडे रहते है। इसके उदाहरणस्वरूपमे बाणभट्टकी 'कादंबरी'और विशेषतः पंडितराज जन्नाथके ग्रंथोका नामोल्लेख किया जा सकता है।यूरोपके सस्कृतज्ञलोग जिस भाति 'हितोपदेश'से परिचित है वैस वे 'कादंबरी' वा 'किरातार्जुनीय'को नही जानते । कोई अचरजकी बात नही कि 'भामिनीविलास' और 'गंगालहरी'प्रभृति निरुपम ग्रंथोंके, तो बहुधा बहुतेरे, लोगोको नामलो विदित नही होंग।भूतपूर्व परम विद्वान् ग्रौस साहिबके प्रसादसे अपने गोस्वामी तुलसीदासजीको जैसी श्रेष्ठता प्राप्त हुई ठीक वैसेही वर्त्तमान कविको उक्त विलसन् साहिबद्वारा वह प्राप्त हुई है ऐसा माननेमे कोई बाधा नही जान पडती।यदि वैसा न हुआ होता तौ अपर अप्रसिद्ध संस्कृत कवियोकी मालिकामे उसेभी पडे रहना पड़ता।इसके अतिरिक्त यूरोपके लोगोको उसके विशेष परिचित एव मान्यहोनेका कारण यह है कि उस कालकी दशाका प्रतिबिंब उसमे लक्षित होताहै। एतावता इतिहासज्ञ तथा पुराकालतत्त्ववेत्तागणोको वह परमोपयोगीहोनेके योग्य है ।

वर्त्तमान ग्रंथकी ख्यातिके जो कारण हमें ज्ञात थे उनका उपर निरूपण किया गया । अब उपसंहारमे उसके विषयमें इतना और लिखते है कि वह ग्रंथ रसिक पाठकोको बहिरंग गुणों अर्थात् पदलालित्यादिद्वारा जितना प्रिय हो सकेगा उतना अंतर्गुण अर्थात् रससंविधानकचातुर्यादिद्वारा न होसकेगा।

अब "दशकुमारचरित" के स्वरूपका कुछ ज्ञान हमारे पाठकोंको हो इस अभिप्रायसे नीचे उस ग्रंथसे कतिपय अवतरण दिये जाते हैं ।

प्रथमतः शृंगारविषयक संग्रह । ग्रंथका एकाएक आरंभ इस प्रकारसे किया गया है:—

श्रुत्वा तु भुवनवृत्तांतमुत्तमांगना विस्मयविकासिताक्षी सस्मितमिदमभाषत । दयित ! "त्वत्प्रसादादद्य मे चरितार्था श्रोत्रवृत्तिरद्यमे मनसि तमोऽपहस्त्वयादत्तो ज्ञानप्रदीपः पक्कमिदानीं त्वत्पादपद्मपरिचर्य्याफलम्; अस्य च त्वत्प्रसादस्य किमुपकृत्य प्रत्युपकृतवती भवेयम् । अभवदीयं हि नैव किंचिन्मत्संबद्धम् * अथवास्त्येवास्यापि जनस्य क्वचित् प्रभुत्वं, अशक्यं हि मदिच्छया विना सरस्वतीमुखग्रहणोच्छेषणीकृतो दशनच्छद एष चुंबयितुं अंबुजासनास्तनतटोपभुक्तमुरःस्थलं चैतदालिगंयितुमिति" । ततः प्रियोरसि प्रावृडिव नभस्युपास्तीर्णगुरुपयो-

---

* शेक्सपियरकृत 'वेनिसनगरका व्योपारी, संज्ञक नाटकमें नायिका नायकको संबोधन कर इसी प्रकारसे कहती है:—

" Myself and what is mine, to you and yours
Is now converted, but now I was the lord
Of this fair mansion, master of my servants
Queen o'er myself, and even now, but now,
This house, these servants, and this same myself,
Are yours, my lord !—"

Act—III, Scene II.

धरमंडलाप्रौढकंदलीमुकुलमिव रूढरारूषितं चक्षुरुल्लासयन्ती, बर्हिबर्हावलीविडंबिना कुसुमचंद्रकशारेण मधुकरकुलव्याकुलेन केशकलापेन स्फुरदरुणकिरणकेसरकरालंकदंबमुकुलमिव कांतस्याधरमणिमधीरमाचुचुंब। तदारंभस्फुरितया च रागवृत्त्या भूयोप्यावर्त्ततातिमात्रचित्रोपचारश्रीफरो रतिप्रबंधः

दंडीके समस्त कुमारोकी अपेक्षा केवल अपहार वर्म्माका ही चरित्र लंबा चौड़ा हैं एव विचित्रताविशिष्ट है। उसकी पहिले पहल जब रागमंजरीके साथ भेटहुई और उन दोनोंकी चार आंखे हुई तबकी घटनाका वर्णन दडीने यो लिखा है;—

एष्वेव दिवसेषु "काममंजर्याः स्वसा यवीयसी रागमंजरीनाम पंचवीरगोष्ठे संगीतकमनुस्थास्यतीति" सांद्रादरः समागमन्नागरजनः। स चाहं सह सख्या धनमित्रेण तत्र सभ्याधीपि। प्रवृत्तनृत्यायां च तस्यां द्वितीयं रंगपीठं ममाऽभून्मनः। तद्दृष्टिविभ्रमोत्पलवनसञ्चापाश्रयश्च पंचशरो भावरसानां सामग्र्यात् समुदितबल इव मामतिमात्रमव्यथयत्। अत्रासौ नगरदेवतेव नगरमोषरोषिता लीलाकटाक्षमालाशृंखलाभि र्नीलोत्पलपलाशदामश्यामलाभिर्मामबध्नात्। नृत्योत्थिता च सा सिद्धिलाभशोभिनी किं विलासात्! कि-

मभिलाषात् ! किमकस्मादेव वा ! न जानेऽसकृन्मां सखीभिरप्यनुपलक्षितेनापांगप्रेक्षितेन सविभ्रमारेचितभ्रूलतमभिवीक्ष्य सापदेशं च किंचिदाविष्कृतदशनचंद्रिकं स्मित्वा लोकलोचनमानसानुयाता प्रातिष्ठत ॥

प्रमति आत्मचरित राजवाहनप्रति वर्णन करता है ।

" देव ! देवस्यान्वेषणाय दिक्षु भ्रमन्नभ्रंकषस्यापि विंध्यपार्श्वारूढस्य वनस्पतेरधः परिणतपतंगबालपल्लवावतंसिते पश्चिमदिगंगनामुखे पल्वलांभसि उपस्पृश्य उपास्य संध्यां, तमःसमीकृतेषु निम्नोन्नतेषु गंतुमक्षमः क्षमातले किसलयैरुपरचय्य शय्यां, शिशयिषमाणः शिरसि कुर्वन्नंजलिं " याऽस्मिन् वनस्पतौ वसति देवता, सैव मे शरणमस्तु । शरारुचक्रचारभीषणायांशर्वगलश्यामशार्वरांधकारपूराध्मातगभीरगह्वरायामस्यां महाटव्यामेकाकिनो मे प्रसुप्तस्येत्युपधाय वामभुजमशयिषि ततः क्षणादेवावनिदुर्लभेन स्पर्शेनासुखायिषत किमपि मे गात्राण्याह्लादयिषतेंद्रियाण्यभ्यमनायिष्ट चांतरात्मा विशेषतश्च हृषितास्तनूरुहाः पर्यस्फुरन्मेदक्षिणभुजः । कथंत्विदमिति मंदमंदमुन्मिषन्नुपर्यच्छचंद्रातपच्छेदकल्पं शुक्लांशुकवितानमैक्षिषि

वामतो चालितदृष्टिः समया सौधभित्तिं चित्रास्तरणशायिनमतिविश्रब्धप्रस्तुतमंगनाजनमलक्षयम् । दक्षिणतो दत्तचक्षुरागलितस्तनांशुकाममृतफेनपटलपांडुरशयनशायिनीमादिवराहदंष्ट्रांशुजाललग्नामंसस्रस्तदुग्धसागरदुकूलोत्तरीयां, भयसाध्वसमूर्च्छितामिव धरणीम् । अरुणाधरमणिकिरणबालकिसलयलास्यहेतुभिराननारविंद परिमलोद्गाहिभिर्निश्वासमातारिश्वभिरीश्वरेक्षणदहनदग्धं स्फुलिंगशेषमनंगमिव संधुक्षयंतीमंतःसुप्तषट्पदमंबुजमिव जातनिद्रसामीलितलोचनेंदीवरमाननं दधानामैरावतमदावलेपलूनापविद्धामिव नंदनवनकल्पवृक्षरत्नमंजरीं कामपि तरुणीमालोकयम् ।अतर्कयंच,क्वगतासामहाटवी? कुतइदमुद्धौडकपालसंपुटोल्लेखि शक्तिध्वजशिखरशूलोत्सेधंसौधमागतम्।क्वचतदरण्यस्थलीसमास्तीर्णं पल्लवशयनम्? कुतस्त्यं चेदमिदुगभास्तिसंभारभासुरं हंसतूलदुकूलशयनम् । एषचकोनुशीतरश्मिकिरणरजतरज्जुदोलापरिभ्रष्टमूर्च्छित इवाप्सरोगणः स्वैरसुप्तःसुंदरीजनःकाचेयंदेवीवारविंदहस्ता शारदशशांकमंडलामलदुकूलोत्तरच्छदमाधिशेतेशयनतलम्।नतावदेषादेवयोपायतोमंदमंदमिं-

दुकिरणैः संवाह्यमानाकमलिनीवसंकुचाति भग्नवृं-
तच्युतरसबिंदुशबलितंपाकपांडुचूतफलमिवोद्भि-
न्नस्वेदरेखंगंडस्थलमालक्ष्यते, अभिनवयौवनवि-
दाहदुर्लभोष्मणि कुचतटे वैवर्ण्यमुपेतिवर्णकम्।
वाससीचपरिभोगानुरूपं धूसरिमाणमादर्शयतः।
तदेषामानुष्येवादिष्टया चानुच्छिष्टयौवनायतःसौ-
कुमार्य्यमागताःसंतोऽपिसंहता इवावयवाः प्रस्नि-
ग्धतमापि पांडुतानुविद्धैवदेहच्छविः दंतपीडान-
भिज्ञतया नातिविशदरागो मुखेविद्रुमद्युतिरधरम
णिः,अनत्यापूर्णमारक्तमूलं,चंपकमुकुलमिव कठो-
रं कपोलतलम्, अनंगबाणपातमुक्ताशंकं च
विश्रब्धमधुरं सुप्यते, न चैतद्वक्षःस्थलं निर्दयविम-
र्दविस्तारितमुखस्तनयुगलम्, अतिचानतिक्रांत
शिष्टमर्य्यादचेतसो ममास्यामासक्तिः। आसक्त्य-
नुरूपंपुनराश्लिष्टा यदि स्पष्टमार्त्तरवेणैव सहानिद्रां
मोक्ष्यति,अथाहं न शक्ष्यामि चानुपश्लिष्य शयि-
तुम्। अतो यद्भावि तद्भवतु, भाग्यमत्र परीक्षिष्य
इति । स्पृष्टास्पृष्टमेव किमप्याविद्धरागसाध्वसं
लक्षसुप्तः स्थितोऽस्मि । साऽपि किमप्युत्कंपिना
रोमोद्भेदवता वामपार्श्वेन सुखायमानेन मंदमंदजृं-
भिकारंभमंथरांगी त्वंगदग्रपक्ष्मणोश्चक्षुषोरलस-
तांततारकेण नातिपक्वनिद्राकषायितापांगपरभा-

गेन युगलेनेषदुन्मिषन्ती त्रासविस्मयहर्षरागशं-
काविलासविभ्रमव्यवहितानि व्रीडांतराणि कानि
कान्यपि कामेनाद्भुतानुभावेनावऽस्थांतराणि
कार्यमाणापरिजनप्रबोधनोद्यतां गिरं कामावेश-
परवशं हृदयमंगानि च साध्वसायाससंवध्यमान-
स्वेदपुलकानि कथं कथमपि निगृह्य सस्पृहेण
मधुरकूणितत्रिभागेण मंदमंदप्रचारितचक्षुषा सं
दशानि निर्वर्ण्य दूरोत्सर्पितपूर्व्वकामापि तस्मिन्नेव
शयनतले सचकितमशयिष्ट, अजनिष्ट मे रागा-
विष्टचेतसोऽपि किमपि निद्रा। पुनरननुकूलस्प-
र्शदुःखायमानगात्रः प्राबुध्ये प्रवुद्धस्य च सैव मे
महाटवी, तदेव तरुतलं स एव पत्रास्तरो मसा-
भूत्। विभावरी च व्ययासीत्। अभूच्च मे मनसि
किमयं स्वप्नः? किं विप्रलंभो वा? किमियमा-
सुरी दैवी वा कापि माया। यद्भावि तद्भवतु, नाह-
मिदं तत्त्वतो नावबुध्य मोक्ष्यामि भूमिशय्यां,
यावदायुरत्रत्यायै देवतायै प्रतिशयितोभवामीति
निश्चितमतिरतिष्ठम्।

नृत्यवर्णन।

विद्युल्लतामिव विडंबयन्ती भूषणमणिरणितदत्तल-
यसंवादिपादचारम्, अपदेशस्मितप्रभाभिषिक्तबिं-
बाधरम्,अवस्रंसितप्रतिसमाहितशिखंडभारम्,स-

माघट्टितक्वणितरत्नमेखलागुणम्, अंचितोत्थित-पृथुनितंबविलंबितविचलदंशुकोज्वलम्, आकुंचितप्रसृतवेल्लितभुजलताभिहतललितकंदुकम्, आवर्जितबाहुपाशम्, उपरिपरिवर्तितत्रिकविलग्नलोलकुंतलम्, अवगलितकर्णपूरकनकपत्रप्रतिसमाधानशीघ्रतानतिक्रमितप्रकृतक्रीडनम्, असकृदुत्क्षिप्यमाणहस्तबाह्याभ्यंतरभ्रांतकंदुकम्, अवनमनोन्नमननैरंतर्य्यनष्टदृष्टमध्ययष्टिकम्, अवपतनोत्पतननिर्व्यवस्थमुक्तहारम्, अंकुरितघर्मसलिलदूषितकपोलपत्रभंगशोषणाधिकृतश्रवणपल्लवानिलम्, आगलितस्तनतटांशुकनियमव्यापृतैकपाणिपल्लवं च निषद्योत्थाय निमील्योन्मील्य स्थित्वा गत्वा चैवातिचित्रं पर्यक्रीडत राजकन्या। अभिहत्य भूतलाकाशयोरपि क्रीडांतराणि दर्शनीयान्यनेकेनैव वानेकेनैव कंदुकेनादर्शयत्।

उक्त संग्रहोद्वारा दंडीके पदलालित्य गुणका पाठकोको परिचय प्राप्त हो उसकी परमोत्तम वर्णनशैलीका उन्हे सहजहीमे बोध हो सकता है। इस प्रकारकी शृंगारलीलाए इस ग्रंथमें प्रायः सर्वत्र पायी जाती हैं। तद्वारा स्पष्टरूपसे जानाजासकता है कि हमारा कवि दंडधारी यति न था किंतु कालिदास, गोवर्द्धनाचार्य्य, पंडितराज जगन्नाथादिकी नाई वह बडा विलासी पुरुष था। इसके ग्रथसे तो यही जान पडता है कि यह आत्मकालीन सब प्रकारके सांसारिक सुखविलासादिका पूर्णानुभवी था। 'मृच्छकटिक' नाटकमे उसके चतुर रचयिताने जैसे सर्वांगसुंदर संविधानकको बांध

तत्समयको उज्जयिनी नगरीकी दशा भिन्नभिन्न प्रकारसे प्रदर्शित की है, ठीक वही ढग कुछ अशमे 'दशकुमारचरित' मे भी पाया जाता है। इसके प्रमाणस्वरूपमें द्वितीय उच्छ्वासांतर्गत द्यूतक्रीडाका निम्नस्थ वर्णन अवलोकन करने योग्य है।

अनुप्रविश्य च द्यूतसमाजमक्षधूर्त्तैः समगंसि। तेषां पंचविंशतिप्रकारासु सर्वासु द्यूताश्रयासु कलासु कौशलम्, अक्षभ्रमिहस्तादिषु चात्यंतदुरुपलक्ष्याणि कूटकर्माणि, तन्मूलानि सावलेपान्यधिक्षेपवचनानि, जीवितनिरपेक्षाणि संरंभविचेष्टितानि, सभिकप्रत्ययव्यवहारान्,न्यायबलप्रतापप्रायान्,अंगीकृतार्थसाधनक्षमान् बलिषु सांत्वनानि, दुर्वलेषु भर्त्सितानि, पक्षरचनानैपुण्यमुच्चावचान्युपप्रलोभनानि ग्लहप्रभेदवर्णनानि द्रव्यसंविभागौदार्यमंतरांतराश्लीलप्रायान् कलकलान् एतानि चान्यानि चानुभवन्नतृप्तिमध्यगच्छम्। अहसंच किंचित्प्रमाददत्तशारे क्वचित् कितवे प्रतिकितवस्तु निर्दहन्निव क्रोधताम्रया दृशा मामभिवीक्ष्य "शिक्षयसि रे! द्यूतवर्त्म हासव्याजेन आस्तामयमशिक्षितो वराकस्त्वयैव तावद्विचक्षणेन देविष्यामीति" द्यूताध्यक्षानुमत्त्या व्यत्यषजत्। मया जितश्चासौ षोडशसहस्राणि दीनाराणाम्। तदर्द्धं सभिकाय सभ्येभ्यश्च दत्वार्द्धं स्वीकृत्योदतिष्ठम्। उदतिष्ठंश्च तत्रगतानांहर्षगर्भाः प्रशंसा-

लापाःप्रार्थयमानसभिकानुरोधाच्च तदगारेऽभ्यवहारविधिमकरवम् । यन्मूलश्च मे दुरोदरावतारः । स मे विमर्दको नाम विश्वास्यतरं द्वितीयं हृदयमासीत् ।

उच्छ्वास ।

अब संविधानकपाटव, रसपोषकता प्रकृतिवर्णनादिगुणोंका 'दशकुमारचारित' में अभाव होनेपर भी वह संस्कृतज्ञोंको क्योंकर प्रिय हुआ है सो उक्त संग्रहद्वारा तुरंतही लक्षित हो सकता है । और सच पूँछिये तो यह ग्रंथ ऐसा नही है कि जिसके और अधिक संग्रह यहांपर उद्धृत किये जा सके। क्योंकि इस ग्रंथमें प्रायः कथाभागही वर्णित है, जिसमें पाठकोंका मनोरंजन करनेवाले वर्णनादि वैसे कुछ अधिक नहीं है । उक्त कैसे संग्रह योंही कही कही पाये जाते हैं । इसके सिवाय एतत्पूर्वकथित कवियोंके ग्रंथोंसे जैसे मनमाने रसोके संग्रह उध्दृत करते बने, वैसे इस ग्रंथसे नही करते बनते । उक्त शृंगारातिरिक्त और किसी रसका संग्रह उध्दृत किया चाहो तो उसका मिलनाही कठिन है । सारांश 'दशकुमारचारित' का स्वरूप इस प्रकारका है। उसकी प्रौढता प्रधानतः उसके बाह्य स्वरूपपरही-निर्भर है । और यह स्वरूप कितना उत्कृष्ट है सो उक्त संग्रहोद्वारा मर्मज्ञ एवं विद्यापारदर्शी पाठकोंको तत्क्षण विदित हो सकता है ।इसके सिवाय वर्त्तमान कविकी ओरसे पाठकोंको यह भी सूचित करना हमे अभीष्ट जान पड़ता है कि गद्यकाव्यका आद्योत्पादक यही कवि होनेके कारण,इसके अनंतर सुधारकर सुबंधुने और विशेषतः बाणभट्टने जो रसिकप्रिय ग्रंथ लिपिबद्ध किये हैं उनके साथ 'दशकुमारचारित' की तुलना करना उचित नहीं है । उनकी मधुरताका स्वाद चखती बार पाठकोंको समुचित है कि वे दंडीके बारंबार उपकार मानें नकि कृतघ्नतापूर्व्वक उसे भूल जाँय* ।

* सुबधु—पृष्ठ१६९ में सुबधुके विषयमें जो लिखा गया है सो ठीक नहीं है।वास्तवमें वह उक्त कथनकी नाई दडीके विषयमें होना चाहिये था ।

उपसंहार।

उक्त प्रकारसे इस दूसरे कविवृंदका वर्णन शेष किया जाता है। प्रथम हमने जब इनके विषयमे लिखना प्रारंभ किया था तब अंतिम दो कवियोंको भली भाँति अधीत नही किया था अतः उस समय उनके विषयमें हमारी जो सम्मति थी उसमें अब बहुत भिन्नता दृष्टिगत होगी। जिन लोगोंको ध्यानपूर्व्वक ग्रथावलोकन करनेका अभ्यास है उन्हे उक्त मतभिन्नता लक्षित होही चुकी होगी, और हमने ठौरठौर पर उसे और भी स्पष्ट कर दिया है। उसीको प्रधानता दे उक्त पांचो कवियोंके उक्त वर्णनोंका समासवर्णन यहांपर पुनरपि लिखते हैं। आदिमे इनके जीवनकालकी आलोचना की जाती है। यह तो निर्व्विवादित वार्त्ता है कि इन पांचोमें कालिदास सबसे पुराने हैं। यह बात पिछले लेखमें सिद्धही कर दी गयी है। अब यहांपर केवल कविचतुष्टयके जीवनकालका ही विचार कर्त्तव्य है। इन लोगोका जीवनकाल जो पीछे लिखा गया है उससे प्रतिपादित होता है कि कालक्रमानुसार पहिले दंडी दूसरे भवभूति तीसरे सुबंधु और चौथे बाणभट्ट है। एतावता भवभूतिकी भी गणना मध्यमकालीन कवियोंमे करनी पडती है, वह कालिदासके समकक्षी नही हो सकते। पर कविताकी योग्यताके अनुसार जब हम इनके विषयमें विचारांश करते हैं तौ यह सब उच्च श्रेणीस्थ हो जाते है—उनके समश्रेणीस्थ यदि नही हो सकते तौ केवल बापुरे सुबधुही नही होसकते। इनकी लिखी हुई 'वासवदत्ता'को जब हम विचारक्षेत्रमे लेते हैं तौ जान पडता है कि केवल यही दूसरे कविवर्गमे, वहभी बडी कठिनतासे, स्थान पा सकते हैं। सारांश हमारा माना हुआ द्वितीय कविवृंद सूनाही रहजाता है। क्यो कि कवित्वस्फूर्त्ति, रसपरिपाक, प्रासादिक पदरचना, मृदुता, मधुरता और लालित्यप्रभृति अशेष गुणोंमे दंडी, बाण और अंशतः सुबंधु स्वयं कालिदासकी समानताका सन्मान भलेही न पा सके पर उनसे निम्न श्रेणीकी गद्दीके यथार्थ अधिकारी यही लोग कहे जा सकते हैं। इस प्रबंधके प्रारंभमें मध्यम प्रकारके कवियोका जो दिग्दर्शन लिखा गया है वह इनके विषयमे सर्वथा चरितार्थ नहीं हो सकता। हां यह सब

अवश्य सच है कि यह लोग बड़े विद्वान् थे, और भूतपूर्व्व कवियोंके ग्रथभी इन्हे अध्ययनार्थ समाप्त थे, जिनके योगसे इनकी कल्पना तथा विचारशक्तिमे यथार्थ नूतनताकी ऊनता देख पड़ती है, पर इसमे तनिकभी सदेह नही है कि कविताका प्रधान गुण सहृदयता और उसीके साथ यथार्थस्फूर्ति इन्हे अनुकूल थी। सारांश, अब हमे इन लोगोंको दूसरी श्रेणीमे परिणत करना आवश्यक नही बोध होता। पर जो लोग दूसरावर्ग स्थापितकरनेके हठी हुआ चाहते हैं उन्हे अपनी लालसा पूर्ण करनेकेहेतु इन सब कवियोके पदरचनाकी कृत्रिमता, और कालिदासकी अपेक्षा उनके कवित्व तथा कालकी हीनता अवश्य उपयोगी हो सकती है।

यहांलो भूमिकांतर्गत सस्कृत कविताके दो भागोंका वर्णन किया गया। अब तीसरे भेदका निरूपण कियाजाता है। वास्तवमे तो यह लिखना भी-कि पिछले प्रतिपादनानुसार ऊपर दो भागोका वर्णन शेष होगया-अनुचित जान पड़ता है। क्योंकि दूसरे वृंदके कविगण बहुधा पहिलोकी मालिकामेंही गुंफित हो सकते है। पर तौभी विषयनिरूपणकी सुगमताके हेतु हमें दूसरा भाग भी मानना पड़ा था। और उसी प्रकारसे अब तीसरे की भी कल्पना करनी पड़ती है। इस तीसरे वृंदमे बहुतसे कवि यद्यपि न आ सकेंगे तथापि संप्रति जो कविगण सामान्यतः उसमें परिणत किये जा सकते हैं उनका वर्णन लिख यहभी प्रदर्शित किया जायगा कि वर्त्तमान अवस्था इस तीसरे वर्गमे ही परिगणित की जा सकती है।

दूसरे कविवर्गके आदिमें यह बात लिखी गयी थी कि उसमे स्थित करनेके हेतु बहुतसे कवि पाये जाते हैं पर तौभी वहीं तीनही कवि चुने गये जो सुप्रसिद्ध हैं, और जिनके गद्यकाव्य विशेषरूपसे विख्यात हैं। उसप्रकारकी चुनावट यहां पर प्रयोजनीय नही बोध होती क्योकि वे बहुतही थोड़े पाये जाते हैं और इसका कारणभी कोई गूढरहस्य नही है। सम्प्रतिकी नांई जिस समय कवित्वका सर्व्वथा ह्रास हो जाता है तब उससमयमें पहिले कोई दूसरा कवि उत्पन्न होता है, और उसके भी काव्यमें चिरकालले रहनेयोग्य गुण

बहुतही थोडे, किंतु उनका अभावही होनेके कारण उसका नाम और ग्रंथ दोनो साथही साथ लुप्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् सौ दो सौ वर्षके अनतर यदि हुआही तौ औरभी कोई नामी कवि उपजता है। इसके अतिरिक्त महान् प्रचंड कारण यहभी कहा जा सकता है कि उससमय मुद्रणालय नही थे। ग्रथ केवल हाथहीसे लिखे जाते थे। ऐसी अवस्थामे किसी ग्रथकी प्रसिद्धि तभी होतीथी कि जब चारोओर पडितलोगोमे वह समादृत किया जाता था और अनेक लोगोको उसे लिखकर अपने सरस्वतीभवनमे संग्रह करनेकी अभिलाषा समुत्थित होती थी। यह प्रसिद्धि तभी हो सकती थी कि जब उस ग्रथकी उपयोगिता स्वय पडितलोगोंके मत्सर और द्वेषको पूर्णरूपसे दलित कर देती थी। ग्रंथकी ख्यातिके उक्त मनोविकार कैसे पचड विरोधी हैं सो प्राचीन कवियोके ग्रथोंकी प्रस्तावनाद्वारा भली भांति ज्ञात हो सकता है। सारांश उनसे जो पार पा जाता वही आगे मानमान्यता प्राप्त कर सकता। उसके पश्चात् जब ग्रथका फैलाव होने लगता तबसे उसकी प्रसिद्धि मानी जाती है। पर आजकल मुद्रणकलाकी सहायताके कारण जो बातें अनुकूल होगयी हैं सो पाठितसमाजसे छिपी नही है। एकमात्र धनकी सहायता अनुकूल कर लीजाय तौ यथेष्ट ग्रंथ प्रस्तुत हो डाक तथा रलआदि फैलावके अमूल्य साधन, जो अब इधर सर्वसाधारणको प्राप्त हैं, तद्द्वारा बहुतही अल्प कालमें समूचे धरातलपर ग्रंथोका विस्तार किया जा सकता है! यूरोपमे आधुनिक ग्रथोंका फैलाव सदा इसी प्रकारसे हुआ करता है। सारांश, इन अनुकूलताओंके कारण मध्यम तथा कनिष्ठ प्रकारके सभी ग्रथ इग्लैडादिमें जैसे हजारों शेष रहगये और रहतेही जाते है, वैसे इधर नही रहने पाये। केवल वही ग्रंथ रहने पाये जो परमोत्कृष्ट निश्चित किये गये और जिनका फैलाव अल्प कालमे ही सर्वत्र हो गया। शेषमें से कोई शीघ्र कोई विलबसे ऐसा करते करते धीरे २ सब नष्ट होगयेसे जान पडते हैं। इस प्रकारसे लुप्तहुए सैकडों ग्रथोंके नामका परिचय आधुनिक सुप्रसिद्ध कई ग्रंथोंमें पाया जाता है। अभिप्राय यह है कि पीछे अगरेज कवियोके वर्णनमें मध्यम प्रकारके कवियोका वर्णन लिखनेके लिये जैसे बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हुई, और

कनिष्ठ श्रेणीके कवियोंके विषयमें भी बहुत कुछ लिखते बनता वैसा संस्कृत कवियोंके विषयमें नहीं करते बनता। एतावता यहांपर इस तृतीय कविवृंद-का योंही संक्षिप्त वर्णन कर उसमेंसे कतिपय कवियोंके विषयमें सविशेष निरूपण करेंगे।

समस्त जातियोंकी कविताके इतिहासमे एक ऐसा समय दृष्टिपथमें आता है कि जिसमे उसका अव्याज एव शुद्ध स्वरूप अत्यंत विनष्ट हो वह एक विलक्षण प्रकारके कृत्रिम रूपमे पायी जातीहै। प्राचीन कवियोंके काव्योंमें प्रायः वही भाव सुबोधतापूर्वक व्यक्त कियेहुए पाये जाते हैं, जो निसर्गतः प्रायः सबके मनमे आविर्भूत हुआ करते हैं! पर इन अंतिम कवियोंके काव्योंमें वह बात नही पायी जाती किंतु बहुधा वही भाव हठादाकृष्ट कर प्रदर्शित कियेहुए पाये जाते है, जो कभी किसीको स्वप्नमें भी न ज्ञात हुए हो, और जिसके ग्रंथमें उक्त प्रकारकी जटिल एवं दुर्बोध उक्तियां प्रचुरताके साथ लक्षित होती हैं, वही परमोत्कृष्ट कवि माना जाता है। इसी प्रकारसे प्रथम कविगणोंके ग्रंथोंमें अर्थहीकी ओर विशेष ध्यान दिया हुआ पाया जाता है, शब्दोंकी गढनपर विशेष दृष्टि दी हुई नहीं दीख पडती; पर दूसरोंके ग्रथोंमें उक्त सब बातें विपरीत दृग्गोचर होती हैं। इनके ग्रथोंमें तो यह बात कहीं नाममात्रको भी नही लक्षित होती कि कही शब्दालंकार और विशेषतः श्लेषके संपादित करनेका अवसर इनके हाथ लगा हो और इनलोगोंने उस अवसरको हाथसे जाने दिया हो। हमारी कवितामे सर्वसाधारणकी बोलचालकी नांई यदि सरल एवं एकहीअर्थ लाया जाय तौ उसकी प्रौढताही क्या कहाई? निदान उससे दो तीन तौभी भाव प्रगट होने चाहिये। वैसे ही किसी पदार्थको देख जो भाव सब मनुष्योंके चित्तमे सहसा उपजते हैं वही हमजैसे महाकवियोंके चित्तमे भी उत्पन्न हुए तौ हमारी विशेषता ही क्याहुई? ऐसे पागल पनके भ्रम उनके मनःसंलग्न होजानेके कारण उनके जो रूप ग्रंथद्वारा बहिर्भूत होते हैं उनके विलक्षण एवं विचित्र होनेमें आश्चर्यही क्या है? दुर्बोधता और जटिलता दोषोंकी भी ऊनता उनमे नही रहती; इन

दोषोंके कारण अर्थकी हानि होती है सो कविता रसज्ञपाठकोंपर विदितही है । अस्तु; इंग्लैंडमें एक वार ऐसे कवि बहुत हुए थे, उन सबमे प्रसिद्ध और अग्रगण्य कौले नामका कवि माना जाता था । डाक्टर जानूसन् साहिबने अपने 'कविचारित्र' मे उक्त कवीकी ऐसी मिट्टी खराब कर दी है कि आगे कोई फिर कभी उसका नाम लों न लेवे । यदि कोई लिखा चाहे तो उसे संस्कृतके भी ऐसे अनेक कवि मिल जॉयगे । पूर्वोल्लिखित सुबंधुके ग्रंथमें ऐसे भावोका अभाव नही है सो पीछे लिखाही जा चुका है । वही बात कविराज कविकृत 'राघवपांडवीय' संज्ञक ग्रंथके विषयमे भी कही जा सकती है जिसका कि थोडासा उल्लेख पीछे हो चुका है । इस ग्रंथके नामानुसारही रामायण और भारतकी कहानी एकसे पदो द्वारा बांधीजानेके कारण यह समूचा ग्रंथ एक लबा चौड़ा श्लेष हो गया है ऐसा कहनेमें कदाचित् कोई अत्युक्ति न होगी । यहांपर विशेषरूपसे यह लिखनेकी कोई आवश्यकता नही है कि कालिदासकृत माना जानेवाला 'नलोदय' काव्यभी इसी प्रकारका है । अब यह बात निश्चयपूर्वक नही कही जा सकती कि उक्त प्रकारकी विशेष प्रवृत्ति किससे आरंभ हुई है; तौभी इसमे तो तनिकभी संदेह नही है कि आधुनिक पंडितोके मतानुसार पंचकाव्य श्रेष्ठ 'नैषध' से उसकी प्रवृत्ति अधिकतर प्रचलित हुई है ।

१–यहापर हमें यह लिखते परम हर्ष होता है कि "नैषध" काव्यकी आलोचना देखनेकी जिन्हें इच्छा हो वह लोग, काशीकी नागरी प्रचारिणीसभाके मत्रीसे, अमदरस निष्यद हृदय पडित प्रकाड महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित, "नैषधचरितचर्चा" नामक लेखको मंगाकर, उसके अवलोकन द्वारा अपनी मनस्तुष्टिकर सकते हैं । अनुसंधान करने पर विद्वानोंको श्रीहर्षमिश्रके विषयमे आजपर्य्यंत जो जो बातें ज्ञात हुई हैं, बहुध उन सबको साधक बाधक प्रमाणोंके साथ उक्त द्विवेदीजीने इस लेखमे लिखाहै । आत्मश्लाघालोलुप कविद्वयकी–पंडितराज जगन्नाथ तथा निसर्गोज्ज्वल महाकाव्यके कर्त्ता श्रीहर्षमिश्रकी–दर्पोक्तियोके तारतम्यको द्विवेदीजीने अपने इस निबंधमें नितात कुशलता प्रमुख प्रदर्शित किया है । अंतमें अपने "नैषध" महाकाव्यके अव्याज मनोहर स्थलोंके अनेकानेक अवतरणोको, उनके भावार्थ, और अपनी आलोचनाके साथ इस निबधमे लिखकर उसे समाप्त किया है ।

इस अंतिम महाकाव्यके रचयिता महाराजा श्रीहर्ष सर्व प्रसिद्ध ही है। इस ग्रंथमें विचित्र उक्तियां तथा श्लेषादिकोंकी अत्यन रेल पेल कर दी गयी है। इस ग्रंथके अंतमे 'पंचनली' नामक एक सुप्रसिद्ध प्रकरण है, इसमे सरस्वती दमयतीप्रति पांच नलोंका वर्णन करती है, यहांपर तो कविने अपनी प्रतिभाकी पराकाष्ठा करदी है । जहां बोलनेवाला पात्र स्वय भगवती सरस्वती है और काव्यप्रणेतृ कवि तत्कराधिष्ठित सुग्गा है, वहांकी बातही क्या पूछना है! प्रत्येक श्लोक यथार्थ नलके विषयमें घटित कर वही इंद्रादि चारों कपटवेषधृक् देवोके विषयमे भी सघटित किया जाता है। सारांश, उसमें ऐसेही चमत्कारिक वर्णन लिखे गये है अब अंतरंग कल्पना और विचारप्रभृति काव्यके अतःस्वरूपकी उपेक्षा कर इस कविके काव्यका बाह्य स्वरूपही यदि विचारक्षेत्रमे लिया जाय तो सर्वसाधारणको तुरंतही ज्ञात होताहै कि यह काव्य परमोत्कृष्ट है, अर्थात् मृदुता, मधुरता, और लालित्यादिगुण उसमे पूर्णरूपसे पाये जाते है । केवल शब्दोकी ही गठन ऐसी कुछ विचित्र पायी जाती है कि उसके श्रवणमात्रद्वारा मन आनंदितहो सुप्रसन्न हो जाता है। यह कथन अनुचित साहस न समझा जायगा कि इस गुणमे उक्त गुण हमारे पुराने कवि स्वयं कालिदासको भी कही कही पीछे हटा देते हैं। बात तो यह है कि इस प्रकारसे जिन कवियोंकी गति कविताके साक्षात् तत्त्वोपर्य्यंत नही हो पाती वे बापुरे उसके बाह्य स्वरूपपरही अपनी करतूत को शेष कर देते हैं। परंतु जो यथार्थविद् लोग हैं उन्हे कविताका अतःस्वरूपही विशेष प्रिय होनेके कारण वे लोग इन कवियोकी बहिरग सजावटको विशेष समादृत नहीं करते।

इति।

---

१ 'राजतरगिणी' में वर्णित हर्ष राजा यदि यही महाराज होंगे तो इनका जीवन काल अनुमान ईसवीसन ११११ माननेमें कोई हानि नही बोध होतीहै । प्रसिद्ध नाटिका 'रत्नावली' और 'नागानद' नाटकभी इन्हीके लिखेहुए है ऐसी किंवदती प्रायः कही सुनी जाया करती है।